

‘भारतीय आधुनिक शिक्षा’ राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की एक त्रैमासिक पत्रिका है। इस पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है शिक्षकों, शिक्षक-प्रशिक्षकों, शैक्षिक प्रशासकों तथा शोधकर्ताओं को एक मंच प्रदान करना, शिक्षा के विभिन्न आयामों जैसे-शिक्षादर्शन, शिक्षा मनोविज्ञान, शिक्षा की समकालीन समस्याएं, पाठ्यक्रम एवं प्रविधि संबंधी नवीन विकास, अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा का स्वरूप, विभिन्न राज्यों में शिक्षा की स्थिति आदि पर मौलिक तथा आलोचनात्मक चिंतन को प्रोत्साहित करना और शिक्षा के सुधार और विकास को बढ़ावा देना। लेखकों द्वारा व्यक्त किए गए विचार उनके अपने हैं। अतः ये किसी भी प्रकार से परिषद् की नीतियों को प्रस्तुत नहीं करते इसलिए इस संबंध में परिषद् का कोई उत्तरदायित्व नहीं है।

अकादमिक संपादक

राजरानी

अकादमिक संपादकीय समिति

रंजना अरोड़ा योगेश कुमार
किरन वालिया अनुपम आहूजा
एम.वी. श्रीनिवासन सुनीता कुमारी नागर (जेपीएफ)

प्रकाशन विभाग के सदस्य

विभागाध्यक्ष पेय्येटी राजाकुमार
मुख्य संपादक श्वेता उप्पल
संपादन ओम प्रकाश
उत्पादन सुनील कुमार

आवरण

कर्ण चड्ढा

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन विभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली 110 016 फोन : 011-26562708

108, 100 फीट रोड
हेली एक्सटेंशन, होस्टेकेरे
बनाशकरी III इस्टेज
बंगलुरु 560 085 फोन : 080-26725740

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014 फोन : 079-27541446

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस
धनकल बस स्टॉप के सामने
पनिहटी
कोलकाता 700 114 फोन : 033-25530454

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लैक्स
मालीगाँव
गुवाहाटी 781021 फोन : 0361-2674869

मूल्य

एक प्रति : 50.00 रुपए वार्षिक : 200.00 रुपए

**परिषद् की 'भारतीय आधुनिक शिक्षा' एवं 'प्राइमरी शिक्षक'
त्रैमासिक पत्रिकाओं के ग्राहकों, पाठकों तथा लेखकों से निवेदन**

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की उल्लेखित दो त्रैमासिक पत्रिकाएं शिक्षा जगत में राष्ट्रीय स्तर तथा राज्य स्तर पर हो रहे अनेक प्रयोगों, अनुसंधानों, कार्यक्रमों व गतिविधियों को पाठकों तक पहुँचाने के सुगम माध्यम हैं। इन पत्रिकाओं का प्रकाशन विशेष रूप से विद्यालयी शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत शिक्षाविदों, शिक्षकों, शिक्षक-प्रशिक्षकों तथा पाठ्यक्रम निर्माताओं को समर्पित है। इनके प्रत्येक संस्करण में ऐसे नवीनतम लेखों के प्रकाशन को प्राथमिकता दी जाती है जो शैक्षिक नीतियों से संबंधित हों, गुणात्मक सुधार की दिशा में उल्लेखनीय प्रयोग हों, अधिगम को सुरुचिपूर्ण तथा ग्राह्य बनाने की दिशा में निजी अनुभव अथवा शोध कार्य हों, विभिन्न शैक्षिक कार्यक्रमों के विवरण हों, शिक्षण-प्रशिक्षण संबंधी प्रभावी सामग्री हो। शैक्षिक उपयोगिता से ये पत्रिकाएँ अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं तथा परिषद् इन्हें मूल लागत से भी बहुत कम कीमत पर पाठकों को उपलब्ध कराती है।

इन पत्रिकाओं के लिए उत्कृष्ट स्तर के शिक्षाप्रद प्रभावी लेख सहर्ष स्वीकार किए जाते हैं तथा उनके प्रकाशन के उपरांत समुचित मानदेय देने की भी व्यवस्था है। लेख की विषयवस्तु 2500 से 3000 शब्दों में या अधिक टंकित रूप में होना वांछनीय है। यदि लेखक अपने लेखों के साथ सीडी या फ्लोपी और स्वयं का ई. मेल का पता भेज सकें तो सुविधा होगी। कृपया अपने लेख निम्न पते पर भेजें -

**विभागाध्यक्ष (पत्रिका प्रकोष्ठ), प्रकाशन विभाग
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
श्री अरविन्द मार्ग, नयी दिल्ली 110 016**

अध्यक्ष, प्रकाशन विभाग द्वारा राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नयी दिल्ली 110 016 के लिए प्रकाशित तथा द्वारा मुद्रित।



भारतीय आधुनिक शिक्षा

वर्ष 30
अंक 2
अक्टूबर 2009

इस अंक में

संपादकीय		3
पाठ्यचर्या बदलाव के लिए व्यवस्थागत सुधार	एन.सी.ई.आर.टी.	5
गुरु-शिष्य संबंध — आधुनिक शैक्षिक परिप्रेक्ष्य में	शोभारानी सभ्रवाल	37
समझें, ना समझें पर समझ की भाषा को तो समझें	आयुष्मान गोस्वामी	42
मिड-डे मील योजना के प्रति बेसिक शिक्षा परिषद् द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के दृष्टिकोण का अध्ययन	कमलेश कुमार चौधरी	47
उच्च शिक्षा की भारतीय परंपरा — एक दृष्टि	आनन्द प्रकाश पाण्डेय	60
मुस्लिम पुनर्जागरण आंदोलन एवं मुसलमानों में आधुनिक शिक्षा का प्रसार	ललित कुमार	68
अध्यापक शिक्षा — समस्याएँ एवं चुनौतियाँ	सतीश कुमार यादव	79
पर्यावरण एवं पर्यावरण नीतिशास्त्र शिक्षा — एक प्रतिमान परिवर्तन	निर्मला गुप्ता एवं सीमा सिंह	86
माध्यमिक शिक्षा का सर्वव्यापीकरण — चुनौतियाँ एवं संभावनाएँ	देवेन्द्र सिंह	93

उच्च शिक्षा की गुणवत्ता और प्रासंगिकता — मुद्दे और उत्तरदायित्व	निर्भय सिंह	99
महादेवी के गद्य साहित्य में शैक्षिक निहितार्थ एवं उसकी वर्तमान में प्रासंगिकता	सन्त कुमारी गोगना	106
शिक्षा का सशक्त माध्यम प्रवास विद्या	राधा भट्ट	112
प्राथमिक कक्षाओं में आंकलन के क्षेत्र में उभरती नयी सोच	एन.सी.ई.आर.टी.	117

संपादकीय

प्रिय पाठकों, हाल ही में चल रही परीक्षा संबंधी चर्चाओं से आप सब वाकिफ़ ही होंगे। हमारी शिक्षा व्यवस्था में सुधार लाने के लिए दो महत्वपूर्ण कदम हमें उठाने हैं पहला — परीक्षा प्रणाली में सुधार और दूसरा शिक्षण-शिक्षा कार्यक्रमों का कायाकल्प। हमारी वर्तमान कक्षाएँ, शिक्षक, शिक्षार्थी, पाठ्यपुस्तकें, पाठ्यक्रम सभी एकमात्र लक्ष्य परीक्षा में सफलता के लिए अपनी-अपनी भूमिका निभाते हुए से प्रतीत होते हैं। संपूर्ण व्यक्तित्व का विकास, रचनात्मकता, कार्यकौशल जैसे विचार धूमिल होते जाते हैं। मशीन की तरह काम करती हुई शिक्षा व्यवस्था बाजार बलों से प्रभावित होती जा रही है। प्रतिस्पर्धा हमारे जीवन का अहम् हिस्सा होती जा रही है। क्या शिक्षा द्वारा हम ऐसा सामाजिक परिवर्तन चाहते हैं जिसमें डार्विन के सिद्धांत शत प्रतिशत प्रतिबिंबित हों? यदि हम शिक्षा को समाज को सही दिशा देने वाली प्रक्रिया मानते हैं तो हमें अपनी शैक्षिक व्यवस्थाओं को सुदृढ़ बनाना ही होगा। यदि हम चाहते हैं हमारे शिक्षार्थी प्रतिबद्ध नागरिक बनें तो परीक्षा, शिक्षक-शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा जैसी व्यवस्थाओं में महत्वपूर्ण सुधार लाने होंगे। इन्हीं सरोकारों के मद्देनज़र इस अंक में शामिल व्यवस्थागत सुधारों के ऊपर विस्तृत चर्चा करता हुआ आधार पत्र — पाठ्यचर्या बदलाव के

लिए व्यवस्थागत सुधार-शिक्षा के क्षेत्र से संबंधित कई व्यवस्थाओं के कार्यक्रमलाप और उनमें लाए जा सकने वाले सुधारों पर प्रकाश डालता है। इस अंक में योगदान देने वाले कई अन्य लेख भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से व्यवस्थागत सुधारों की चर्चा करते हैं। इनमें शामिल हैं — शोभारानी सभ्रवाल, आयुष्मान गोस्वामी, कमलेश कुमार चौधरी, सतीश कुमार यादव, निर्मला गुप्ता और सीमा सिंह, देवेन्द्र सिंह, निर्भय सिंह व राधा भट्ट के लेख।

एक अन्य लेख 'प्राथमिक कक्षाओं में आंकलन के क्षेत्र में उभरती नयी सोच' भी मूल्यांकन और परीक्षाओं के क्षेत्र में विस्तृत बदलाव लाने की चर्चा करता है।

इस अंक में कुछ ऐसे लेख भी शामिल किए गए हैं जो शिक्षा को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में रखते हुए महत्वपूर्ण तथ्य सामने रखते हैं। आनन्द प्रकाश पाण्डेय, ललित कुमार और संत कुमारी गोगना के लेख इसी समूह में आते हैं। यदि आप भी देश के बच्चों की शिक्षा से सरोकार रखते हैं तो इस चर्चा को आगे बढ़ाएँ और व्यवस्थागत सुधारों पर अपने विचार हमें लिख कर भेजें। कुछ चुने हुए विचारों को हमारे विभिन्न अंकों में शामिल करने में हमें प्रसन्नता होगी।

अकादमिक संपादकीय समिति

पाठ्यचर्या बदलाव के लिए व्यवस्थागत सुधार*

एन.सी.ई.आर.टी.

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 के विकास की प्रक्रिया के दौरान गठित इक्कीस राष्ट्रीय फोकस समूहों ने स्कूली शिक्षा से जुड़े विविध मुद्दों जैसे कि शिक्षा लक्ष्य, पाठ्यचर्या क्षेत्र, राष्ट्रीय चिंताएँ तथा व्यवस्थागत सुधार पर विस्तार से चर्चा करते हुए आधार पत्र लिखे। इन आधार पत्रों में दी गई चर्चाओं को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा तैयार की गई। इस पत्रिका के पिछले अंकों में हमने कुछ चुने हुए आधार पत्रों को शामिल किया है। इस अंक में हम एक बहुत ही महत्वपूर्ण सरोकार 'पाठ्यचर्या बदलाव के लिए व्यवस्थागत सुधार' पर बने आधार पत्र में दी गई चर्चाओं को आपके साथ बाँटेंगे। यह आधार पत्र मानता है कि भारतीय व्यवस्था में बदलाव के लिए हमें विद्यालयी शिक्षा के सार्वभौमीकरण की असफलताओं पर गंभीरतापूर्वक विचार करना चाहिए। विद्यालयों द्वारा बहिष्करण की संरचनाओं के विरुद्ध सक्रियता से काम किए जाने की ज़रूरत है ताकि विद्यालयों में सभी बच्चों की पूरी भागीदारी हो सके। संपूर्ण शिक्षा व्यवस्था तथा शिक्षकों को यह समझना चाहिए कि शासकीय व्यवस्था को उपयुक्त ढंग से बदलने की आवश्यकता है ताकि वह हर बच्चे के प्रति संवेदनशील हो सके। प्रत्येक स्तर पर मौजूदा शिक्षा से जुड़ी संस्थाओं में लोकतंत्रीकरण की प्रक्रियाओं को मज़बूत करने के लिए व्यवस्थात्मक बदलाव जरूर किए जाएँ। शैक्षिक व्यवस्था में पर्याप्त लचीलापन एवं स्वायत्तता होनी चाहिए। संपूर्ण व्यवस्था को लक्ष्य-चालित न होकर प्रक्रिया-चालित होना चाहिए। पाठ्यचर्या को सांस्कृतिक विविधताओं का आदर करना चाहिए तथा ऐसी नीतियाँ बनाई जाएँ जो किसी का भी बहिष्कार न करें। प्रचलित शिक्षा व्यवस्था के विकेंद्रीकरण के काम-काज की जाँच करने के लिए हमें नियमित रूप से शोध अध्ययन करने चाहिए और साथ यह देखना चाहिए कि क्या व्यवस्थागत परिवर्तन हुए हैं।

* राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005, पाठ्यचर्या बदलाव के लिए व्यवस्थागत सुधार, राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र, एन.सी.ई.आर.टी., 2009.

1. अतीत का अवलोकन और भविष्य की योजना

भारतीय संविधान के 86वें संशोधन (2002) ने 6 से 14 वर्ष तक के सभी बच्चों को शिक्षा का अधिकार मुहैया कराया है। यह एक देश के द्वारा 20 करोड़ बच्चों से किए गए वायदे का नवीनीकरण है। राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांत (भारतीय संविधान का अनुच्छेद 45) बच्चों के जन्म से उनके स्कूल पहुँचने (0-6 साल) तक की अवधि में उनकी देखभाल और सुरक्षा देने को कहते हैं। इसका असर देश के उन 15 करोड़ बच्चों पर पड़ता है जिनका स्वास्थ्य और देखभाल एक ऐसा आदेशपत्र है जिसका सम्मान करना राज्य की बाध्यता है। इस संदर्भ में अपने स्कूलों की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए और भारतीय शिक्षा व्यवस्था में बदलाव के लिए हमारी यह ज़रूरत हो जाती है कि हम कम-से-कम कक्षा दस तक की स्कूली शिक्षा के सार्वभौमीकरण की निरंतर असफलताओं पर गंभीरतापूर्वक विचार करें, ताकि यह भारतीय संविधान में अतर्निहित समाज के दर्शन को साकार करें।

1.1 सीखने का स्तर नीचा, स्कूल छोड़ने की दर ऊँची

आज़ादी के सत्तावन साल बाद भी, एक अनुमान के अनुसार 5 से 15 वर्ष की उम्र समूह के 10-12 करोड़ बच्चे या तो कभी स्कूल गए ही नहीं या फिर उन्होंने स्कूल छोड़ दिया। ये अपने देश के बच्चों की

आबादी का लगभग 50% है। स्कूल के बाहर रह गए बच्चों का निरंतर शोषण हो रहा है तथा ये काम के बोझ तले पिसते चले जा रहे हैं। अपनी क्षमता को साकार करने की संभावनाएँ इन बच्चों के पास काफ़ी कम हैं। अवैतनिक घरेलू कामों और असंगठित क्षेत्रों (Unorganised Sectors) में काम करने वाले ये बच्चे न तो श्रमिक के रूप में हमारी चेतना का हिस्सा बनते हैं, न ही बच्चों के रूप में। स्कूल के बाहर रहने वाली लड़कियाँ काफ़ी छोटी उम्र में बाल विवाह का शिकार होती हैं जो उनके संपूर्ण विकास और वृद्धि को प्रभावित करता है। मानसिक और शारीरिक चुनौतियों का सामना करने वाले बच्चों को पूरी तरह से ही नज़रअंदाज़ कर दिया जाता है। उन्हें किसी भी तरह की स्कूली-शिक्षा को हासिल करने में भयंकर परेशानियाँ आती हैं।

अब यह एक स्थापित सत्य है कि सरकारी स्कूल मुख्यतः गरीबों के लिए हैं। इन स्कूलों में पढ़ने वाले ज़्यादातर बच्चे तमाम अवरोधों से गुज़रते हुए इन स्कूलों में पहुँचते हैं। यद्यपि यह व्यवस्था दुनिया की सबसे बड़ी शिक्षा व्यवस्थाओं में से एक है पर दुर्भाग्यवश यह बेकार और अक्षम है। यह मूल तौर पर एक राष्ट्रीय सरोकार का मसला है कि 54.6% बच्चे (56.9% लड़कियाँ) कक्षा आठ तक की पढ़ाई पूरी करने के पूर्व ही स्कूल छोड़ देते हैं और 66% बच्चे (68.6% लड़कियाँ) कक्षा 10 से पहले ही स्कूलों को छोड़ देते हैं। (भारत सरकार, मानव संसाधन विकास मंत्रालय की वेबसाइट पर

शैक्षणिक वर्ष 2001-02 का अंतरिम आँकड़ा)¹ जनजातीय क्षेत्रों तथा पिछड़े जिलों में और अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों में स्कूल जाने वाले बच्चों के प्रतिशत में भारी कमी है। साथ ही पाँच साल तक निरंतर स्कूल में जाने के बावजूद केवल 60% बच्चे ही पढ़, लिख और बुनियादी गणना कर पाते हैं। मानो व्यवस्था रची ही ऐसी गई हो कि वह केवल उन थोड़े से बच्चों का ध्यान रखे जो कक्षा एक में प्रवेश लेते हैं और कक्षा दस तक पहुँचते हैं। वास्तव में, नगर-निगम स्कूल या सरकारी ग्रामीण स्कूल की कक्षा एक में दाखिला लेने वाला कोई विद्यार्थी कक्षा दस तक किसी दुर्घटना से ही पहुँच पाता है न कि इस व्यवस्था की रचना से। कई प्रकार के निजी और सार्वजनिक स्कूलों के प्रावधान देश में एक असंगत और असमान शिक्षा व्यवस्था के लिए जिम्मेदार हैं।

2.1 निजी विद्यालय

इन सबके अलावा, सरकार द्वारा मान्यताप्राप्त ऐसे भी स्कूल हैं जिनका प्रबंधन निजी तौर पर किया जाता है, जिनमें से कुछ सरकार द्वारा अनुदान भी पाते हैं और बाकी अन्य को कोई अनुदान नहीं मिलता (गैर-अनुदान प्राप्त स्कूल)। यद्यपि समूची व्यवस्था में इन स्कूलों का प्रतिशत कम है पर इनकी संख्या तेजी से बढ़ रही है और इनका यह विस्तार सरकारी स्कूलों के लिए ज़बरदस्त चुनौती है। ऐसे निजी स्कूल भी हैं जो विशिष्ट ज़रूरत वाले बच्चों को ध्यान में रखकर चलाए जाते हैं जैसे बच्चे जो देख नहीं सकते, सुन नहीं सकते या धीमी गति से सीखने वाले बच्चे। यह दुखद स्थिति है कि बड़ी संख्या में गैर-मान्यताप्राप्त

वैकल्पिक स्कूल	— छह घंटे और चार घंटे चलने वाले स्कूल और 'चल-स्कूल'।
आश्रमशाला	— आदिवासी बच्चों के लिए आदिवासी कल्याण मंत्रालय द्वारा वित्तीय समर्थन से चलाए जाने वाले औपचारिक आवासीय विद्यालय।
आवासीय स्कूल	— वंचित समूह जैसे अनुसूचित जाति के लिए आवासीय स्कूल जो वंचित समुदाय के कल्याण के लिए संबंधित मंत्रालय के वित्तीय समर्थन से चलते हैं।
केंद्रीय विद्यालय	— केंद्र सरकार के कर्मचारियों (सशस्त्र सेनाओं सहित) के बच्चों के लिए, जिनका स्थानांतरण समूचे देश में कहीं भी हो सकता है।
नवोदय विद्यालय	— भारत सरकार द्वारा पूरी तरह से वित्तीय समर्थित और प्रबंधित तथा उत्कृष्टता के लिए चलाए जाने वाले आवासीय स्कूल।

¹ प्राथमिक स्तर पर स्कूल छोड़ने की दर (कक्षा 1 से 5) लड़के 38.4%, लड़कियाँ 39.9% और कुल 39%। उच्च प्राथमिक स्तर पर स्कूल छोड़ने की दर (कक्षा 1 से 8); लड़के 52.9%, लड़कियाँ 56.9% और कुल 54.6%। कक्षा 1 से 10 तक स्कूल छोड़ने की दर — लड़के 64.2%, लड़कियाँ 68.6% और कुल 66%.

स्रोत : डी.ओ.ई.ई.एल. मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार की वेबसाइट, शैक्षणिक वर्ष 2001-02 का अंतरिम आँकड़ा.

स्कूलों और ट्यूशन केंद्रों का विकास हो रहा है जो केवल उन बच्चों का ध्यान रखते हैं जो इसकी कीमत दे सकते हैं और यह गरीबी की स्थितियों में रह रहे बच्चों के विरुद्ध चली गई एक और चाल है।²

2.2 विद्यालयों में सुविधाएँ

एक ओर जहाँ स्कूलों के कई प्रकार हैं वहीं दूसरी ओर सरकारी व्यवस्था के इन स्कूलों में मौजूदा बुनियादी सुविधाओं की उपलब्धता में भी व्यापक अंतर है। छोटे गाँवों में ऐसे भी स्कूल हैं जिनके पास अपना कोई भवन नहीं है और ये स्कूल निजी, सामुदायिक या किराए के कमरों में चलते हैं। वहीं दूसरी ओर बड़े गाँवों में ऐसे स्कूल हैं जिनके पास ईंट और पत्थरों से निर्मित अपना भवन है और उनके परिसर में वृक्ष भी लगे होते हैं। महानगरीय क्षेत्रों में नगर निगम के स्कूलों के पास बहुधा भवन हुआ करते हैं जिनकी आरंभिक रचना तो अच्छी होती है लेकिन निरंतर उपेक्षा की वजह से काफ़ी खराब हालत में होते चले जाते हैं।

चूँकि सरकारी स्कूलों के संदर्भ में ऐसी समझ है कि वे अच्छी शिक्षा देने के लिए अनुपयुक्त और काफ़ी कमजोर हैं इसलिए उनकी जगह तेज़ी के साथ निजी स्कूल लेते जा रहे हैं। उनमें से अधिकांश का एकमात्र बिक्री विज्ञापन होता है - 'अँग्रेज़ी माध्यम'।

2.3 व्यवस्था संबंधी सरोकार

वर्तमान में स्कूल समुदाय और उसकी आर्थिक विभिन्नता को दर्शाते हैं, साथ ही वे इस अलगाव को मज़बूत भी कर रहे होते हैं। इस पूरी व्यवस्था में जो मुख्य मसला है वह यह है कि स्कूल को ऐसे रखा और समझा जाए कि यह सामाजिक बदलाव को लाने वाली एक संस्था बने और एक ऐसा स्थान हो जहाँ बच्चों के अधिकारों की सुरक्षा होती हो तथा जहाँ समता और न्याय की वही संकल्पना साकार हो जैसा संविधान में परिकल्पित किया गया है। भारतीय संदर्भ में स्कूल को एक ऐसी संस्था के तौर पर लिया जाता है जो बच्चों को काम और मजदूरी के चक्के तले पिसने से, बाल विवाह से, लैंगिक असमानता से, विभिन्न प्रकार के सामाजिक और सांस्कृतिक भेदभावों से बचाये। स्कूल ऐसी संस्थाएँ हैं जहाँ बच्चे आना पसंद करें, संवाद करें, आत्मसम्मान और गरिमापूर्वक सीखें। इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण है कि स्कूल ऐसे स्थान बनें जहाँ बच्चों के शिक्षा के अधिकार की रक्षा हो सके और जिसे वे प्राप्त कर सकें। अंदर ही बच्चों तक पहुँचने में अक्षम पाई जाती है। यह अक्षमता गंभीरता से विचार करने की माँग करती है।

3. पहली पीढ़ी के शिक्षार्थियों को निरुत्साहित और अपमानित किया जाना

कई शिक्षार्थी ऐसे होते हैं जिनकी पहली पीढ़ी

²प्रतीची (भारत) ट्रस्ट : द प्रतीची एजुकेशन रिपोर्ट, नयी दिल्ली-2002, प्रोब रिपोर्ट - पब्लिक रिपोर्ट ऑन बेसिक एजुकेशन इन इंडिया, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली 1999 और रामचंद्रन, विमला (संपा.), जेंडर एंड सोशल इक्विटी इन प्राइमरी एजुकेशन - हाईरार्की ऑफ़ एक्सेस, सेज पब्लिकेशन, नयी दिल्ली-2004.

शिक्षा हासिल कर रही होती है इसलिए उनके अभिभावक उनके स्कूली काम में किसी तरह की मदद कर पाने में सक्षम नहीं होते हैं। बच्चों के लिए इसमें ढलना काफ़ी मुश्किल होता है, वे एक धीरे सीखने वाले बुरे विद्यार्थी के रूप में निरंतर अपमानित होते हैं। वे उत्तीर्ण न हो सकने वाले, न सीखने वाले विद्यार्थी के रूप में वर्गीकृत कर दिए जाते हैं। वे लगातार निरुत्साहित किए जाते हैं और बहुधा अंत में परीक्षाओं में फेल हो जाते हैं। वे पाठ्यपुस्तक, लिखने-पढ़ने का सामान और पोशाक न खरीद पाने और आधिकारिक तथा गैर-आधिकारिक 'स्कूली शुल्क' न दे पाने की अपनी अक्षमता की वजह से दंडित भी किए जाते हैं। इसके अलावा कई बार उन्हें शारीरिक दंड भी दिया जाता है। जाहिर है कि ऐसे में केवल यही अपेक्षित है कि वे अपने आपको स्कूली व्यवस्था से बाहर धकेले जाने की स्थिति में पाए जाते हैं।³

3.1 शारीरिक और मानसिक चुनौतियों वाले बच्चे

सहयोगी सेवाओं के अभाव तथा भौतिक सुलभता एवं शिक्षण शास्त्रीय रणनीति दोनों मायनों में अगम्यता की वजह से शारीरिक और मानसिक चुनौतियों वाले बच्चे स्कूली-

शिक्षा से प्रभावी ढंग से बहिष्कृत कर दिए जाते हैं। उनके सीखने में और स्कूली-शिक्षा की प्रक्रिया में भाग लेने में आने वाले अवरोधों को मुश्किल ही समझा जाता है। नतीजन ये बच्चे बिना देखभाल के ही स्कूल से काफ़ी पीछे रह जाते हैं।

4. स्वास्थ्य और कुपोषण

हालिया साक्ष्य ऐसा दिखाते हैं कि ज्यादातर गरीब बच्चे कुपोषण का शिकार होते हैं। उनके पास साफ़ पानी, शौच और स्वास्थ्य की देखभाल के लिए सुलभ साधन नहीं होते नतीजतन वे निरंतर बीमार पड़ते रहते हैं जैसे — संक्रमण से ग्रसित हो जाना, गहरी खाँसी और सर्दी या फिर दूसरी तरह की नियमित बीमारियों⁴ का होना। सरकारी स्कूल के विद्यार्थियों का एक बड़ा हिस्सा गरीबी की परिस्थितियों से आने वाले बच्चों का होता है। खराब पोषण और चक्रीय बीमारियाँ (सफ़ाई की कु-व्यवस्था और स्वास्थ्य सुविधाओं की असुलभता के चलते) नियमित रूप से स्कूल जाने की बच्चों की क्षमता को काफ़ी प्रभावित करती हैं। यद्यपि स्कूल की दिनचर्या में दोपहर का भोजन एक स्वागत योग्य कदम है, लेकिन काफ़ी कुछ किया जाना अभी बाकी है अगर हम खराब पोषण और स्वास्थ्य के शिक्षा पर प्रभाव पर ध्यान देने की ज़रूरत समझें।

³ झा और झींगरन, एलिमेंट्री एजुकेशन फॉर द पुअरेस्ट एंड अदर डिप्राइव्ड ग्रुप, सेंटर फॉर पॉलिसी रिसर्च, नयी दिल्ली 2002 और रामचंद्रन, विमला तथा ई.आर. यू. टीम, स्नेक्स एंड लैडर - फैक्टर इंप्लुएनसिंग सक्सेसफुल प्राइमरी स्कूल कंपलीशन फॉर चिल्ड्रेन इन पावर्टी कंटेक्सट, साउथ एशियन ह्यूमन डेवलपमेंट सेक्टर, रिपोर्ट नं. 6, विश्व बैंक, नयी दिल्ली 2004.

⁴ भारत सरकार, योजना आयोग, मिड-टर्म रिव्यू ऑफ़ नाइंथ फाइव ईयर प्लान, नयी दिल्ली 2001, भारत सरकार, योजना आयोग, रिपोर्ट ऑफ़ द वर्किंग ग्रुप ऑन चाइल्ड डेवलपमेंट फॉर द टेंथ फाइव ईयर प्लान, 2001 — वर्ल्ड बैंक, रीचिंग द चाइल्ड — एन इंटीगिरेटेड एप्रोच टू चाइल्ड डेवलपमेंट, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली-2004.

4.1 कमजोर सैद्धांतिक ढाँचा

वास्तव में गरीबी से भी ज़्यादा उस 'गरीबी के तर्क' से कि गरीब बच्चे स्कूल नहीं आ सकते क्योंकि उन्हें कमाना होता है, इन बच्चों को स्कूल में ले जाने वाली कोशिशें हताश होती हैं। यह तर्क इस कदर हतोत्साहित करने वाला होता है कि गरीब बच्चों को प्रतिदिन स्कूली व्यवस्था में वहाँ के इस तरह के माहौल से संघर्ष करना पड़ता है।

4.2 नियम और प्रक्रियाओं में रूढ़िबद्धता (गैर-लचीलापन)

स्कूल के बाहर छूट चुके बच्चों को दुबारा स्कूल से जुड़ने में कई तरह की परेशानियाँ आती हैं। व्यवस्था में एक तरह की जड़ता होती है तथा उन बच्चों को स्कूल में दाखिला नहीं मिलता जो दाखिले की अंतिम तारीख के बाद आते हैं। इसके अलावा ऐसी कोई तैयारी भी देखने को नहीं मिलती कि उन पुराने बच्चों को जो कभी स्कूल छोड़ चुके होते हैं और दुबारा स्कूल आना चाहते हैं, स्कूल में समायोजित किया जाए। न ही उनके लिए कोई जगह मिलती है जिन्होंने कुछ वर्ष औपचारिक व्यवस्था से बाहर रह कर सीखा है। यह उन बच्चों के प्रति भी गैर-संवेदनशीलता दिखाती है जो औपचारिक धारा में ब्रिज कोर्स, तेज गति से सीखकर और विशिष्ट कक्षाओं के ज़रिए आते हैं। यह व्यवस्था उन्हें स्कूल में समायोजित होने के लिए आवश्यक समय और अकादमिक सहयोग न देकर, उनका बहिष्कार करती है।

4.3 परीक्षा में फेल होना

गरीब बच्चों के पास कोई सहयोगी व्यवस्था नहीं होती (जैसे ट्यूशन/कोचिंग, घर और स्कूल में पढ़ने-लिखने का वातावरण इत्यादि) ताकि वे जटिल पाठ्यचर्या से अपना तालमेल बिठा सकें, खास तौर से प्रारंभिक और माध्यमिक स्कूल स्तर पर, इसका परिणाम यह होता है कि जो बच्चे बोर्ड परीक्षा देते हैं उनमें 50% फेल हो जाते हैं। यह परिणाम अपने प्रति एक तरह के निकम्मेपन के बोध से तो भरता ही है साथ ही स्कूली व्यवस्था से बाहर निकलने का कारण भी बनता है।

5. अनुमानित व्यय

गरीब बच्चों के लिए प्रति बच्चा वार्षिक अनुमानित खर्च 1200 से 1500 रुपए के बीच में है। यह व्यवस्था यह अपेक्षा करती है कि वे बच्चे जिन्हें स्कूल जाने में कठिनाई होती है और जिनके अभिभावक स्वयं भी स्कूल नहीं गए हैं, इतने वार्षिक खर्च में पढ़-लिख सकेंगे। यदि इसकी तुलना मध्यम वर्ग और उच्च वर्ग से आने वाले बच्चों पर होने वाले खर्च से की जाए तो यह उस राशि के दसवें भाग से भी कम होगा। सभी बच्चे स्कूल में नहीं हैं और न ही सीख रहे हैं, इस चिंता को ध्यान में रखते हुए गरीब बच्चों के लिए अनुमानित खर्च को उपयुक्त ढंग से बढ़ाया जाना चाहिए। **जो अभी भी करना है...**

यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि उपरोक्त तमाम अवरोध हटाए जाएँ ताकि स्कूल को स्कूल, शिक्षक को शिक्षक बनाया जा सके और बच्चों

को बचपन मिल सके। अगर हम पाठ्यचर्या की रूपरेखा में व्यवस्थागत बदलाव को प्रभावित करना चाहते हैं तो हमें दोनों मसलों का हल निकालना होगा, पहला कि बच्चे कक्षा दस तक स्कूलों में ठहर सकें और दूसरा, स्कूली व्यवस्था को इस बात के लिए तैयार करना होगा कि वह उन तमाम बच्चों को अपना सके और सहयोग कर सके जो कि स्कूल के बाहर हैं ताकि वे स्कूलों में आ सकें।

6. शिक्षकों को निर्णय लेने की अनुमति

शिक्षक अपने पेशेवर होने का दर्जा चुनौतियों की उस दुरूहता से पाते हैं जिसका सामना वे शिक्षा की विशिष्ट प्रवृत्तियों से जूझते समय करते हैं जिसे कि उन्हें प्रत्येक बच्चे को देना होता है ताकि उनके शिक्षा के अधिकार की रक्षा हो सके। जरूरत है कि उनके पास इसका निर्णय करने की शक्ति होनी चाहिए कि वे क्या पढ़ाएँ और बच्चों का किस प्रकार मूल्यांकन करें या उनको समझें। यह शिक्षक ही होता है जो बच्चों के द्वारा महसूस किए जाने वाले सामाजिक, सांस्कृतिक और भाषायी अवरोधों की परेशानियों को सीधे-सीधे महसूस करता है। स्कूल के बाहर के प्रत्येक बच्चे को विद्यार्थी के रूप में बदला ही जाना चाहिए।

शिक्षकों को यह व्यावसायिक चुनौती के रूप में जरूर स्वीकारना होगा।

शिक्षा के सार्वभौमिकरण का लक्ष्य तब तक नहीं प्राप्त किया जा सकता जब तक कि हमारे पास ऐसे शिक्षक न हों जिनकी निष्ठा संदेहों से परे हो — जिनमें हम पूरी तरह से विश्वास कर सकें।

6.1 शिक्षण पेशे में हो रहे क्षय का सामना

शिक्षक वह धुरी है जिसके इर्द-गिर्द शिक्षा-व्यवस्था घूम रही है। वर्तमान संदर्भ में तेजी से बढ़ रही स्कूली व्यवस्था और वित्तीय घाटे (खास तौर से राज्यों में) वाली स्थिति में, समुचित संख्या में शिक्षकों की अनुपलब्धता एक नये तरह के शिक्षकों के आगमन की ओर बढ़ती है। स्कूली शिक्षकों की सामाजिक स्थिति में तेजी से गिरावट आ रही है तथा शिक्षक को सरकारी स्कूल के तमाम कुप्रशासन और बीमारियों के लिए ज़िम्मेदार ठहराया जा रहा है। जबकि इसको पहचाना भी जा रहा है कि शिक्षक का उत्तरदायित्व काफ़ी महत्वपूर्ण मसला है तब एक पेशे के रूप में शिक्षक के पेशेगत चरित्र में जो हास हो रहा है वह निम्न से आंतरिक तौर पर जुड़ा है।⁵

⁵ 1950 के बाद से आने वाली लगभग तमाम महत्वपूर्ण रपटों में इस बात की महत्ता पर जोर दिया गया है कि पर्याप्त संख्या में शिक्षकों की नियुक्ति होनी चाहिए, शिक्षक बनने के लिए शुरुआती न्यूनतम योग्यता सुनिश्चित की जानी चाहिए, शिक्षकों को अंतःसेवा शिक्षक प्रशिक्षण के माध्यम से अकादमिक सहयोग दिया जाना चाहिए तथा शिक्षकों की नैतिकता और प्रेरणा पर महत्वपूर्ण रूप से ध्यान दिया जाना चाहिए। यह नीतिगत दस्तावेजों के लिए एक लगातार चलने वाला विषय रहा है जैसे राष्ट्रीय शिक्षा आयोग 1964, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968, 1986 और 1992। 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में एक पूरा खंड है, 'अध्यापक'— "किसी समाज में अध्यापकों के दर्जे से उसकी सांस्कृतिक-सामाजिक दृष्टि का पता लगता है। कहा गया है कि कोई भी जनता अपने अध्यापकों के स्तर से ऊपर नहीं उठ सकती। सरकार और समाज में ऐसी परिस्थितियाँ बननी चाहिए जिनसे अध्यापकों को निर्माण और सृजन की ओर बढ़ने की प्रेरणा मिले। अध्यापकों को इस बात की आजादी होनी चाहिए कि वे नये प्रयोग कर सकें और संप्रेषण की उपयुक्त विधियाँ और अपने समुदाय की समस्याओं

6.2 अपर्याप्त शिक्षक

विद्यार्थी और शिक्षक का अनुपात कई क्षेत्रों में अपेक्षित मानक से काफी नीचे है और अधिकांश शहरी क्षेत्रों के स्कूलों में शिक्षकों की बहुलता है। हालिया आंकलन से पता चलता है कि सारे प्राथमिक स्कूलों का 15% (95,588) एक कमरे में चलने वाले स्कूल हैं — जबकि ग्रामीण क्षेत्रों के हिस्से में एक कक्षा वाले स्कूलों का 95% है। 17.51% स्कूलों (1,11,635) के पास केवल एक शिक्षक है। एक शिक्षक वाले 96% स्कूल ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित हैं (डी. आई.एस.ई., नीपा 2005)। इसका मतलब यह होता है कि शिक्षकों के पास बच्चों को स्कूल में रखने और उन्हें सिखाने के लिए, जो आवश्यक है उसके लिए न तो समय होता है और न ही ऊर्जा। इसके अलावा राज्य शिक्षा के लिए बनाए

मानकों में काफी ढील देते हैं—जैसे प्रति समूह शिक्षक संख्या और उनकी शैक्षणिक योग्यता में भी। यह उनके पेशेगत चरित्र में और हास पैदा करता है।⁶

7. गैर-शिक्षकीय काम

स्कूली शिक्षकों के पास पढ़ाने के अलावा कई और तरह के काम होते हैं जैसे ग्रामीण विकास योजनाओं के लिए आँकड़ों को एकत्र करना, राष्ट्रीय जनगणना, चुनाव के काम और अन्य प्रचार कार्य जो उन्हें जिला के अधिकारीगण करने को कहते हैं। इनसे वे कक्षा से दूर होते जाते हैं। एक तरह से यह सब स्कूली शिक्षक के गैर-प्रभावी शिक्षण को वैधता देने का काम करते हैं तथा साथ ही उसके पेशे को छोटा बना देते हैं।

और क्षमताओं के अनुरूप नये उपाय निकाल सकें। अध्यापकों को भर्ती करने की प्रणाली में इस प्रकार परिवर्तन किया जाएगा कि उनका चयन उनकी योग्यता के आधार पर व्यक्ति निरपेक्ष रूप से और उनके कार्य की अपेक्षाओं के अनुरूप हो सके। शिक्षकों का वेतन और सेवा की शर्तें उनके सामाजिक और व्यावसायिक दायित्व के अनुरूप हों और ऐसी हों जिनसे प्रतिभाशाली व्यक्ति शिक्षण व्यवसाय की ओर आकृष्ट हों। यह प्रयत्न किया जाएगा कि पूरे देश में वेतन में, सेवा/शर्तों में और शिकायतें दूर करने की व्यवस्था में समानता का वांछनीय उद्देश्य प्राप्त किया जा सके। अध्यापकों की तैनाती और तबादले में व्यक्ति-निरपेक्षता लाने के लिए निर्देशक सिद्धांत बनाए जाएँगे। उनके मूल्यांकन की एक पद्धति तय की जाएगी जो स्पष्ट होगी, आँकड़ों एवं तथ्यों पर आधारित होगी और जिसमें सबका योगदान होगा। ऊपर के ग्रेड में तरक्की के लिए शिक्षकों को उचित अवसर दिए जाएँगे। जवाबदेही के मानक तय किए जाएँगे। अच्छे कार्य को प्रोत्साहित किया जाएगा और निष्क्रियता को निरुत्साहित। शैक्षिक कार्यक्रमों के बनाने और उन्हें क्रियान्वित करने में अध्यापकों की भूमिका महत्वपूर्ण बनी रहेगी।” (राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 (1992 के संशोधनों सहित), मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, भाग-9, पृ. 43-44).

⁶ शिक्षकों की संख्या में लगातार बढ़ोत्तरी हुई है। प्राथमिक स्तर पर 1990 में इनकी संख्या 16,16,000 थी जो 2001 में 18,96,000 हो गई तथा उच्च प्राथमिक स्तर पर 1990 में 10,73,000 थी जो 2001 में 13,26,000 हो गई। इनमें से 2,59,099 पैरा-शिक्षक (टेके के शिक्षक) जिनमें 67.94 पैरा-शिक्षक देश भर के प्राथमिक विद्यालयों में हैं।

स्रोत : अरुण मेहता, डी.आई.एस.ई. डाटा 2003-2004, नीपा 2005.

शिक्षक शिक्षा के लिए सिफ़ारिश

- ६ उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी कई मायनों में विशिष्ट होते हैं इसलिए उनकी शिक्षा की यह जरूरत है कि उनके शिक्षक जरूरत के अनुसार प्रशिक्षित हों।
- ६ इस समय +2 के शिक्षकों के लिए देश में कोई भी सेवापूर्व शिक्षक-प्रशिक्षण का कार्यक्रम नहीं है जैसा कि एक समय क्षेत्रीय शिक्षा संस्थानों में 'एम.एस.सी. एजुकेशन' का कार्यक्रम होता था। ऐसे कार्यक्रमों को बड़े पैमाने पर लाया जाना चाहिए, अगर उपर्युक्त प्रशिक्षित शिक्षक इस स्तर पर पाठ्यचर्या का प्रबंधन कर सकें।
- ६ सेवापूर्व स्तर के शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रमों में 'मार्गदर्शन एवं परामर्श' का एक पर्चा होना चाहिए जिससे कि उन्हें अपने अनुशासन में अपेक्षित अभिमुखीकरण हो सके और प्रशिक्षण मिल सके।

मानव शक्ति का नियोजन

- ६ माध्यमिक स्तर पर प्रशिक्षित मानव शक्ति की माँग और उपलब्धता में एक बड़ा अंतर स्पष्ट तौर पर देखने को मिलता है।
- ६ ऐसा इसलिए होता है कि न तो कोई ऐसी एजेंसी है, न ही कोई निकायगत तंत्र जिससे पता लगे कि राज्य को किस हद तक अतिरिक्त मानव शक्ति की उपलब्धता स्वीकार है।
- ६ प्रशिक्षित मानव शक्ति का आधिक्य सिर्फ बेरोज़गारी को ही नहीं पैदा करता है बल्कि प्रबंधन द्वारा यह शिक्षकों के शोषण का कारण भी बनता है।
- ६ इस संदर्भ (उपरोक्त) में निजी और सरकारी प्रबंधन में कोई अंतर देखने को नहीं मिलता।

8. शिक्षा का राजनीतिकरण

पदोन्नति और विशिष्ट काम के संदर्भ में भ्रष्टाचार (स्थानान्तरण के लिए या फिर स्थानान्तरण रुकवाने के लिए, शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थान में प्रतिनियुक्ति या अन्य मनचाही नियुक्तियों के लिए रिश्वत) और न्यायालय में दायर मामलों से शिक्षक समुदाय का सम्मान काफी घटा है। शिक्षकों के कैडर का प्रबंधन राजनीति से बुरी तरह से ग्रस्त हो चुका है जो कि कई राज्यों में नये शिक्षकों की नियुक्ति को गहरे तौर से प्रभावित करता है। कई

राज्यों ने तो नियमित शिक्षकों को एक 'मृत प्रायः कैडर' मान लिया है - और तर्क यह है कि ठेके पर शिक्षक रखने से वित्तीय और प्रशासनिक सहूलियत रहती है।

9. अनावश्यक किस्म का शिक्षक-प्रशिक्षण

अच्छी शिक्षा के लिए शिक्षक-प्रशिक्षण बच्चे और उसके शिक्षा के अधिकारों से अलग शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए अपने-आप में एक साध्य है। शिक्षक नियमित रूप से कुछ सूत्र

कुछ सुझाव

प्राथमिक स्तर पर, स्कूल के पाठ्यक्रम और पाठ्यचर्या को लेकर फैली भ्रांति को हटाने के लिए काम करना चाहिए। इस पर एक सार्वजनिक रूप से जागरूकता होनी चाहिए कि अभिभावक व्यवस्था से यह माँग वैध तरीके से कर सकते हैं — कि बच्चे जो कुछ सीखें वह उसी भाषा और माहौल में सीखें जो उनके लिए कुछ मतलब रखता हो। गरीब बच्चों से जिस उपलब्धि को प्राप्त करने की उम्मीद की जाती है वह अन्य बच्चों के जैसी ही होनी चाहिए। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि इसे पहचाने जाने की जरूरत है कि अपेक्षा का निम्न स्तर या फिर न्यूनतम अधिगम स्तर पर जोर देना इन गरीब बच्चों को फिर से हाशिए की ओर ढकेलेगा।

ग्राम पंचायत इसके लिए तैयार हो कि वह संबंधित अधिकारियों/प्रतिष्ठानों का ध्यान इस ओर दिला सके कि स्कूल के शिक्षकों को स्कूल में शिक्षण करते समय किस-किस तरह के सहयोग की जरूरत है।

शिक्षा की गुणवत्ता को सुधारने के लिए मसीहाई अंदाज़, ऊपर से नीचे, नियंत्रित कार्यक्रम न सिर्फ़ गैर-कार्यात्मक हैं बल्कि विपरीतगामी भी हैं।

वाक्यों का प्रयोग नारों की तरह करते हैं 'बालकेंद्रित शिक्षा', 'खुशनुमा माहौल में सीखना', 'ज्ञान से अज्ञान की ओर' इत्यादि, जिसे वे शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम के दौरान पूरी तरह से एक अलग और कटे हुए संदर्भ में सीखते हैं। चूँकि ये नारे शिक्षक के खुद के काम की पेशेवराना निष्ठा जैसी किसी जीवन्त प्रक्रिया से निकल कर नहीं आते इसलिए बहुधा ये सतही और बेकार साबित होते हैं। शिक्षक जिन विविध प्रकार की परिस्थितियों तथा संदर्भों का सामना करने में व्यस्त रहता है, उसके लिए उसे निर्देशों का अनुकरण करने के बजाय नियमों की रचना करने तथा उपयोग में लाने संबंधी योग्यताओं से लैस होने की आवश्यकता है। उन्हें विशेष परिस्थिति से निपटने के लिए सहयोग और लचीलेपन की जरूरत है। प्रशिक्षण कार्यक्रम, सहयोगी तरीके और प्रशिक्षक इन जरूरतों का सामना करने के लिए तैयार नहीं हैं।

10. स्कूल-व्यवस्था का एक हिस्सा

भारत में शिक्षा नीति विकेंद्रीकरण और आवास स्थान स्तर पर बनी योजनाओं के नारों के बीच ही व्यक्त होती रही है। नीति के दस्तावेज़ योजनाओं में संदर्भ-विशेष की जरूरत को चिह्नित करते रहे हैं। स्थानीय संस्थाओं जैसे स्कूल शिक्षा समिति (स्कूल एजुकेशन कमेटी-एस.ई.सी.), ग्राम शिक्षा समिति (विलेज एजुकेशन कमेटी-वी.ई.सी.), स्कूल प्रबंधन समिति (स्कूल मैनेजमेंट कमेटी-एस.एम.सी.) और चुने गए निकाय जैसे ग्राम पंचायत इत्यादि के जरिए समुदाय की भागीदारी को एक महत्वपूर्ण भूमिका दी गई।

व्यवहार में स्कूल, व्यवस्था का आखिरी छोर होता है जो कि ऊपर से आदेश और निर्देश पाता है। उनसे यह उम्मीद की जाती है कि वे सर्वशिक्षा अभियान के जरिए केंद्र सरकार द्वारा दिए जाने वाले दिशा-निर्देशों का पालन करें। इस संदर्भ में

इतना समझना काफ़ी होगा कि जिस मात्रा में पैसा खर्च किया जाता है और बजट के लिए जो प्रक्रिया तय की जाती है वह स्कूल की बौद्धिक-सत्ता और उसके शिक्षकों और बच्चों की ज़रूरतों के लिए बहुत थोड़ी-सी ही स्वतंत्रता छोड़ता है।

पहली पीढ़ी के शिक्षार्थी के सीखने और स्कूलीकरण की माँग को पूरा करने की प्रक्रिया में एक ठीक-ठाक लचीलापन लाए जाने की ज़रूरत है। शिक्षा विभाग द्वारा प्रशासकीय सुधार और उसमें बदलाव हो ताकि बच्चे सहज महसूस करें, यह पाठ्यचर्या की रूपरेखा और अच्छी शिक्षा के प्रावधान की परिभाषा में ही शामिल है। ज़रूरत इस बात की है कि प्रशासकीय दिशा-निर्देश पाठ्यपुस्तकों से संबंधित कामकाज, सामग्री उत्पादन, परीक्षा संचालन और बच्चे के निरंतर मूल्यांकन में लचीलेपन को प्रोत्साहित करें। शिक्षकों के समूह को परीक्षा का कार्यक्रम रचने की और तमाम मध्यावधि हस्तक्षेपों के बीच बच्चे का मूल्यांकन करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए तथा लंबे समय से विलंबित कामों को सूक्ष्म स्तर पर क्रियान्वित किया जाना चाहिए। जहाँ पर इस कदर स्थानीय और सामाजिक बहुलता हो, उस माहौल में ऊपर से नीचे की ओर चलने वाले संरक्षित कार्यक्रम के ज़रिए हम शिक्षा की गुणवत्ता की बात नहीं सोच सकते।

इसलिए, सबसे पहले अनिवार्य और गैर-समझौतापरक कदम यह होना चाहिए कि भूमिकाओं को लेकर स्पष्टता बने। कक्षा में शिक्षण की प्रकृति के संदर्भ में निर्णय स्कूली शिक्षकों द्वारा लिए जाने की ज़रूरत है — शिक्षा की नौकरशाही में जो लोग ऊपरी स्तर पर हैं उन्हें शिक्षकों की

मदद करने के लिए काम करना चाहिए। व्यवस्था में पारदर्शिता होनी चाहिए और सभी भागीदारों के साथ समान रूप से व्यवहार होना चाहिए। ऐसे तरीके स्थापित किए जाने चाहिए जिससे संविधान में किए गए शिक्षा के उद्देश्यों का असमता लिए हुए विश्लेषण और नियमों का स्वार्थपरक सीमित तथा पक्षपाती प्रयोग पहचाने जा सकें और उन्हें सप्रयास हटाया जा सके। इससे शिक्षकों का आत्मविश्वास बढ़ना चाहिए ताकि वे बच्चों के संवैधानिक अधिकारों की पूर्ति के लिए नयी दिशाओं की खोज कर सकें। राजनीतिक और नौकरशाही संरचनाओं, व्यवस्थाओं तथा व्यक्तियों में दूरदर्शिता लक्ष्यों और नीति की निरंतरता की आवश्यकता है। बदलाव की प्रक्रियाएँ और सुधारों की योजनाएँ लंबी समयावधि के लिए बनाई जानी चाहिए। उन्हें बार-बार न प्राप्त होने वाले और असंभावित लघु अवधि के परिणामों की अपेक्षाओं तक ही सीमित नहीं होना चाहिए। इसमें वर्तमान व्यवस्था की उलटी प्रक्रिया शामिल होगी।

11. स्कूल और समुदाय

वर्तमान नौकरशाही व्यवस्था, जैसा कि वह काम करती है, उसकी कोशिश यह होती है कि उसे कड़ी के आखिरी बिंदु स्कूल और शिक्षक को संयोजित करने की कोशिश करनी चाहिए। यह स्कूल के आगे वृहत समुदाय तक नहीं पहुँचती। समुदाय की समुचित भागीदारी सुनिश्चित करने के क्रम में और समुदाय तथा स्कूल के बीच की दूरी पाटने के लिए स्कूल शिक्षा समिति, ब्लॉक शिक्षा समिति, स्कूल प्रबंधन समिति और शिक्षकअभिभावक संघ (पेरेंट टीचर एसोसिएशन-पी.टी.ए.) और गाँव,

ब्लॉक और जिला स्तर पर बनाई गई स्कूल कलस्टर समितियाँ हैं। व्यवहार में इस नयी संरचनात्मक व्यवस्था का इस्तेमाल सरकार द्वारा योजना को कार्यान्वित करने और लागू करने के लिए ही किया जाता है। ये समितियाँ स्कूल भवन के निर्माण और पैरा-शिक्षकों की नियुक्तियों में शामिल होती हैं। यद्यपि ये शिक्षकों और बच्चों की उपस्थिति और नियमितता इत्यादि के निर्णयों में शामिल नहीं होतीं, न ही उन समस्याओं में जिनका सामना बच्चे स्कूलों में करते हैं। उन समस्याओं से भी उनका कोई सरोकार नहीं होता जिनका सामना शिक्षक करते रहते हैं। दिन-प्रतिदिन उठने वाली समस्याओं को लेकर वे अधिकारियों से कोई बातचीत नहीं करते और न ही किसी ऐसे निकाय का चयन करते हैं जो उनका ध्यान बच्चों और शिक्षकों द्वारा महसूस की जाने वाली परेशानियों जैसे पाठ्यपुस्तकों की कमी, भौतिक सुविधाओं और सार्वजनिक परिवहन इत्यादि की ओर दिलाए।

यह जरूरी है कि ऐसी संस्थाओं की वास्तविक भागीदारी, अपना होने के बोध के साथ, पर जोर दिया जाए। इस संदर्भ में विकेंद्रीकरण का मतलब यह है कि स्कूल को समुदाय के नजदीक लाया जाए।

12. विकेंद्रीकृत शिक्षा व्यवस्था

संविधान के 73वें संशोधन ने प्राथमिक और माध्यमिक स्कूली शिक्षा की ज़िम्मेदारी स्थानीय निकायों को हस्तांतरित की है। उसके बाद विभिन्न राज्यों के बीच स्कूली शिक्षा को लेकर स्थानीय

निकायों के विकास में किसी तरह की कोई समरूपता नहीं दिखी। यद्यपि कई राज्यों में प्रकार्यों का एक बड़ा समूह प्रत्येक स्तर पर पंचायती राज संस्थाओं को दिया गया - जबकि व्यवहार में इन पंचायती राज संस्थाओं ने, खास तौर से तालुक और ग्राम पंचायत ने, थोड़े से ही शिक्षा संबंधी कार्य किए हैं। केंद्रीय शिक्षा सलाहकार समिति (केब) ने 1993 में विकेंद्रीकृत प्रबंधन पर एक समिति गठित की थी जिसे 73वें संशोधन के संदर्भ में शिक्षा के विकेंद्रीकरण के लिए दिशा-निर्देश तैयार करना था।⁷

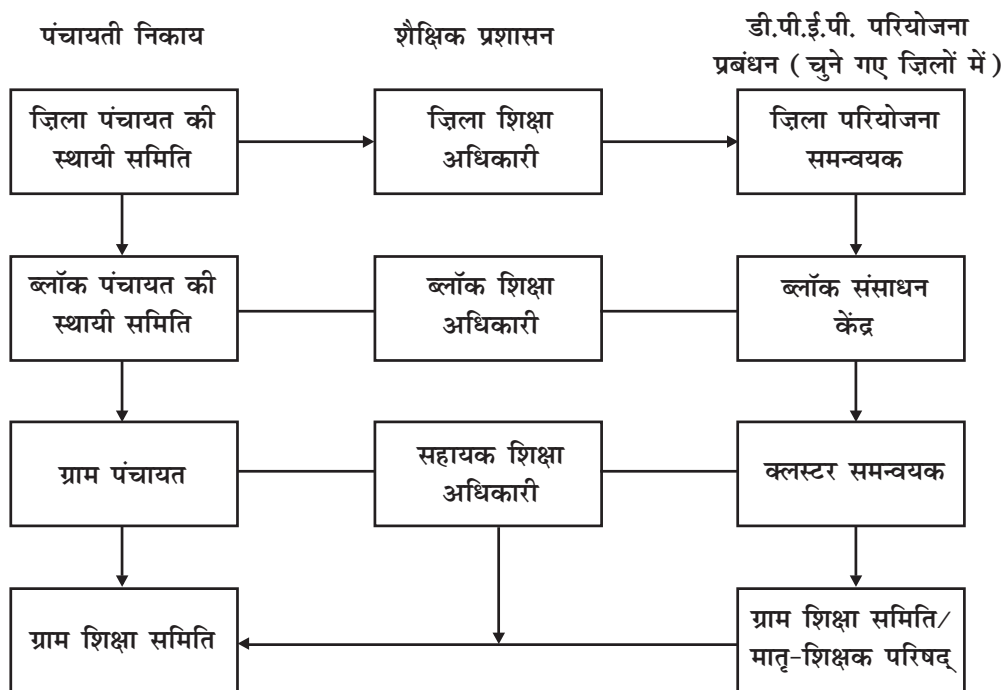
उसमें विभिन्न स्तरों पर कई स्थायी समितियों को बनाने का सुझाव भी दिया था और इन निकायों को समुचित शक्ति, कार्य और उत्तरदायित्व भी दिए गए थे।

यद्यपि व्यवहार में केरल को छोड़कर कहीं वितीय-प्रावधान के संदर्भ में प्रक्रिया स्थानांतरण नहीं दिखता है। विकेंद्रीकरण की इस प्रक्रिया में समस्याएँ भरी पड़ी हैं, पृष्ठ 17 पर दिए गए चार्ट 1 में देखा जा सकता है -

सिर्फ़ यही नहीं विभिन्न स्तर पर काम करने को लेकर संदिग्धता और दुहराव भी देखने को मिलते हैं। काम के संदर्भ में संदिग्धता और दुहराव का नतीजा यह हुआ कि पंचायती राज की ये संस्थाएँ 'निर्णयकर्ता' के बजाय लागू करवाने वाली एजेंसियाँ बन गईं तथा जो कर्मचारी उनके अधीन काम करते हैं वे 'कर्ता' बन गए हैं। इसके अलावा ग्राम पंचायत को शामिल किए बगैर ग्राम

⁷ मानवी मजूमदार, 'डिसेंट्रलाइजेशन, रिफॉर्म एंड पब्लिक स्कूल, ए ह्यूमन पर्सपेक्टिव', जर्नल ऑफ़ एजुकेशनल प्लानिंग एंड एडमिनिस्ट्रेशन, भाग-17, नं. 4, अक्टूबर 2003, पृ. 481-506.

चार्ट 1
स्कूली शिक्षा : उपज़िला और ज़िला स्तर पर संस्थायी संरचनाओं का फैलाव



स्तर पर समानांतर समितियों के ज़रिए काम करवाने की प्रवृत्ति ने लोकतांत्रिक ढंग से चुने गए इन निकायों के कद को काफ़ी छोटा किया है। नतीजतन शिक्षा की तंत्रिय व्यवस्था और कार्य करने वालों की भूमिकाओं और कार्यों में दोहराव और अस्पष्टता पाई गई है।

पंचायती राज संस्थाओं में भूमिका के बँटवारे को लेकर कोई स्पष्टता नहीं है।

12.1 क्लस्टर, ब्लॉक और ज़िला स्तर के मसले

पिछले एक दशक में ज़िला स्तर और स्कूल के बीच ज़िला प्राथमिक शिक्षा

परियोजना (डिस्ट्रिक्ट प्राइमरी एजुकेशन प्रोजेक्ट, डी.पी.ई.पी.) के ज़रिए स्कूल और पाठ्यचर्या की रूपरेखा को मज़बूत करने के लिए संस्थायी संरचनाओं का एक पूरा ताना-बाना बुना गया जिसमें क्लस्टर संसाधान केंद्र, ब्लॉक संसाधान केंद्र, ज़िला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान शामिल थे। प्रकट रूप से जिनका उद्देश्य विकेंद्रीकरण के द्वारा शिक्षक और शिक्षक समूहों को सशक्त करना था ताकि वे सभी बच्चों के प्रति स्कूलों द्वारा भूमिका निर्वाह में पूर्ण योगदान दे सकें।

वास्तविक विकेंद्रीकरण	बेमानी विकेंद्रीकरण
<ul style="list-style-type: none"> • पैसा खर्च करने की शक्ति 	<ul style="list-style-type: none"> • योजना से जुड़े तरीके से खर्च करने की बाध्यता-पैसा खर्च करने पर कोई तार्किक अधिकार न होना
<ul style="list-style-type: none"> • पैसा जुटाने की शक्ति 	<ul style="list-style-type: none"> • प्रतिनियुक्ति स्टाफ़ पर कोई नियंत्रण न होना • संसाधनों को जुटाने के लिए थोड़ा-सा अधिकार
<ul style="list-style-type: none"> • व्यय करने की तार्किक शक्ति 	<ul style="list-style-type: none"> • सीधे उत्तरदायित्व का न होना, किसी अन्य का उत्तरदायित्व होना
<ul style="list-style-type: none"> • स्टाफ़ को लेने, हटाने और नियंत्रित करने की शक्ति 	
<ul style="list-style-type: none"> • सीधा उत्तरदायित्व 	<ul style="list-style-type: none"> • सीधे उत्तरदायित्व का न होना, किसी अन्य का उत्तरदायित्व होना।

12.2 क्लस्टर संसाधन केंद्र

(क्लस्टर रिसोर्स सेंटर — सी.आर.सी.)

सी.आर.सी. शिक्षकों के समूह को इस तरह के अवसर देता है ताकि वे नियमित आधार पर आपस में मिलें और अकादमिक मसलों पर चर्चा करें। ये शिक्षक संसाधन केंद्र देश भर में सर्वशिक्षा अभियान के अंतर्गत कई स्तरों पर मूर्त रूप से साकार किए जा रहे हैं। इनकी संरचनाओं, स्टाफ़ रखने के तरीकों और कामकाज में कई विभिन्नताएँ हैं और कुछ राज्यों में इसका प्रतिनिधित्व क्लस्टर समन्वयक या उस व्यक्ति के द्वारा जो किसी विषय में प्रशिक्षित कर सकता है, होता है। वहाँ पर अपने आप में कोई केंद्र नहीं होता। दरअसल व्यवहार में यह देखा जाता है कि ये केंद्र प्रशासकीय संरचना के ही पुच्छले होते हैं जो स्कूल को थोड़ा-बहुत या फिर कुछ

भी सहायता नहीं देते। क्लस्टर संसाधन केंद्र के लोग स्कूल शिक्षकों से रिपोर्ट, आँकड़े इत्यादि जमा करने का काम कराते हैं तथा सूचना को ज़िला स्तर पर पहुँचाते हैं। केवल कुछ क्षेत्रों को छोड़कर ऐसा हर जगह होता है।

इन केंद्रों में बुनियादी संरचना और सुविधाओं (लाइब्रेरी, कंप्यूटर, छोटी प्रयोगशाला, फोटोकॉपी की सुविधा, मीटिंग करने की जगह) के विकास करने की जरूरत है जिससे शिक्षक की संसाधन संबंधी आवश्यकताएँ पूरी हों और केंद्र एक ऐसा स्थान बना पाए जहाँ शिक्षकों के अनुभवों को इकट्ठा किया जा सके और पाठ्यचर्या संबंधी विकल्प चुनने में सहायता मिल सके।

12.3 ब्लॉक संसाधन केंद्र

(ब्लॉक रिसोर्स सेंटर — बी.आर.सी.)

एक ब्लॉक में आमतौर से 100 से 300 तक प्राथमिक स्कूल होते हैं और लगभग

कार्यों में अस्पष्टता एवं दोहराव

11वीं अनुसूची	ग्राम पंचायत	तालुक पंचायत	ज़िला पंचायत
शिक्षा, जिसमें प्राथमिक और माध्यमिक स्कूल भी हों	सार्वजनिक जागरूकता और प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा में भागीदारी को बढ़ाना। प्राथमिक स्कूलों में पूरा नामांकन और उपस्थिति को सुनिश्चित करना	प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा संबंधी निर्माण को प्रोत्साहित करना, प्राथमिक स्कूल के भवन का निर्माण, मरम्मत और रख-रखाव। युवाओं के क्लब और महिला मंडल के ज़रिए सामाजिक शिक्षा को बढ़ावा देना चाहिए	ज़िलों में शैक्षिक गतिविधियों को बढ़ाना जिसमें प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलों की स्थापना और रख-रखाव भी शामिल है। आश्रम स्कूलों और अनाथालयों की स्थापना और रख-रखाव। शैक्षिक-गतिविधियों का सर्वे और मूल्यांकन
तकनीकी प्रशिक्षण और व्यावसायिक शिक्षा		ग्रामीण दस्तकारी और व्यावसायिक शिक्षा को बढ़ाना	ग्रामीण दस्तकारी और व्यावसायिक प्रशिक्षण केंद्रों की स्थापना और रख-रखाव। ग्रामीण व्यावसायिक प्रशिक्षण केंद्रों को प्रोत्साहित करना और मदद देना
प्रौढ़ और अनौपचारिक शिक्षा	प्रौढ़ साक्षरता को बढ़ाना	प्रौढ़ साक्षरता को लागू करना	प्रौढ़ साक्षरता और अनौपचारिक शिक्षा के कार्यक्रम की योजना बनाना और उसको लागू करना

50-100 मिडिल स्कूल। ब्लॉक संसाधन केंद्र की परिकल्पना प्राथमिक स्कूल स्तर पर शिक्षक की क्षमता के विस्तार के लिए की गई थी। लेकिन यह भी केवल आँकड़ों को इकट्ठा करने वाली तथा प्रशासनिक इकाई बनकर रह गई बजाय एक अकादमिक इकाई होने के। एक समूह के रूप में उनके अनुभव को सक्रिय तौर पर आपस में बाँटा जाना चाहिए। स्कूली शिक्षकों के जमीनी अनुभवों को सामने रखकर

सी.आर.सी. और बी.आर.सी. के कर्मचारी कभी-कभार ही स्कूलों का दौरा कर उनको अकादमिक सहयोग उपलब्ध करा पाते हैं। वे शक्ति और सत्ता के मद में अक्सर स्कूल निरीक्षक और मूल्यांकनकर्ता की भूमिका अपनाते हैं न कि एक अवलोकनकर्ता और सहयोगी की। उन्हें ऐसा होना चाहिए कि वे अवधारणात्मक समझ दे सकें। इनके द्वारा दिया जाने वाला यह मार्गदर्शन शिक्षक द्वारा दिए जाने वाली गतिविधियों और हस्तक्षेप

पर विचार करते वक्त होना चाहिए ताकि इससे बच्चों को मदद मिले।

बी.आर.सी. के संगठन को और उसमें नियुक्त होने वाले व्यक्तियों की भी समीक्षा करने की आवश्यकता है। ब्लॉक में निहित 200 स्कूलों के लिए ऐसे सहयोग की आवश्यकता है जो ऐसी रूपरेखा के अंतर्गत हो जिसमें स्कूल और स्कूली शिक्षक के लिए जीवित संपर्क बन सके। सी.आर.सी. की ही तरह इसे भी बुनियादी संरचना और संसाधनों की ज़रूरत है जिससे यह अनुभवों के सहयोग करने के लिए एक आधार दे सके।

ज़िला स्तर पर ज़िला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान तथा ज़िला शिक्षा अधिकारी और डी.पी.ई.पी. के ज़रिए ये तमाम अनुभव नीतिगत पहलों और बदलावों में दिखने चाहिए। यह सब कुछ शैक्षिक संसाधन, उनकी पूर्ति और तकनीकी तथा प्रशासनिक सहयोग में दिखना चाहिए।

13. ज़िला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान (डाइट)

1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति के बाद और विकेंद्रीकरण को अपनाने के क्रम में प्रत्येक ज़िले में उस ज़िले विशेष की प्राथमिक शिक्षा की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए ज़िला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान बनाए गए और शिक्षक शिक्षा महाविद्यालयों (सी.टी.ई.-कॉलेज ऑफ़ टीचर एजुकेशन) तथा उच्च अध्ययन शिक्षा संस्थानों (आई.ए.एस.ई.-इंस्टीट्यूट ऑफ़ एडवांस्ड स्टडीज़ इन एजुकेशन) को माध्यमिक और उच्च माध्यमिक स्तर की शैक्षिक ज़रूरतों के लिए बनाया गया। डाइट की मार्गदर्शिका (1989), डाइट के उद्देश्यों

को निम्न तरीके से परिभाषित करती है “ज़मीनी स्तर पर आरंभिक (और प्रौढ़) शिक्षा के लिए चलाए जाने वाले विभिन्न कार्यक्रमों और अपनाई जाने वाली विभिन्न रणनीतियों के लिए अकादमिक और संसाधनों की सहायता प्रदान करना।” स्थानीयता पर जोर रहा है तथा पाठ्यक्रम में ऐसी इकाइयाँ लाने की बात हुई जैसे - स्थानीय भूगोल, लोकगीत, दंतकथा, परंपराएँ, जंगल, फूल-पत्ते, मेले और त्योहार, जनसंख्या वितरण का विवरण, भूगर्भ विज्ञान, खनिज, खेती, उद्योग, नौकरी पेशा, उद्यम, लोककला, हस्तशिल्प, समुदायों और जनजातियाँ, स्थानीय परिस्थितियों से मेल खाती संस्थाएँ तथा ऐसी नयी चीजें विकसित की जाएँ जिन्हें आरंभिक शिक्षा और आरंभिक शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षण कार्यक्रमों में काम में लाया जा सके। वैसे ज़िलों के मामले में जहाँ जनजातियों की आबादी ज्यादा है, डाइट को कक्षा एक और दो के लिए जनजातियों की भाषा में विशेष (प्राइमर) प्रवेशिका भी बनानी थी।

इनको आंकलन और मूल्यांकन की एक व्यवस्था का विकास भी करना था। इन्हें ऐसे तकनीक और दिशा-निर्देश भी तैयार करने थे जिससे कि नियमित और संपूरक (summative) रूप से शिक्षार्थियों का मूल्यांकन किया जा सकता है। इसके अलावा इससे यह भी अपेक्षित था कि यह स्कूलों की इसमें मदद करेंगे ताकि वे परीक्षण, प्रश्नों के बैंक, रेटिंग स्केल, अवलोकन तालिका, निदानात्मक परीक्षण, प्रतिभा पहचान कार्यक्रम की प्रक्रिया इत्यादि को तैयार कर सकें। इन्हें कुछ चयनित निदर्शों (sample) के आधार पर परीक्षण आयोजित कर शिक्षार्थियों के स्तर को भी आँकना था। खासतौर से उस नवीनतम

स्तर के संदर्भ में जो प्राथमिक और उसके आगे के स्तरों के लिए निर्धारित हैं और राष्ट्रीय साक्षरता मिशन के तहत प्रौढ़ शिक्षार्थियों के लिए डाइट से यह भी उम्मीद थी कि वे ऊपर वर्णित कार्यों तथा सी.एम.डी.ई. से जुड़े अंतःसेवा कार्यक्रम के लिए कार्यशालाओं का आयोजन करें।

यद्यपि व्यवहार में ये संस्थान न तो अकादमिक सहयोग उपलब्ध करा सके, न ही स्थानीय सामग्रियों को ही बनाया। संसाधनों के अभाव में यह सी.आर.सी. और बी.आर.सी. से कोई जुड़ाव नहीं बिठा सके और न ही सामग्रियों के विकास में ज़िला स्तर पर कोई नवाचार कर सके। प्रशासकीय समर्थन के अभाव में, इन संस्थानों को कभी इसके लिए प्रोत्साहित नहीं किया गया कि वे समूचे ज़िले के लिए कार्य-योजना बनाएँ। ज़्यादातर ज़िला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थानों में स्टाफ़ की भरती प्रतिनियुक्ति के आधार पर होती है जिनको शैक्षिक योजना और स्कूलों के सहयोग के लिए विषय में काफ़ी थोड़ा अनुभव (रुझान) होता है। इन संस्थानों के पेशेवर चरित्र की इस गिरावट का असर उनके काम पर स्पष्ट दिखता है।

14. राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (स्टेट काउंसिल ऑफ़ एजुकेशनल रिसर्च एंड ट्रेनिंग — एस.सी.ई.आर.टी.)

एस.सी.ई.आर.टी. बुनियादी तौर पर राज्य सरकार का संस्थान है लेकिन शिक्षक-शिक्षा की पुनर्चना और पुनर्गठन की योजना के ज़रिए भारत सरकार एस.सी.ई.आर.टी. को मज़बूत करने के लिए सहयोग मुहैया कराती है। उसमें यह शर्त ज़रूर होती है कि राज्य सरकार भी वैसी ही राशि उपलब्ध कराएगी।

एस.सी.ई.आर.टी. की स्थापना इसलिए की गई कि वह राज्य में अकादमिक नेतृत्व करे और विभिन्न प्रकार के शोध, नवाचार, प्रेरणा, अभिप्रेरणा इत्यादि का केंद्र बने। ये संस्थाएँ गुणवत्ता का प्रतीक हों और समाज के बदलाव के लिए दार्शनिक और समाजशास्त्रीय बोध मुहैया कराएँ।

यद्यपि राज्य-दर-राज्य एस.सी.ई.आर.टी. के उत्तरदायित्व भिन्न-भिन्न हैं, लेकिन ज़्यादातर राज्यों में ये पाठ्यक्रम की रचना, पुस्तकों को तैयार करने, डाइट का पर्यवेक्षण करने और शिक्षक-प्रशिक्षण का ही काम करते हैं।

इनके काम-काज में ऐसा देखा गया है कि एस.सी.ई.आर.टी. अकादमिक लोगों से नहीं बल्कि नौकरशाही प्रकार के नेतृत्व से संचालित होती है। यह सब कुछ योजनाओं और निर्णयों में पूरी तरह से शामिल होता है। इन्हें नाममात्र की स्वतंत्रता है और साथ ही भौतिक सुविधाओं के विकास के लिए बहुत कम राशि ही उपलब्ध हो पाती है। यहाँ तक कि उनके पुस्तकालयों का रख-रखाव और प्रबंधन काफ़ी खराब है। इनका ज़िला इकाइयों और स्कूल स्तर की इकाइयों से काफ़ी कमजोर जुड़ाव है। इनके पास इतनी ऊर्जा नहीं होती कि ये विश्वविद्यालयों और अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर होने वाली विचारधारात्मक और सैद्धांतिक बहसों से तालमेल बिठा सकें। आमतौर पर यह गैर सरकारी संगठनों के नवाचारों से भी अपरिचित होते हैं।

यह तय था कि एस.सी.ई.आर.टी. पाठ्यक्रम विकास के लिए एक अग्रणी बिंदु होगी और यह शिक्षकों और स्कूल से गहरे तौर पर जुड़ कर कार्य करेगी। पाठ्यक्रम निर्माण कोई एक बार

निपटा दिया जाने वाला काम नहीं है बल्कि निरंतर सीखने और पुनर्विचार करने की चीज़ है जिसे कि सुनियोजित ढंग से आगे बढ़ाया जाता है। केवल वही संस्था जिसमें खुद एक उच्च स्तर की क्षमता हो इस काम को आगे बढ़ा सकती है। एस.सी.ई.आर.टी. को मज़बूत करना तथा उसे और ज़्यादा पेशेवर बनाना संस्थायी बदलाव के लिए एक आवश्यक काम है जिसे तेज़ी से किया जाना चाहिए।

दसवीं पंचवर्षीय योजना के कार्यकारी समूह के सुझाव के मुताबिक इसमें एक तरह की प्रशासनिक, वित्तीय और शैक्षिक स्वतंत्रता की ज़रूरत है। उदाहरण के लिए, एस.सी.ई.आर.टी. को सक्रिय रूप से वार्षिक योजना बनाने में शामिल होना चाहिए। किसी तरह का कोई अस्थायी निर्देश नहीं होना चाहिए, चाहे वह कितने ही बड़े अधिकारी का हो या फिर कितने ही बड़े ताकतवर राजनेता का।

एस.सी.ई.आर.टी. को इतना लचीला और स्वतंत्र होना चाहिए कि वे विश्वविद्यालयी व्यवस्था से विशेषज्ञों को बुला सके तथा स्कूली व्यवस्था में काम करने वाले चिंतनशील कामकाजियों के लिए एक मंच मुहैया करा सके। इसके पास एक ऐसी संस्थायी रूपरेखा होनी चाहिए कि वह स्वैच्छिक संस्थाओं को पहचान कर जोड़ सके। इसके साथ ही उन लोगों को भी पहचाने जो सरकारी व्यवस्था के बाहर हैं लेकिन बच्चों की शिक्षा के उद्देश्य को पूरा करने के लिए काम करते हैं, जो सरकारी स्कूलों में कुछ सफलता के साथ हस्तक्षेप रखते हैं तथा शिक्षकों के सशक्तीकरण में योगदान देते हैं। इसे अपेक्षित निर्देशों, आदेशों और सुझावों को जारी करना चाहिए ताकि सभी बच्चे स्कूल आ

सकें। इसे आंकलन की विभिन्न व्यवस्थाओं और परीक्षाओं की व्यवस्था के संदर्भ में ऐसी नीतिगत सिफारिशें करनी चाहिए कि यह विशेष ज़रूरत वाले बच्चों से तालमेल बिठा सके।

अलग-अलग भाषायी, जाति, वर्ग या संप्रदाय के घरों से आने वाले बच्चों की भिन्न पृष्ठभूमियों तथा अनुभवों को कक्षा में पर्याप्त स्थान देना चाहिए। इस समझ को कामकाज का हिस्सा बनाया जाए। इस विभिन्नता को पहचानने और सहयोग देने वाले अकादमिक और प्रशासनिक उपायों को जगह दी जानी चाहिए। एस.सी.ई.आर.टी.के पास स्कूलों, सी.आर.सी., बी.आर.सी. और डाइट से आने वाली माँगों का समुचित और त्वरित उपाय होना चाहिए। एस.सी.ई.आर.टी. के कामकाज को केवल ऐसे थोड़े से रुचिमंद, प्रेरित और सृजनशील लोगों के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता। ऐसी व्यवस्था स्थापित किए जाने की ज़रूरत है कि संस्था के भीतर और शिक्षकों में सृजनशीलता को बढ़ावा मिले। साथ-ही-साथ वित्तीय प्रावधान लंबे समय के लिए और विश्वसनीय होने चाहिए ताकि संस्था में स्थायित्व और निरंतरता का बोध हो सके।

इसे उन तमाम प्रक्रियाओं को प्रोत्साहन देना चाहिए जो सी.आर.सी., बी.आर.सी. और डाइट द्वारा पाठ्यपुस्तक और अन्य शैक्षिक सामग्रियों को तैयार करने के लिए आवश्यक है। इस क्रम में पाठ्यपुस्तक विकास के लिए इसे खुद अनुसंधान करवाने चाहिए और ज़मीनी स्तर पर चलने वाले ऐसे अनुसंधानों को प्रोत्साहित करना चाहिए ताकि एक विश्वस्तरीय मानक तैयार हो। इसे उन संस्थायी प्रक्रियाओं का समर्थन भी करना चाहिए जिससे शिक्षक, पाठ्यचर्या और पाठ्यपुस्तक के विकास

की प्रक्रिया से जुड़ सकें। यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि ज़मीनी स्तर पर शिक्षक-प्रशिक्षण और अन्य अकादमिक काम के लिए सभी सुविधाएँ उपलब्ध हों।

इसकी तत्काल ज़रूरत है कि नियुक्ति की प्रक्रियाओं का पुनर्क्षण किया जाए ताकि खाली जगहों को उपयुक्त उम्मीदवारों से भरा जा सके। हमें रुचि रखने वाले ऊर्जावान पेशेवरों की ज़रूरत है न कि गैर रुचिमंद लोगों की जो देश के बच्चों के लिए काम करने में न तो दक्ष हैं न ही उसमें उनका रुझान है। एस.सी.ई.आर.टी. में अंदर ही सुधार की ज़रूरत है। जब तक कि यह नहीं हो जाता तब तक विभिन्न स्तर पर शिक्षकों की क्षमता और स्कूल की गुणवत्ता में बढ़ोतरी के लिए तेज़ तर्रार और संवेदनशील पेशेवरों की भागीदारी काफ़ी मुश्किल है। प्राथमिक स्कूल को मजबूती देने वाले सक्रिय प्राथमिक शिक्षकों को डाइट और एस.सी.ई.आर.टी. में विशेषज्ञ (संसाधन व्यक्ति) के तौर पर दर्जा मिलना चाहिए।⁸

15. राष्ट्रीय स्तर की संस्थाएँ और नीतियाँ

एन.सी.ई.आर.टी., नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ़ एजुकेशनल प्लानिंग एंड एडमिनिस्ट्रेशन (न्यूपा), नेशनल काउंसिल ऑफ़ टीचर एजुकेशन (एन.सी.टी.ई.) जैसी राष्ट्र स्तरीय संस्थाएँ इस उद्देश्य के लिए स्थापित की गई हैं कि ये राष्ट्र में स्कूली शिक्षा की स्थिति सुधारने के लिए मदद करेंगी। इन्हें इस रूप में देखा जाना चाहिए कि ये राज्य स्तरीय संस्थाओं की पार्टनर और सुविधाप्रदायक

हों न कि खुद कार्यान्वयन करने वाली। राज्य स्तर की वर्तमान क्षमता और उनके द्वारा किए जाने वाले काम की प्रकृति को देखते हुए ज़रूरत इस बात की है कि ये संस्थाएँ समर्थन करने वाले एजेंट और सहयोगी संस्थाओं की तरह काम करें।

इन संस्थाओं को शैक्षिक विचार के अग्रणी मोर्चे पर होना चाहिए जो ज़मीनी हालात की अच्छी पकड़ रखते हुए गुणवत्ता वाले शोध कराएँ। उन्हें उन तमाम विचारों का विश्लेषण करना चाहिए जिनका निरंतर सृजन हो रहा होता है और ऐसे तरीके सुझाए जाने चाहिए जिससे उपयुक्त उच्च गुणवत्तायुक्त शिक्षा को समर्थन मिले। एक निर्धारक (Pace Setting) संस्थान के रूप में उनके पास इसकी क्षमता और दक्षता होनी चाहिए कि वे स्वयं की समालोचना कर सकें।

चूँकि उन्हें तालुक और ग्राम स्तर की संस्थाओं के कामकाज के लिए उत्तरदायी होना चाहिए इसलिए राष्ट्रीय संस्थानों को इन जगहों की स्थितियों के बारे में पता होना चाहिए। यह जुड़ाव शिक्षा के विभिन्न परिप्रेक्ष्यों से वास्तविक संपर्क और जुड़ाव के कारण चाहिए न कि आँकड़ों और लिखित रिपोर्टों की शर्तों पर। इसलिए इन संस्थानों को ऐसे कार्यक्रम की आवश्यकता है जो उन्हें सीधे-सीधे इसमें शामिल करें और ऐसी विधियों और विचारों को तलाशें जिसका व्यापक आधार हो और बड़ी संख्या में स्कूलों और शिक्षक-प्रशिक्षक संस्थाओं तक फैलाव हो सके। प्रसार और वितरण की प्रक्रिया समर्थन करने वाली हो ताकि यह कई तरह के सुझाव और सहयोग दे सके न कि सिर्फ़ निदानात्मक मात्रा रहे।

⁸दसवीं पंचवर्षीय योजना के कार्य समूह ने कुछ ऐसी सस्तुतियाँ दी थीं।

राज्य स्तर पर विकेंद्रीकरण और अकादमिक क्षमता के निर्माण के क्रम में एक संभावना बनी है और स्थानीय स्तर पर योजना और काम करना संभव हुआ है। इसलिए जरूरी है कि व्यवस्था में प्रत्येक स्तर पर क्षमता बढ़ाई जाए। अगर सभी काम को केंद्रीय संस्थानों द्वारा किया जाना है और पाठ्यपुस्तक, शोध-पत्र, पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रम के दिशा-निर्देश इत्यादि को केवल राष्ट्रीय स्तर के निकायों द्वारा तैयार किया जाना है तो विकेंद्रीकरण की कोई आवश्यकता नहीं है और न ही यह प्रभावी होगा। होना तो यह चाहिए कि राष्ट्रीय संस्थान राज्य को इन तमाम चीजों में उसकी क्षमता के विकास में योगदान दें और एक मंच की तरह काम करें जहाँ विभिन्न विचारों का विलयन हो। एन.सी.ई.आर.टी. की भूमिका ऐसी होनी चाहिए कि वह राज्यों को उनकी पाठ्यपुस्तकों के बनाने में मदद करे। इस संस्थान की यह जरूरत है कि यह केंद्रीकरण को घटाए और सबको दिशा-निर्देश देने से बचे। जरूरत यह है कि यह बेहतर अवधारणाओं और प्रक्रियाओं का विकास करे जिसके जरिए राज्य स्तर के लोग इतने सक्षम हो सकें कि वे अपने उत्तरों को स्वयं तलाश सकें। वर्तमान व्यवस्था प्रोत्साहित करने के बजाय लोगों को हतोत्साहित करती है कि वे अपनी समस्याओं का हल स्वयं ढूँढ़ें तथा उनसे उम्मीद यह होती है कि वे उस उत्तर का पालन करें जिसे राष्ट्रीय संस्थाएँ सुझाती हैं। शोध के लिए राज्य की संस्थाएँ केवल आँकड़ों को इकट्ठा करने के काम में आती हैं या फिर उस अध्ययन के प्रबंधन में जिसके उद्देश्यों का पता केवल राष्ट्र स्तर की संस्थाओं को होता है।

एन.सी.ई.आर.टी. के लिए यह जरूरी है कि वह अपने विभिन्न संकायों की नये सिरे से तैयारी

करवाए तथा ज्ञान को एक तैयार माल की तरह न देखा जाए जिसे पदोक्रम में ऊपर से नीचे की ओर जाना है। स्कूली और शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं से गहरे जुड़ाव के अलावा इन राष्ट्रीय संस्थाओं के लिए यह जरूरी है कि वे ऐसे मंचों का विकास करें जो शिक्षा के मसले को और विस्तार देने का काम करें। इन मंचों में विश्वविद्यालय के लोगों, शिक्षा के लिए काम करने वाली शैक्षिक संस्थाओं, अन्य रुचिमंद लोगों तथा स्कूल के शिक्षकों को शामिल किया जा सकता है। इन मंचों से यह उम्मीद की जानी चाहिए कि वे मसलों पर बातचीत केवल अपने बीच में न करें बल्कि वे राज्य की मदद के लिए भी उपलब्ध हों, खासतौर से पाठ्यपुस्तक सुधार की कोशिशों और अन्य प्रक्रियाओं में।

जरूरत इसकी भी है कि राष्ट्र स्तर की ये संस्थाएँ नियुक्तियों, पदोन्नति और भूमिका के चयन के स्वयं के तरीकों की समीक्षा करें। यह समीक्षा संगठन में काम करने वाले व्यक्तियों के तथा संगठन के स्वयं के परिप्रेक्ष्य में की जानी चाहिए। प्रवेश के लिए पार्श्व (lateral) रास्तों को खोला जाना चाहिए और उन लोगों को भी मौका मिलना चाहिए जिन्होंने ज़मीनी स्तर पर काम किया है, ताकि वे राष्ट्रीय संस्थानों को एक नियत समय दे सकें। यह सब राष्ट्रीय संस्थानों को, जो कि ज़मीनी वास्तविकताओं से कटे हुए हैं, अनिवार्य अपेक्षित ऊर्जा देगा।

इसे क्रमिक कार्यशालाओं और संगोष्ठियों के माध्यम से, व्यवस्थागत सुधार और प्रक्रियाओं संबंधी अच्छे प्रचलनों को सामने लाना चाहिए। इसे शिक्षा के सचिवों, स्कूली शिक्षा के प्रमुखों को सूचित करना चाहिए।

एस.सी.ई.आर.टी. और सर्व शिक्षा अभियान को दूसरे अन्य जगहों पर किए जा रहे नवाचारों के बारे में अनिवार्य रूप से जानकारी देनी चाहिए और एक 'शिक्षायी-खबरी' (Education Watch) वाली संस्था की तरह काम करना चाहिए।

एन.सी.ई.आर.टी. को पाठ्यचर्या के विभिन्न पहलुओं पर अध्ययन आयोजित कराने चाहिए तथा इन अध्ययनों को स्कूल स्तर पर प्रचारित और प्रसारित (disseminate) करना चाहिए। इसे सामाजिक-आर्थिक कारक और नीतियों को लागू करने के संदर्भ में गुणवत्ता के सूचकांक को विकसित करने का काम भी अनिवार्य रूप से करना चाहिए।

केंद्र स्तर पर शिक्षा मंत्रालय को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि आर्थिक मदद पहले से अंदाज़ लगाए जा सकने वाले तरीके से और बिना किसी व्यवधान के मिले जिसमें एक दीर्घकालिक वादा भी शामिल हो। इस स्थानीय पहल का सम्मान करना चाहिए तथा धन किस तरह से खर्च हो इसके संदर्भ में विस्तृत निर्देश और मार्गदर्शन को रोका जाना चाहिए। यह शिक्षकों के सशक्तीकरण और सृजनात्मकता के विरुद्ध जाता है।

16. समानांतर संरचनाएँ एवं व्यवस्थाएँ

नब्बे और अस्सी के दशक ने सार्वभौमिकरण की चुनौती को संबोधित करने के लिए केंद्र द्वारा

समर्थित योजनाओं एवं परियोजनाओं⁹ (जिनमें से कइयों को वित्त देश से बाहर के दाताओं ने दिया) की एक शृंखला का उदय देखा। यह स्वायत्त निकाय थे जो सोसाइटी रजिस्ट्रेशन एक्ट के तहत पंजीकृत थे तथा सरकार के विभिन्न कामकाजी ढाँचे द्वारा चलाए जा रहे थे। ऐसी उम्मीद थी कि यह ढाँचा/संरचना में लचीलापन, उदारता और निष्पक्षता उपलब्ध कराएगा तथा यह सुनिश्चित करेगा कि किसी परियोजना विशेष के लिए आया पैसा 'सुरक्षित' रहे और राज्य के सामान्य राजकोषीय खाते द्वारा न सोख लिया जाए। इसे दूरदराज़ के इलाकों में बच्चों तक अर्द्धपेशेवर शिक्षकों द्वारा पहुँच बनाने तथा लड़कियों को अभिप्रेरित करने के लिए एक आवश्यक यांत्रिक व्यवस्था के रूप में देखा गया। आम समुदाय की गतिकी के साथ तालमेल बिठाने के लिए प्रशिक्षण एवं संसाधनों के अतिरिक्त ढाँचों को स्थापित किया गया क्योंकि ऐसा समझा गया था कि उपस्थित विद्यमान विभागीय ढाँचे नियमित रूप से गहन प्रशिक्षण को आयोजित करने में अक्षम थे। इस संदर्भ में विभिन्न राज्य स्तरीय संरचनाओं के अनुभव एक परेशान कर देने वाली मिलीजुली तसवीर पेश करते हैं। मुख्यधारा के शिक्षा विभागों के साथ इन संरचनाओं अथवा ढाँचों का जुड़ाव कमतर होता गया। पाठ्यपुस्तकों को तैयार करने, शिक्षक-प्रशिक्षण तथा सूक्ष्म स्तरीय

⁹1987 और उसके बाद औपचारिक प्रशासनिक संरचना के बाहर 'सबके लिए शिक्षा' (एजुकेशन फॉर ऑल - ई.एफ.ए.) की परियोजना को लागू करने के लिए कुछ अर्द्धसरकारी किस्म के निकाय बनाए गए, ये निम्न हैं—
राजस्थान शिक्षाकर्म परियोजना, 1987 (पहले सीडा ने वित्त मुहैया कराया फिर डी.एफ.आई.डी. ने), बिहार शिक्षा परियोजना, 1991 (यूनिसेफ द्वारा समर्थित), राजस्थान लोक-जुबिस परियोजना, 1992 (पहले सीडा फिर डी.एफ.आई.डी. द्वारा समर्थित), उत्तर प्रदेश बुनियादी शिक्षा परियोजना, 1992 (विश्व बैंक द्वारा समर्थित), जिला प्राथमिक शिक्षा परियोजना (डी.पी.ई.पी.), 1993 (कई दाताओं द्वारा समर्थित जिसमें विश्व बैंक, यूरोपियन कमीशन, डी.एफ.आई.डी., नोदरलैंड सरकार और यूनिसेफ शामिल हैं)।

योजना हेतु परियोजना स्तर की कोशिशों से एस. सी.ई.आर.टी. को दरकिनार कर दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि स्वायत्त संस्थाओं द्वारा अनुभवी पेशेवरों तथा प्रशासकों को ले लिए जाने के कारण औपचारिक तंत्र अंततः कमजोर पड़ गया।

शैक्षिक योजना तथा नीति निर्माण की प्रक्रिया का एक लंबा इतिहास है जो लंबे समय में एक जैविक प्रक्रिया के रूप में विकसित हुआ है। इस प्रकार आयोगों तथा संस्थाओं के अनुमोदनों एवं सुझावों में उन नीतियों को समझा गया, जिन्होंने शैक्षिक योजनाओं की स्थिति की आलोचना की तथा समय-समय पर निदानात्मक कदम प्रस्तुत किए। शैक्षिक योजना का यह इतिहास जिसमें निरंतरता थी तथा जो सार्वजनिक/जन बहस तथा संस्थायी निर्माण की जैविक प्रक्रिया के तौर पर विकसित हुआ था, उसे केवल धन से चलने वाली समानांतर संस्थाओं को स्थापित करके नज़रअंदाज़ कर भंग कर दिया गया। विसंगति यह है कि इन समानांतर संरचनाओं ने न केवल औपचारिक और मुख्यधारा की संरचनाओं के मनोबल एवं दक्षता पर नकारात्मक प्रभाव डाला बल्कि परियोजनाओं को समेट देने के बाद इन 'नवाचारों' से सीखना भी विलुप्त हो गया।

16.1 अल्पकालिक परियोजनाएँ बनाम दीर्घकालिक दृष्टिकोण

शिक्षा के लिए योजना बनाने हेतु कई पीढ़ियों के दीर्घकालिक दृष्टिकोण का समन्वय आवश्यक है। गत दशक में, निश्चित अवधि की परियोजनाओं ने

दीर्घकालिक नीतिगत परिदृश्य और अल्पकालिक परियोजनात्मक रणनीतियों के मोड़ पर इसे प्रतिस्थापित किया। राज्य सरकारों के ढाँचागत विकास को दरकिनार कर विदेशों से समर्थित परियोजनाओं ने इन सरकारों पर मशीनीकृत ढंग से अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए दबाव बनाया। जो कुछ भी हुआ वह था सिर्फ़ अस्थायी खर्च जो कि ऊर्जावान अधिकारियों, जो एक समानांतर व्यवस्था के प्रमुख थे या शिक्षा सचिव के द्वारा। इसका नतीजा यह रहा कि संस्थाओं को गैरसंस्थायी निर्णय प्रक्रियाओं को अपनाने के लिए मज़बूर होना पड़ा। कई राज्यों ने धन-संसाधन को स्कूलों, डाइट और एस.सी. ई.आर.टी. में अध्यापकों को अनुबन्धित करने पर व्यय किया और अनुपयोगी उद्देश्यपूर्ति के लिए इस मूल्यवान संसाधन का अपव्यय किया।

इसने सी.आर.सी./बी.आर.सी./डाइट और एस.सी.ई.आर.टी. जैसी संस्थाओं की नीरवता को बढ़ावा दिया और इन्हें मात्र सरकार का आदेश अनुपालन करने वाले दफ़्तरशाही ढाँचों में तब्दील कर दिया। स्व-अभिप्रेरण, खोज, विश्लेषण और नवाचार के अभाव में ये संस्थाएँ किन्हीं अन्य नियोजित कार्यक्रमों का क्रियान्वयन मात्रा करने लगीं। इस परिस्थिति में ये संस्थाएँ स्वयं को अध्यापकों और स्कूलों के अनुरूप नहीं ढाल पाईं। वस्तुतः ये संस्थाएँ अध्यापकों और स्कूलों को लेकर अपने 'अंतर्गत' एक पदानुक्रम और गैर-लोकतांत्रिक माहौल पनपाती रहीं।

इस परिस्थिति में यह पूछे जाने की आवश्यकता है — कि कौन किसके प्रति जवाबदेह है। इस समय सबसे बड़ी चुनौती एक ऐसी 'जवाबदेह' व्यवस्था का निर्माण करना है जो **अंततः बच्चों और उनके परिवार के प्रति जवाबदेह हो**; उसे प्रत्येक बच्चे के गुणवत्ता शिक्षा के अधिकार को साकार करने के लिए जवाबदेह माना जाए।

17. संसाधन और वित्तीय अवरोध

शिक्षा के लिए संसाधनों को लेकर गहरे पड़ताल की जरूरत है। किस हद तक पैसा दिया जाए और शिक्षा के सहयोग के कितने अंश को मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा बनाई गई समिति की विस्तृत रिपोर्ट / आंकलन का हिस्सा होना चाहिए। वित्तीय राशि के दिए जाने के तरीकों और खर्च करने के तरीकों का निरीक्षण और उपयोग का लेखा-जोखा इत्यादि पर गहरे तौर से विचार करने की जरूरत है। वर्तमान प्रक्रियाओं में नियम और मानकों पर ज्यादा बल है बजाय काम की गुणवत्ता और प्रकृति के। व्यवस्था जिस तरह विभिन्न प्रकार की स्थितियों में काम कर रही है वहाँ ज्यादा लचीले और संवेदनशील मानकों की सख्त जरूरत है।

इस फोकस समूह ने यह महसूस किया कि राज्य सरकार और केंद्र सरकार के बीच खर्च की जाने वाली राशि के बँटवारे की जाँच की जानी चाहिए। चूँकि केंद्र द्वारा दिया जाने वाला वित्तीय सहयोग पहले से तय केंद्र समर्थित योजनाओं (सेंट्रली स्पॉन्सर्ड स्कीम-सी.एस.एस) के साथ बँधा होता है इसलिए राज्य सरकार को सार्वभौमिक शिक्षा के लिए अपेक्षित वित्त को लेकर समझौते करने पड़ते हैं खासतौर से तब जबकि ज्यादातर

राज्य सरकारें गहरी आर्थिक तंगी से गुजर रही हों। इसकी वजह से राज्य सरकार उन गतिविधियों को जारी नहीं रख पाती जो समयबद्ध परियोजनाओं से जुड़े होते हैं।

इस समूह ने वित्तीय प्रक्रियाओं में रूढ़िबद्धता के मसले पर काफ़ी सोचा-विचार, खास तौर से एक इकाई के लिए होने वाले खर्च पर और अर्थपूर्ण गतिविधियों को शुरू करने की क्षमता पर पड़ने वाले प्रभाव पर। भारत सरकार की योजनाओं जिसमें सर्व शिक्षा अभियान भी शामिल है, से इकाई खर्च की जानकारी मिलती है। उदाहरण के लिए, 70 रुपये प्रति दिन प्रत्येक शिक्षक के प्रशिक्षण के लिए, ब्रिज कोर्सों की संख्या और ब्रिज कोर्स में बच्चों की संख्या, आवासीय ब्रिज कोर्स के लिए इकाई खर्च और गैर आवासीय ब्रिज कोर्स के लिए इकाई खर्च, मॉडल क्लस्टर स्कूल को एन.पी.ई.जी.ई.एल कार्यक्रमों में (एस.एस.ए. का एक कार्यक्रम) अनिवार्य रूप से शामिल कर लेना, यह सब कुछ सारे देश में समरूप-सा है और प्रति इकाई तय खर्च के मुताबिक ही यह राशि खर्च के लिए दी जाती है। इकाई आधारित खर्च की सीमाओं को समझा जाना चाहिए ताकि संस्थाएँ अपनी गतिविधियों को प्रभावशाली ढंग से चला सकें। यह दूरदराज के और जनजातीय इलाकों में विभिन्न समुदायों और सामाजिक समूहों के लिए कुछ स्थितियों में खास महत्त्व रखता है।

अपने जैसे विशाल और भिन्नता वाले देश में इकाई खर्च समरूप नहीं हो सकता। किसी शिक्षक को प्रशिक्षित करने के खर्च घट-बढ़ सकते हैं, जो इस पर निर्भर करता है कि प्रशिक्षण का काम कहाँ हो रहा है तथा इसमें क्षेत्र विशेष में आवा-जाही

के खर्चों का अंतर भी शामिल है। साथ ही ब्रिज कोर्स को चलाने या लड़कियों की शिक्षा की बढ़ोतरी के लिए गहन गतिविधियों को आयोजित करने का खर्चा देश के अलग-अलग कोनों में एक-सा नहीं हो सकता। इकाई खर्च द्वारा योजना संचालन का प्रभाव काफी गहरा है। सर्व शिक्षा अभियान की योजनाओं को इस तरह तोड़ा-मोड़ा गया कि वह समरूप इकाई खर्च में फिट हो सकें। इस अटपटी स्थिति को एक व्यावहारिक ज्ञान से सुलझाए जाने की जरूरत है। कार्यक्रम की रचना में क्षेत्र विशेष और विशिष्ट समुदाय के शिक्षकों की जरूरत को अनिवार्य रूप से आधार बनाया जाना चाहिए।

इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण यह है कि 'इकाई खर्च' चलाई जाने वाली विभिन्न प्रकार की गतिविधियों को सीमाबद्ध करता है। कार्यक्रम के उद्देश्य जैसे गुणवत्ता का विकास, सारे बच्चों को स्कूल में लाना इत्यादि में कई सारी गतिविधियाँ जुड़ी होती हैं। यह काफी मुश्किल है कि हम उन तमाम गतिविधियों का आंकलन पहले से ही कर लें और उनके खर्च का हिसाब पहले ही लगा लें। चूँकि इकाई खर्चा कुछ गतिविधियों को तो परिभाषित करता है अन्य को नहीं इसलिए यह सब कुछ अन्य तमाम गतिविधियों को ही छोड़ने की तरफ बढ़ाता है। यह कार्यक्रम में नवाचारी और नयी उभरती जरूरतों पर पहल करने की क्षमता को घटाता है। इकाई-खर्चा, योजना को यांत्रिक ढंग से

लागू कराने की ही एक पहल लगती है जिसमें बड़ी संख्या में बाधाएँ आती हैं और जिसे ज्यादा कल्पनाशील तरीके से सुलझाया जा सकता है।

कई बार यह तर्क दिया जाता है कि ये इकाई खर्च केवल 'सांकेतिक' (indicative) होते हैं, लेकिन होता यह है कि ये जिला योजनाओं और वित्तीय आंकलन के लिए मानदंड का काम करते हैं।¹⁰ इसलिए सरकारी अधिकारी उन गतिविधियों को स्वीकृति के समय वरीयता देते हैं जिसके लिए इकाई खर्च का आंकलन पहले से मौजूद होता है। उन महत्वपूर्ण गतिविधियों की स्वीकृति को टाल देना ही बेहतर समझते हैं जिनके लिए इकाई-खर्चा नहीं दिया होता है या ये खर्च अनुपयुक्त होते हैं क्योंकि ऐसी स्थिति में लेखा-विभाग की आपत्तियाँ आ सकती हैं। यह भी तर्क दिया जाता है कि इकाई-खर्च की जरूरत इसलिए है कि शिक्षा के सार्वभौमिकरण के लिए जरूरी वित्तीय प्रावधान का आंकलन हो सके। बेशक शिक्षा के सार्वभौमिकरण हेतु जरूरी राशि का आंकलन विभिन्न गतिविधियों के इकाई-खर्च के मोटे अनुमान से लगाया जाता है। हालाँकि इसका मतलब यह नहीं होना चाहिए कि इस आंकलन के साथ लागू करने संबंधी एक सटीक दिशा-निर्देश भी हो। उदाहरण के लिए, जब शिक्षा के सार्वभौमिकरण के लिए शिक्षक के वेतन की गणना की जाती है तो उसका आंकलन 8000 रूपया प्रति माह प्रति शिक्षक किया जाता है। हालाँकि शिक्षक का

¹⁰ जिला और राज्य के सर्व शिक्षा अभियान का योजनाओं का, एड-सील एनसीईआरटी और न्यूपा के संकाय सदस्यों द्वारा पूरी तरह से इकाई खर्च के आधार का आंकलन किया जाता है। इसे एक मजबूरी की तरह समझे जाने की जरूरत है और इसकी कोशिश की जानी चाहिए। इकाई खर्च पर आधारित स्वीकृत के बजाय उन प्रक्रियाओं को अपनाया जाए जिससे राज्य सरकारों पर विश्वास किया जाय तथा उन्हें अपनी योजना खुद बनाने हेतु-सशक्त किया जाए.

वास्तविक वेतन काफ़ी अलग-अलग होता है जो कि राज्य सरकार के वेतनमान, वरीयता और अन्य भत्तों पर निर्भर करता है। इसलिए गणना के लिए विकसित किए गए नियमों को इकाई खर्च के आधार पर लागू नहीं किया जा सकता। यही तर्क अन्य गतिविधियों, जैसे शिक्षक-प्रशिक्षक, समुदाय को संवेदनशील बनाने इत्यादि पर भी लागू होता है।

इकाई-खर्च को वरीयता देने का एक कारण यह भी है कि इससे वित्तीय अनुशासन और उत्तरदायित्व बना रहता है। यद्यपि जब देश भर के लिए इकाई-खर्च को तय किया जाता है तो इसका प्रभाव ठीक उलटा होता है, अधिकांश स्वीकृत राशि का इस्तेमाल तब होता है जब इसकी ज़रूरत नहीं होती। गतिविधियों की इस तरह रचना करना कि वे इकाई-खर्च में समा सकें दरअसल वित्तीय संसाधनों की बर्बादी है।

चूँकि केंद्र समर्थित अलग-अलग योजनाएँ लगातार बन रही हैं, इसके साथ ही यह ज़रूरी है कि अलग-अलग तरह की गतिविधियों को अपनाया जाए। इस कारण यह भी ज़रूरी है कि इकाई-खर्च को तय करते समय इसकी धारणा पर पूर्ण विचार करें। ऐसा करने के लिए ज़रूरी है कि वित्तीय उत्तरदायित्व के लिए ज़्यादा लचीले उपायों को सुनिश्चित किया जाए और अगर इकाई-खर्च का इस्तेमाल करना है तो ज़रूरी यह है कि इसे ऐसा बनाया जाए कि यह राज्य स्तर के बजाय और ज़्यादा छोटी इकाइयों के लिए हो। डी.पी.ई.पी. में जिलों को इस बात की अनुमति थी कि वे अपनी गतिविधि विशेष के लिए इकाई खर्च को तय करने का उपाय करेंगे। यह कार्यक्रम आयोजकों और नियोजनकर्ताओं को इसका अवसर देता था

कि वे किसी खास समस्या से जूझने के लिए अलग-अलग कई प्रकार की रणनीतियों का खयाल रखें बजाय इसके कि समूचे भारत के लिए एक ही इकाई-खर्च रखा जाए।

कार्यक्रम को बेहतर तरीके से लागू करने के लिए यह सिफ़ारिश करना ज़रूरी है कि **किसी भी विशिष्ट गतिविधि के लिए इकाई-खर्च को स्थानीय स्तर पर तैयार किया जाए** बजाय राष्ट्रीय स्तर के। इस तरह के इकाई खर्च की छँटनी के लिए ऐसा तंत्र स्थापित किया जा सकता है जो वित्तीय उत्तरदायित्व को सुनिश्चित करे।

18. शिक्षा सेवाओं का व्यवसायीकरण (पेशेवर प्रवृत्ति का विकास)

आज शिक्षा के क्षेत्र में पेशेवर रुख की सिरे से कमी है, खासकर स्कूल के अध्यापक से लेकर उन संस्थाओं तक में, जो कि शैक्षिक आधार प्रदान करने के उद्देश्य से बनी थीं। यह भी आवश्यक नहीं है कि स्टाफ़ का चयन उनकी शैक्षिक रुचि या प्रवीणता के आधार पर ही किया जाता हो। इसीलिए यह आवश्यक है कि स्टाफ़ और अन्य कर्मचारियों के लिए चयन नीति और क्षमताओं को बढ़ाने पर ध्यान दिया जाए। साथ ही प्रक्रिया के सभी स्तरों पर आवा-जाही पार्श्विक संबद्धता (lateral linkage) हो और राष्ट्रीय, राज्य, ज़िला, ब्लाक, क्लस्टरों में पार्श्विक और ऊर्ध्व दोनों ही दिशाओं में विचारों और अनुभवों का क्रमबद्ध आदान-प्रदान हो। इसके लिए आवश्यक है कि स्थानीय अधिकारियों को अपने उच्च अधिकारियों की तुलना में यथायोग्य लचीलापन और स्वायत्तता मिले जिससे कि सभी भागीदारों में

समीक्षा और पुनर्बलन की प्रक्रिया के सृजन से जनित बौद्धिक क्षमताओं का संवर्द्धन हो सके।

इस तरह का बहुस्तरीय हस्तक्षेप स्कूलों के लिए सामुदायिक सहयोग, सभी स्तरों के पंचायती राज्य संस्थाओं का मुखर सहयोग और ज़िला और उपज़िला स्तरों पर तकनीकी और शैक्षिक समर्थन पर निर्भर है। यह संचालन में सुधार और दावेदारों से परामर्श करने की नयी प्रक्रियाओं को जोड़े जाने की अपेक्षा रखता है। इसका परिणाम विद्यालयी शिक्षा का सार्वभौमिकरण होना चाहिए जो कि तकनीकी और शैक्षिक विशेषज्ञता पर निर्भर हो।

19. इस फ़ोकस समूह का परिप्रेक्ष्य — संक्षेप

हम नयी संस्थाओं की स्थापना और पुरानी संस्थाओं को गिराने की बात नहीं रख रहे हैं। यह बात ज़रूर है कि गंभीरता और उत्साह से प्रयास किए जाएँ ताकि—

- (1) **बहिष्करण की संरचनाओं के विरुद्ध सक्रियता से काम किया जाए जिससे कि स्कूलों में बच्चों की पूरी भागीदारी हो सके।** स्कूल ये सुनिश्चित करें कि प्रत्येक बच्चे की स्कूली जीवन तक पहुँच हो। उन्हें उनको प्रोत्साहित करना चाहिए और सुविधाएँ देनी चाहिए जो स्कूल छोड़ गए हैं या फिर बाहर धकेल दिए गए हैं ताकि वे वापस आ सकें। वे यह सुनिश्चित करें कि बच्चे कम-से-कम कक्षा दस तक नियमित शिक्षा पा सकें।
- (2) **स्कूल निश्चित तौर पर बाल केंद्रित हों** और बच्चे की बेहतरी के लिए काम करें

ताकि बच्चे अपनी पूरी क्षमता को साकार कर सकें। स्कूल निश्चित तौर पर मुकम्मल हों — उनके स्वास्थ्य को लेकर, पोषकता के स्तर को लेकर, और उनके अच्छे बनने को लेकर। स्कूल के सरोकारों में यह भी शामिल है कि यह समझा जाए कि स्कूल आने से पहले बच्चों के साथ क्या हुआ है और स्कूल छोड़कर जाने के बाद क्या होगा। स्कूल विविधता की अनिवार्य रूप से कद्र करें और सभी बच्चों (लड़कियों, कामकाजी बच्चों, विशेष आवश्यकता वाले बच्चों, शोषण और हिंसा के शिकार) के लिए अवसरों में समानता सुनिश्चित करें।

नीति संबंधी दस्तावेज़ और शिक्षा के विमर्शों में स्कूल का क्या अर्थ है यह समझाने के लिए लचीले मानक तैयार किए जाने की ज़रूरत है। ये मानक शैक्षिक सिद्धांतों और बच्चों के लिए समानता तथा न्याय के सिद्धांतों पर आधारित होने चाहिए। वे इस दृष्टि के साथ बनाए जाने चाहिए जिसमें स्कूल के लिए ऐसी प्रक्रियाएँ निर्धारित हों जो सभी बच्चों के सीखने में सहायक हों।

भौतिक परिस्थितियाँ

मूलरूप से शिक्षा चेतन तथा अचेतन जुड़ाव और संवाद के माध्यम से सीखने के अवसर प्रदान करने की प्रक्रिया है। स्कूलों को इस तरह के अवसर सुनिश्चित कराने में सशक्त होना चाहिए तथा बच्चे को अवसर देने चाहिए कि वह स्वयं खोज सके। इसी प्रकार शिक्षक

ऐसे होने चाहिए जिनके पास समय हो तथा जुड़ाव के लिए धैर्य। यह स्कूल का दायित्व होना चाहिए कि सीखने की प्रक्रिया में सभी बच्चों को शामिल करने के लिए उपयुक्त सामाजिक भावनात्मक स्थितियाँ सुनिश्चित करें। इसके लिए व्यवस्था की ओर से जरूरी सुविधाएँ, योग्य एवं संवेदनशील शिक्षक तथा सीखने के लिए उपयुक्त वातावरण दिया जाए। चूँकि छोटे बच्चों को ज्यादा गहरे जुड़ाव और बातचीत की जरूरत है अतः शिक्षक-विद्यार्थी अनुपात शुरुआती कक्षाओं के लिए श्रेष्ठ होना चाहिए। उदाहरण के लिए यह एक सही समुच्चय हो सकता है; पूर्व-प्राथमिक से कक्षा 2 के लिए 1:20, कक्षा 3 और 4 के लिए 1:30 तथा माध्यमिक विद्यालय के लिए 1:40 ।

आरंभिक विद्यालय में बच्चों को हाथ से करके सीखने के बहुत सारे अनुभव देने आवश्यक हैं जिन पर वे चिंतन कर सकें। इसलिए उचित मात्रा में उपयुक्त अधिगम सामग्री तथा इसे संग्रहित करने के लिए पर्याप्त स्थान की आवश्यकता है।

बच्चों को अपने साथियों के साथ काम करने की जरूरत है — समूह कार्य के लिए पर्याप्त स्थान उपलब्ध कराना आवश्यक है। अच्छी तरह से ढका हुआ एवं अच्छी प्रकाश व्यवस्था के साथ प्रत्येक बच्चे के लिए 9 वर्ग फीट का स्थान जरूरी है। फर्नीचर ऐसा होना चाहिए जिसमें बच्चे स्वयं आपस में और शिक्षिका से भी बातचीत कर सकें।

प्रत्येक विद्यालय में बच्चों के लिए उपयुक्त खेल का मैदान होना चाहिए।

(3) **हमारी विद्यालयी व्यवस्था, विद्यालयी शिक्षकों पर भरोसा करे** अगर हम व्यवस्था

की गुणवत्ता में सुधार को प्रभावित करना चाहते हैं तो सारी सहयोगी व्यवस्थाओं — क्लस्टर से राज्य स्तर तक, को अपने सहयोग को शिक्षकों के प्रति विश्वास और सम्मान पर आधारित करना होगा जिसमें उसे एक उपयुक्त स्वायत्त जगह देनी होगी। शिक्षकों को इस बात के लिए प्रोत्साहित और सहयोग दिए जाने की भी जरूरत है कि वे खुद अपने लिए सहयोगी समूह बना सकें।

राज्य को व्यवस्था के भीतर ठेके पर काम निपटाने से बचना चाहिए। प्राथमिक स्कूल के शिक्षकों के पास अवसरों का एक विकास-पथ होना चाहिए ताकि वे जिला और राज्य स्तर पर पाठ्यचर्या के विकास और विभिन्न संगठनों (डाइट और एस.सी.ई. आर.टी.) के क्षमता विकास से जुड़ सकें और उनके द्वारा यह विकल्प हमेशा होना चाहिए कि अगर वे चाहें तो पुनः प्रारंभिक स्कूल शिक्षण की ओर लौट सकें।

(4) **प्राथमिक स्कूलों के स्तर पर कक्षा और स्कूलों में समुदाय की भागीदारी इस बात की माँग करती है कि पाठ्यचर्या के एक हिस्से को स्कूल के स्तर पर रचा जाए या कार्य स्थल में स्कूलों के एक समूह के बीच सी.आर.सी., बी.आर.सी. और डाइट में काम करने वालों को इस प्रक्रिया में शामिल किया जाए। उन्हें स्कूलों और प्राथमिक स्कूल के बच्चों के साथ पर्याप्त समय बिताना चाहिए तथा शिक्षकों के साथ लंबे समय तक काम करके सामग्री और विचारों को सामने लाना**

चाहिए। प्रत्येक स्तर पर मौजूदा शैक्षिक संस्थाओं में लोकतंत्रीकरण की प्रक्रियाओं को मजबूत करने के लिए व्यवस्थात्मक बदलाव ज़रूर लाया जाए और इन प्रक्रियाओं की स्थिति को दर्शाने वाले तरीकों को भी जगह मिलनी चाहिए।

स्कूल से ऊपर की क्लस्टर, ब्लॉक, जिला, राज्य तथा राष्ट्रीय स्तर की सभी संस्थाओं को सहयोग देने और सशक्त करने की भूमिका निभाने की ज़रूरत है न कि प्रबोधक और निरीक्षक की।

- (5) बच्चों के शैक्षिक अधिकार और बड़ी संख्या में ऊँची कक्षाओं के दबाव को देखते हुए उच्च प्राथमिक स्तर और माध्यमिक स्तर पर स्कूलों की संख्या बढ़ाई जानी चाहिए। चूँकि इस स्तर पर विषयों की विषयवस्तु औपचारिक तार्किक संबंध बनाने और अवधारणाओं के समझने पर आधारित होती हैं — जो कि ज़रूरी नहीं है कि मूर्त अनुभवों से जुड़े हों, इसलिए स्कूलों को चाहिए कि वे प्रयोग, सर्वे, अध्ययन और पाठ्यचर्या के ढाँचे के भीतर अन्य व्यक्तिगत और सामूहिक कार्यों को करने की संभावनाओं को ज़रूर मुहैया कराएँ। यह इसकी माँग करता है कि हम ऐसी प्रक्रियाओं और अवसरों को स्थापित करें जिससे स्कूल के शिक्षकों तथा अन्य स्कूलों के शिक्षकों के बीच नियमित रूप से एक मशविरा हो तथा उनकी पहुँच सामग्रियों और एक अच्छे समृद्ध पुस्तकालय तक हो। उच्च स्तर के अधिकारी इसमें सक्षम हों कि शिक्षक प्रशिक्षण में

नवाचारों का समर्थन अपेक्षित तकनीकी सहायता के साथ कर सकें और उनको ज़रूरी संसाधन मुहैया कराएँ।

पहली पीढ़ी के शिक्षार्थी

हमें इस बात को ज़रूर स्वीकार करना चाहिए कि गरीब बच्चे, खासकर पहली पीढ़ी के सीखने वालों के पास घर में सीखने के लिए कोई सहयोगी व्यवस्था नहीं होती है। किसी भी बच्चे को धीमी गति या फिर न समझ पाने वाला होने की वजह से उसे स्कूल से बाहर नहीं धकेल दिया जाना चाहिए। संपूर्ण शिक्षा व्यवस्था को ऐसा बनाए जाने की ज़रूरत है जिससे कि वह ऐसे बच्चों की ज़रूरतों की पूर्ति कर सकें और उनके साथ सम्मान एवं संवेदनशीलता के साथ बर्ताव कर सकें, ताकि वे हर दिन स्कूल में आने के लिए प्रोत्साहन पा सकें।

परीक्षा सुधार

बहुत सारे विद्यार्थियों के लिए कक्षा दस का वर्ष बेकार के तनाव का समय होता है। अपेक्षाकृत बेहतर विद्यार्थियों के बीच परीक्षा में फेल होने को एक प्रमुख आपदा के रूप में देखा जाता है। यहाँ तक कि पर्याप्त उच्च अंक न पाने पर भी गहरी चिंता एवं आत्मग्लानि का भाव भर जाता है। स्कूल के नज़रिए से देखने पर यह पता चलता है कि यह परीक्षा उच्च प्राथमिक तक, नीचे उतरते हुए, स्कूल की विषयवस्तु तथा विधि को निर्धारित करती है। इसलिए अगर हम संपूर्ण शिक्षा प्रणाली में अर्थपूर्ण सुधार अवकल्पित करते हैं तो यह आवश्यक है कि हम परीक्षा एवं उससे जुड़ी हुई पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम तथा पाठ्यपुस्तकों पर आलोचनात्मक नज़र डालें।

चाहे कोई अंक दे या ग्रेड, कक्षा दस की परीक्षाओं की पास-फेल की बुनियादी स्थिति बदलनी चाहिए और उसका विकल्प उभारना चाहिए। उन विद्यार्थियों को ता-उम्र 'दसवीं फेल' के अपमानजनक लेबल से गुज़रने के लिए मजबूर नहीं होना चाहिए जो कक्षा दस में ग्रेड नहीं बना सकें। स्कूलों का मूल्यांकन इसी आधार पर किया जाना चाहिए कि कितने विद्यार्थी अपनी पढ़ाई जारी रख पा रहे हैं। इस आधार पर स्कूलों का मूल्यांकन नहीं किया जाना चाहिए कि वे परीक्षा में क्या निष्पादन कर रहे हैं। इस अवस्था में बच्चे पंद्रह या सोलह वर्ष के किशोर होते हैं; स्कूलों को इन किशोरों को विभिन्न क्षेत्र में निर्देशन एवं परामर्श देते हुए इनके साथ अवश्य जुड़ना चाहिए।

(6) विकेंद्रीकरण

विकेंद्रीकरण के सायास तरीके के जरिए ही स्कूल, विभाग तथा शैक्षणिक संस्थाओं का विकेंद्रीकरण हो सकता है। स्थानीय प्रशासन तंत्र को स्टाफ़ एवं नौकरशाही के प्रत्येक सोपानों के व्यक्तियों से भारी समर्थन की ज़रूरत हो सकती है। इस संदर्भ में जो मुख्य मुद्दे हैं, वे हैं — स्थानीय, प्रांतीय तथा राष्ट्रीय स्तर पर काम करने वाले बहुस्तरीय राजनीतिक विभागीय तंत्र के परिक्षेत्र में रूपरेखा तैयार करना और यह समझना कि बच्चों के शिक्षा के अधिकार को समर्थन देने में इन स्तरों की अपरिहार्य भूमिका है। यह सावधानी अवश्य बरती जानी चाहिए कि विकेंद्रीकरण निचले स्तर

के पदानुक्रम (हाइयार्की) पर ज़िम्मेवारियों न लादे जो उनकी निर्णय प्रक्रिया के लिए उपयुक्त न हों। शैक्षिक तंत्र में पर्याप्त लचीलापन एवं स्वायत्तता होनी चाहिए : नीति निर्माण, वित्त आवंटन, प्रशासनिक निर्देशक प्रावधान, अकादमिक समर्थन को इस प्रकार तैयार किया जाना चाहिए ताकि वह सबसे निचले स्तर के नीति-निर्माण की स्वायत्तता को समर्थन दे सकें।

(7) स्थानीय निकाय एवं समुदाय को मज़बूती प्रदान करना

शिक्षकों को प्रभावकारी तरीके से अपने दायित्व को पूरा करने के लिए सक्षम बनाने के लिए ग्राम पंचायतों की ज़्यादा भागीदारी की आवश्यकता है। तब भी विकेंद्रीकरण एवं स्थानीय भागीदारी की ज़रूरत कट्टरवादी प्रकृति की नहीं है। सूक्ष्म स्तर की योजना के लिए, बच्चों के अनुरूप रणनीति एवं स्थानीय संघर्षों को सुलझाने के लिए इसकी आवश्यकता है। सचमुच इसका कोई दूसरा समाधान नहीं है। समस्याओं के समाधान में स्थानीय निकाय सबसे ज़्यादा संसाधनयुक्त हैं। उन्हें इसकी अच्छी समझ है। स्थानीय संदर्भ के साथ संगति बैठाते हुए पाठ्यचर्या परिवर्तन के इन्हीं संदर्भों में बहुलता तथा सांस्कृतिक विविधता अनिवार्य हो जाती है।

(8) भूमिकाओं के दुहराव को दरकिनार करना भूमिकाओं के संदर्भ में स्पष्टता होनी चाहिए और संपूर्ण संरचना की कार्यविधि

परस्पर पूरकता के सिद्धांत पर टिकी हुई होनी चाहिए। यह जिम्मेदारियों के दुहराव, समय की बर्बादी और संसाधन तथा नियंत्रण के विभ्रम को दूर करेगा। 'स्थानीय' के लिए समर्थन की संरचनाएँ होनी चाहिए न कि केवल मॉनीटरिंग तथा लक्ष्य निर्धारण का कार्यक्रम। सबसे अधिक यह व्यवस्था व्यवसायीकरण तथा पदानुक्रम के प्रत्येक सोपान के अधिकारी की सघन भागीदारी की माँग करती है।

(9) काम की प्रगति का योजनाकरण तथा संप्रेषण

संपूर्ण व्यवस्था को लक्ष्य चालित होने की जगह प्रक्रिया चालित होना चाहिए। यह सीमित अवधियों में अंकुरित होने वाली लघु परियोजनाओं की जगह एक लंबी अवधि की अंतरपीढ़िक योजनाकरण की माँग करता है। इसके अलावा कार्यप्रणाली में तौर-तरीके ऐसे हों जिसे सभी समझ सकें तथा स्वीकार कर सकें। साथ ही यह

शिक्षक, शिक्षाविद एवं पेशेवरों की पृष्ठभूमि से आए लोगों की माँग के जवाब में व्यवस्थित तरीके से तकनीकी सहायता एवं विशेषज्ञता मुहैया करवा सके। अपनी वार्षिक मूल्यांकन/रपट में प्रत्येक स्तर, मसलन सी. आर.सी., बी.आर.सी., डाइट, एस.सी.ई.आर. टी., एन.सी.ई.आर.टी. तथा सभी शिक्षा विभागों, परीक्षा बोर्डों को समुदाय, शिक्षक तथा स्कूलों की ओर से आई हुई माँगों के संदर्भ में उनके द्वारा किए गए नीतिगत सुधारों, पहलकदमियों का रिकार्ड पेश किया जाना चाहिए।

(10) सतत मूल्यांकन की आवश्यकता

शिक्षा व्यवस्था के विकेंद्रीकरण की जाँच करने के लिए हमें समय-समय पर अध्ययन एवं रपट का आयोजन करना चाहिए, यह देखने के लिए कि क्या व्यवस्थागत तथा संगठनात्मक परिवर्तन हुए हैं और उनका क्या प्रभाव रहा है?

संदर्भ

- सिक्सथ ऑल इंडिया एजुकेशनल सर्वे, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली, 1998
- सेवेंथ ऑल इंडिया स्कूल एजुकेशन सर्वे, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली, 2002
- अग्रवाल, एम.पी., मेजरमेंट एंड कंपीटेंस ऑफ़ टीचर्स ऑफ़ प्राइमरी स्कूलस (मध्य प्रदेश), सेकंड सर्वे ऑफ़ रिसर्च इन एजुकेशन, 1972-1978. बड़ौदा : सोसायटी फॉर एजुकेशनल रिसर्च एंड डेवलपमेंट, 1969
- अरुण मेहता, प्रजेंटेशन ऑन डी.आई.एस.ई. डाटा 2003-04, एन.आई.इ.पी.ए.(नीपा), नयी दिल्ली, 2005
- भट्ट वी.डी. और बवाने, जे., 'ए स्टडी ऑफ़ डिसक्रिपेंसी बिट्विन एक्सपेक्टिड एंड एक्चुअल आउटकमस ऑफ़ द प्राइमरी टीचर एजुकेशन', इंडियन एजुकेशनल रिव्यू, 32(2), 155-164, 1997
- भट्ट वी.डी., आइडेंटिफिकेशन ऑफ़ एसेंशियल कंपीटेंसीज् फॉर प्राइमरी टीचर्स, रिपोर्ट ऑफ़ द डी.पी.ई.पी.

- एक्टिविटी ऑफ द एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली, अंडरटेकन एट द रीजनल इंस्टीट्यूट ऑफ एजुकेशन, मैसूर, 1998
- चैलेंज ऑफ एजुकेशन - ए पॉलिसी पर्सपेक्टिव, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, नयी दिल्ली, 1985
- कंपीटेंसी बेस्ड एंड कमिटमेंट ओरियंटेड टीचर एजुकेशन फॉर क्वालिटी स्कूल एजुकेशन - इन सर्विस एजुकेशन, नेशनल काउंसिल फॉर टीचर एजुकेशन, नयी दिल्ली, 1998
- कंपीटेंसी बेस्ड एंड कमिटमेंट ओरियंटेड टीचर एजुकेशन फॉर क्वालिटी स्कूल एजुकेशन - इनीसिएशन डॉक्यूमेंट, नेशनल काउंसिल फॉर टीचर एजुकेशन, नयी दिल्ली, 1998
- कंपीटेंसी बेस्ड टीचर ट्रेनिंग प्रोग्राम, डी.पी.ई.पी., तमिलनाडु इन न्यूजलेटर डी.पी.ई.पी. कॉलिंग, अंक संख्या 17, शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नयी दिल्ली, 1996
- डिफिकल्टीज ऑफ बेसिक स्कूल टीचर्स, ए सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन, नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ बेसिक एजुकेशन, केस (सी.ए.एस.ई.), बड़ौदा, 1960
- डिस्ट्रिक्ट इंस्टीट्यूट्स ऑफ एजुकेशन एंड ट्रेनिंग (डाइट) - गाइडलाइंस, शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नयी दिल्ली, 1989
- डी.ओ.ई.ई.एल., मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, वेबसाइट
- एजुकेशन फॉर ऑल (ई.एफ.ए.) : द इंडियन सीन, भारत सरकार, शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नयी दिल्ली, 1993
- एलिमेंट्री टीचर एजुकेशन कॅरिकुलम : गाइडलाइंस एंड सिलेबी, नेशनल काउंसिल ऑफ एजुकेशनल रिसर्च एंड ट्रेनिंग, नयी दिल्ली, 1991
- फिफथ ऑल इंडिया एजुकेशनल सर्वे, खंड-I, नेशनल काउंसिल ऑफ एजुकेशनल रिसर्च एंड ट्रेनिंग, नयी दिल्ली, 1992
- फोर्थ सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन 1983-88 (खंड-I), एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली
- गोविंदा, आर. और वर्गीज, एन.वी., दी क्वालिटी ऑफ बेसिक एजुकेशन सर्विसज इन इंडिया - ए केस स्टडी ऑफ प्राइमरी स्कूलिंग इन मध्य प्रदेश, फिफथ सर्वे ऑफ एजुकेशनल रिसर्च (1988-1992) : ट्रेड रिपोर्ट्स, खंड-I, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली, 1991
- झा और झिंगरन, एलिमेंट्री एजुकेशन फॉर द पूअरेस्ट एंड अदर डिप्राइव्ड ग्रुप्स, सेंटर फॉर पॉलिसी रिसर्च, नयी दिल्ली, 2002
- मानवी मजूमदार, डिसेंट्रलाइजेशन, रिफार्म्स एंड पब्लिक स्कूल्स, ए ह्यूमन पर्सपेक्टिव, जर्नल ऑफ एजुकेशनल प्लानिंग एंड एडमिनिस्ट्रेशन, खंड-XVII. सं. 4, अक्टूबर 2003. पृ. 481-506
- मिड-टर्म रिव्यू ऑफ द नार्थ फाइव इयर प्लान, योजना आयोग, भारत सरकार, नयी दिल्ली, 2001
- नेशनल कमिशन ऑन टीचर्स-I, 1983-85, दी टीचर एंड सोसाइटी, रिपोर्ट ऑफ द नेशनल कमिशन ऑन टीचर्स-I, भारत सरकार, नयी दिल्ली, 1986
- नेशनल कॅरिकुलम फॉर एलिमेंट्री एंड सेकेंडरी एजुकेशन - ए फ्रेमवर्क (संशोधित प्रति) एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली, 1988

- नेशनल पॉलिसी ऑन एजुकेशन, 1986. (1992 में किए गए संशोधन के साथ), शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नयी दिल्ली, 1992
- नेशनल पॉलिसी ऑन एजुकेशन (एन.पी.ई.), शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नयी दिल्ली, 1986
- प्रॉब रिपोर्ट, पब्लिक रिपोर्ट ऑन बेसिक एजुकेशन इन इंडिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1999
- प्रोग्राम ऑफ एक्शन (पी.ओ.ए.), भारत सरकार, शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नयी दिल्ली, 1992
- रामचंद्रन, विमला (संपादक), जेंडर एंड सोशल इक्विटी इन प्राइमरी एजुकेशन-हाईरार्की ऑफ एक्सेस, सेज पब्लिकेशंस, नयी दिल्ली, 2004
- रामचंद्रन, विमला और ई.आर.यू. टीम, स्नेक्स एंड लैडर्स : फैक्टर्स इंप्लुएनसिंग सक्सेसफुल प्राइमरी स्कूल कंपलीशन फॉर चिल्ड्रेन इन पावर्टी कंटेक्ट, साउथ एशियन ह्यूमन डेवलपमेंट सेक्टर रिपोर्ट नं. 6, विश्व बैंक, नयी दिल्ली 2004
- री, बी.पी., 1988-1992. जॉब सेटस्फैक्शन ऑफ प्राइमरी स्कूल टीचर्स, फिफ्थ सर्वे ऑफ एजुकेशनल रिसर्च : ट्रेड रिपोर्ट्स, खंड. 1, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली, 1989
- रिपोर्ट ऑफ द एजुकेशन कमिशन (1964-66), एजुकेशन एंड नेशनल डेवलपमेंट, नयी दिल्ली: शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार 1966
- रिपोर्ट ऑफ द वर्किंग ग्रुप ऑन चाइल्ड डेवलपमेंट फॉर द टेंथ फाइव इयर प्लान, योजना आयोग, भारत सरकार, नयी दिल्ली, 2001
- टीचर डेवलपमेंट फॉर बेटर प्यूपिल एचिवमेंट, रिपोर्ट ऑफ रीजनल टैक्निकल वर्किंग ग्रुप कम ट्रेनिंग वर्कशाप ऑन इन-सर्विस ट्रेनिंग ऑफ एजुकेशनल परसोनल, 29 अक्टूबर - 16 नवंबर 1985
- ए.पी.ई.आई.डी., यूनेस्को, बैकाक, 1986
- द कॅरिकुलम फॉर द टेन-इयर स्कूल-ए फ्रेमवर्क, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली, 1975
- द प्रतीची एजुकेशन रिपोर्ट, प्रतीची (इंडिया) ट्रस्ट, नयी दिल्ली, 2002
- द प्रॉब टीम इन एसोसिएशन विद सेंटर फॉर डेवलपमेंट इकोनॉमिक्स, पब्लिक रिपोर्ट ऑन बेसिक एजुकेशन इन इंडिया (प्रॉब), नयी दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1999
- द वर्ल्ड बैंक रिपोर्ट, प्राइमरी एजुकेशन इन इंडिया, एलायड पब्लिशर्स, नयी दिल्ली, 1997
- वर्गीज, एन.वी. और गोविंदा, आर., इंटर स्कूल वेरिएशन इन स्टूडेंट्स एचिवमेंट : एन एनालिसिस ऑफ प्राइमरी स्कूल इन फाइव सलेक्टेड लोकल्स, पर्सपेक्टिव इन एजुकेशन, 9(1), 15-34, 1993
- वर्गीज, एन.वी., स्कूल इफेक्ट्स ऑन एचिवमेंट: ए स्टडी ऑफ गवर्मेंट एंड प्राइवेट एडेड स्कूल्स इन केरल, कुलदीप कुमार (संपादित), स्कूल इफेक्टिवनेस एंड लर्निंग एचिवमेंट एट प्राइमरी स्टेज: इंटरनेशनल पर्सपेक्टिव्स, एन.सी.ई.आर.टी, नयी दिल्ली, 1995

गुरु-शिष्य संबंध – आधुनिक शैक्षिक परिप्रेक्ष्य में

शोभारानी सभ्रवाल*

प्राचीन काल से ही भारत वर्ष में शैक्षिक प्रक्रियाओं में गुरु शिष्य संबंधों को महत्त्व दिया जाता रहा है परंतु - वर्तमान समय में इन संबंधों में परिवर्तन आ रहा है और ये संबंध कमजोर पड़ते दिखाई दे रहे हैं। आज की शिक्षा व्यवस्था में यदि हम गुरु-शिष्य संबंधों में सुधार चाहते हैं तो हमें गुरु तथा शिष्य दोनों की मनोदशाओं का अध्ययन करना होगा तथा उनसे जुड़ी संवेगात्मक, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक या व्यक्तिगत समस्याओं को सुलझाने के प्रयत्न करने होंगे।

भारतवर्ष की प्राचीनता, दार्शनिकता तथा आध्यात्मिकता को अखिल विश्व के समृद्ध राष्ट्र भी निस्संकोच होकर स्वीकार करते हैं। इस देश की संस्कृति, भाषा को अनेक भाषाओं की जननी कहा जाता है। विदेशों में आज भी भारतवर्ष की छवि आध्यात्मिक गुरु के रूप में स्वीकार की जाती है। भारतीय संस्कृति में 'गुरु' की महत्ता तथा आवश्यकता के संबंध में जितना उल्लेख किया गया है उतना अन्य किसी देश के साहित्य तथा संस्कृति में नहीं मिलता।

माता-पिता के पश्चात् गुरु की मान्यता को वेद, उपनिषद् तथा परवर्ती साहित्य में एक मत से स्वीकार किया गया है। गुरु के प्रति अपार श्रद्धा व्यक्त करने

के लिए तथा उनका गुणगान करने के लिए 'गुरु पूर्णिमा' 'व्यास पूजा' आदि विभिन्न नाम देकर विशेष दिवस भी निर्धारित किए गए हैं। गुरु पूजा की यह प्रथा केवल भारत तक ही सीमित नहीं है अपितु भारतीय संस्कृति से अनुप्राणित थाइलैण्ड, मॉरिशस जैसे देशों में भी इसका प्रचलन है।

गुरु

गुरु शब्द 'गु' का अर्थ अंधकार तथा 'रु' का अर्थ है रोकने वाला। अन्धकार को रोकने अर्थात् दूर करने से ही गुरु शब्द निर्मित हुआ है।

'अद्वयतारकोपनिषद्'¹ में गुरु शब्द के अर्थ को इस प्रकार व्यक्त किया गया है - वेदादि से

*प्रवक्ता, शिक्षा विभाग, पैसल वीड कॉलेज, देहरादून.

¹अद्वयतारकोपनिषद् - श्लोक - 14.16.

संपन्न आचार्य, विष्णु भक्त, मत्सरतारहित योग्य ज्ञाता, योग निष्ठा वाला, योग्यात्मा, पवित्र, गुरु भक्त, परमात्मा में विशेष रूप से लीन इन लक्षणों से युक्त व्यक्ति ही गुरु कहा जाता है अर्थात् गुरु शब्द में सर्वगुण संपन्नता व्याप्त है। गुरु में गुरुता, महत्त्व, पवित्र आत्मा, असाधारण योग्यता सभी कुछ दृष्टव्य होता है। 'कादम्बरी'² में गुरु के गुणों का वर्णन किया गया है। ऋषि जाबाल के गुणों का उल्लेख इस प्रकार किया है "यह मुनि तेजों में अग्रणी, करुण रस का प्रवाह, संसार रूपी समुद्र से पार जाने के लिए कुल्हाड़ी, संतोष का सागर, सिद्धि मार्ग में शिक्षक, अशुभ ग्रहों को शांतकर्ता, प्रजा का चक्र, धर्म की ध्वजा, आसक्ति रूपी पल्लवों के लिए दावानल, क्रोध रहित, नर्क द्वारों के बंधन, शक्ति के आश्रय अभिमान रहित तथा सुखों से परागमुख हैं।" मानव जीवन का कोई भी क्षेत्र हो उसमें स्वामित्व प्राप्त करने के लिए किसी ऐसे व्यक्ति की खोज करनी पड़ती है जो इस क्षेत्र में पूर्ण ज्ञान रखता हो। यह पूर्ण ज्ञानी केवल गुरु होता है। गुरु ही साधारण व्यक्तियों को अज्ञानान्धकार से प्रकाश की ओर ले जाता है।

शिष्य

'शिष्यस्तेऽहं शधि मां त्वां प्रपन्नम्।'³

अर्थात् मैं आपका शिष्य हूँ अतः आपकी शरण में आए हुए मुझको शिक्षा दीजिए। वास्तव में जो

पूर्णतया गुरु की शरण में समर्पित हो जाए वह शिष्य है। 'सत्यार्थ-प्रकाश' में शिष्य वही है जो सत्य, शिक्षा और विद्या को ग्रहण करने योग्य धर्मात्मा, विद्याग्रहण की इच्छा रखने वाला तथा आचार्य का प्रिय होता है।⁴

शिष्य शब्द अपने में पूर्ण है जो वास्तविक रूप से गुरु शिष्य संबंध को उद्घाटित करता है। जो शिष्य गुरु की आज्ञा का पालन करके उनके आशीर्वादात्मक वाणी को ग्रहण करता हुआ उनके हृदय में समाविष्ट हो जाता है वही सच्चा शिष्य है। 'नारद पुराण' में शिष्य की तल्लीनता के विषय में कहा गया है कि - "जो विद्या की चाहना रखने वाला है और विद्या प्राप्त करना ही जिसके जीवन का एकमात्र प्रयोजन होता है वह एक गरुड़ पक्षी हंस के समान समुद्र में भी चला जाता है"।⁵ तात्पर्य यही है कि विद्या का अर्थी सुदूर और दुर्गम स्थानों में भी पहुँच जाता है क्योंकि उसका तो एकमात्र लक्ष्य विद्या की प्राप्ति करना ही होता है। जो विद्यार्थी अपना रहन-सहन सीधा-सादा और सदाचारपूर्ण रखता है वही विद्या की प्राप्ति करता है।

"भारतीय ज्ञान साधना के क्षेत्र में ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान और शब्द का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ज्ञाता होता है - गुरु एवं शिष्य, ज्ञेय ब्रह्म तथा ज्ञान को प्राप्त कराने का साधन है।⁶ स्वामी दयानन्द भी दार्शनिक थे। उनका मत है कि ज्ञाता के अतिरिक्त ज्ञेय का

²कादम्बरी पृ. भाग जाबालिवर्णनम् पृ. 166 से 168.

³भगवद्गीता - शंकारमाण्य 217, पृ. 83.

⁴महर्षि दयानन्द सरस्वती - सत्यार्थ प्रकाश- पृ. 564.

⁵नारदपुराण द्वितीय खण्ड - श्लोक - 230, पृ. 255.

⁶डॉ वेद प्रकाश गुप्त - दयानन्द दर्शन - पृ. 217.

भी पृथक् अस्तित्व है अन्यथा ज्ञान किसका? गुरु का ज्ञान बिना शिष्य के अस्तित्व के सुरक्षित तथा हस्तांतरित नहीं हो सकता अर्थात् गुरु शब्द के साथ-साथ शिष्य शब्द स्वतः ही आ जाता है।

गुरु शिष्य संबंध

वैदिक ग्रन्थों, महाकाव्यों, नाटकों, नीतिकाव्यों तथा हमारे साहित्य आदि में गुरु शिष्य परंपरा का उल्लेख मिलता है। संस्कृत के शब्दकोष कल्पद्रुम⁷ के द्वारा शिष्य की उत्पत्ति इस प्रकार की गयी है। शास् + क्यप्। शास् शब्द क्यप् प्रत्यय मिलकर शिष्य शब्द की उत्पत्ति मानी गयी है। शास् का अर्थ होता है — शासन करना, आज्ञा देना, आशीर्वाद देना, उपदेश देना, समादिष्ट करना आदि। उपरोक्त सभी प्रक्रियाएँ गुरु द्वारा शिष्य के प्रति की जाती हैं। हमारी भारतीय वैदिक संस्कृति के अनुसार गुरु पिता/माता तुल्य तथा शिष्य पुत्र/पुत्री तुल्य व्यवहार करता है।

गुरु शिष्य संबंध — आधुनिक परिप्रेक्ष्य में (चिंतन)

आज की आधुनिक शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में यदि हम गुरु-शिष्य संबंधों का विश्लेषण करें तो इसकी छवि कुछ विकृत दिखायी देती है। पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव में आकर आधुनिक बनने की होड़ में युवा वर्ग अपने गुरुजनों तथा प्रतिष्ठित व्यक्ति की आज्ञा का उल्लंघन और उनकी उपेक्षा करने में गौरव का अनुभव करते हैं। युवा वर्ग में जो निराशा, भगनाशा, अवहेलना, कर्तव्य की उपेक्षा,

अहंकार आदि दृष्टिगोचर होते हैं वास्तव में ये सभी अवगुण हमारी भारतीय संस्कृति के अनुरूप कदापि नहीं हैं। अन्य देशों की संस्कृतियों के मिश्रण से, विदेशों में कुछ काल रहने तथा पुनः अपने देश लौटने से लोकतंत्रीय भारत में स्वाधीनता का अर्थ ठीक न समझने से तथा प्रत्येक संस्थान, संस्था और व्यक्ति में राजनीति का प्रवेश हो जाने से आज भारतीय युवावर्ग किंकर्तव्यविमूढ़ सा बन गया है। वह पथभ्रष्ट होकर ज्ञान शून्य, निर्देशन रहित तथा अंधकार में विलीन हो रहा है। प्रत्येक शिष्य में प्रेम, त्याग, सेवा, अहंकार शून्यता आदि गुणों का होना आवश्यक है जो आज के शिष्य में नहीं है।

आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में शिक्षक भी अपने कर्तव्य से विमुख होते दिखते हैं। वह भी कई बार अपने को इस आधुनिक समाज की भागती जिंदगी का एक हिस्सा बनाने में लगे हैं। आज का शिक्षक अत्याधुनिक जीवन शैली में कदम से कदम मिलाकर चलने की आपाधापी में वह भी किसी हद तक किंकर्तव्यविमूढ़ सा हो गया है। कई बार समाचारपत्रों तथा मीडिया द्वारा सुनने को मिलता है कि कई बार शिष्यों द्वारा तथा कई बार शिक्षकों द्वारा अपने कर्तव्यों तथा अधिकारों का हनन किया गया। इस पर हम सोचने पर मजबूर हो जाते हैं कि हमारी आज की शिक्षा व्यवस्था में गुरु शिष्य संबंधों में परिवर्तन क्यों आ रहे हैं। इसके लिए हमें गुरु तथा शिष्य दोनों की समस्याओं, मानसिक मनोदशाओं का अध्ययन करना जरूरी हो जाता

⁷शब्दकोष, कल्पद्रुम तथा संस्कृत हिंदी कोष.

है। आधुनिक शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में गुरु शिष्य संबंधों के ज्वलंतशील विषय के रूप में सामने आने लगा है। इसके विषय में हमको थोड़ा संवेदनशील होने की आवश्यकता है।

सुझाव

संत वाणी संग्रह में गुरु शिष्य संबंधों को इस प्रकार दर्शाया गया है - 'प्रत्येक व्यक्ति को किसी न किसी सहारे की आवश्यकता पड़ती है। वह किसी अनुभवयुक्त ज्ञानी व्यक्ति की अँगुली पकड़कर अपना मार्ग तय करना चाहता है। इस संसार में सर्प को दूध पिलाने वाले तो बहुत हैं लेकिन उनके विष को स्वयं दूर करने वाले अति अल्प ही दिखाई देते हैं। वह सिर्फ गुरु ही होता है।'⁸

आज की अति आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में यदि हम गुरु शिष्य संबंधों में सुधार चाहते हैं तो हमें निम्न पहलुओं की ओर समाज का ध्यान आकृष्ट करना होगा। हमें गुरु तथा शिष्य दोनों की मनोदशाओं का अध्ययन करना होगा।

छात्रों से संबंधित

छात्रों की समस्याओं से संबंधित प्रत्येक विद्यालय में उचित 'निर्देशन एवं परामर्श' प्रोग्राम रखा जाए ताकि उनकी कुछ संवेगात्मक या सामाजिक या पारिवारिक समस्याओं को समझकर हल करने की कोशिश की जाए।

- माता-पिता तथा शिक्षकों को एक माह में कम से कम एक या दो बार बच्चे से संबंधित समस्याओं पर विचार-विमर्श करना चाहिए जिससे बालक की शैक्षिक, संवेगात्मक, पारिवारिक या व्यक्तिगत समस्याओं का समाधान हो सके।
- माता-पिता द्वारा बच्चों पर अपनी अति महत्वाकांक्षाओं का बोझ लादना भी बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य तथा उनके अनुशासन को प्रभावित करता है। कभी-कभी बच्चा इस महत्वाकांक्षा में दब जाता है तथा उद्दंड हो जाता है। इसके लिए समय-समय पर ऐसे सेमिनारों का आयोजन किया जाए जिसमें माता-पिता तथा शिक्षक समान रूप से भाग ले सकें।
- कक्षाओं में वैयक्तिक भेदों का ध्यान रखकर शैक्षिक व्यवस्था की जानी चाहिए।

शिक्षक के संबंध में

- दास. एम. जे. (1989) ने शिक्षकों के मानसिक स्वास्थ्य पर काम कर पाया — कि शिक्षकों पर काफी काम का बोझ था तथा उनके अपने अधिकारियों के साथ संबंध अच्छे नहीं थे। उन्होंने सुझाव दिया कि शिक्षकों को काम में खुशी तथा पुरस्कार उनके मानसिक स्वास्थ्य के लिए अति आवश्यक है।⁹
- अध्यापक को विशेष योग्यतायुक्त होने के लिए प्रशिक्षित होना चाहिए इसके लिए उसे

⁸कबीरदास - सन्तवाणी संग्रह - 25/41.

⁹फिफथ सर्वे ऑफ एजूकेशनल रिसर्च - पृ. 114.

- अनेक पूर्वाग्रहों से मुक्त होना पड़ेगा और स्वतन्त्र चिंतन करना होगा। छात्रों को मान्य मन से विपरीत मत प्रकट करने की छूट देना अध्यापक का कर्तव्य है किंतु चंद अध्यापक ही ऐसा करते हैं। फल यह होता है कि छात्रों में स्वतंत्र मत रखने और शोध की प्रवृत्ति जाग्रत होने के बजाय केवल पुराणपंथीपन ही आ पाता है।¹⁰
- शिक्षा प्रशासन में अध्यापक की भूमिका की उपेक्षा नहीं होनी चाहिए। शिक्षा-तंत्र इसलिए आयोजित है ताकि छात्र-अध्ययन कर सकें और अध्ययन-अध्यापन में कुशल शिक्षक का बड़ा महत्त्व है परंतु भारी-भरकम शिक्षा-तंत्र की यह बहुत बड़ी कमी है कि उसके अधिकतर शिक्षा-प्रशासक अध्यापक नहीं होते अतः उन्हें बालकों के अध्यापन का अनुभव नहीं होता।¹¹ शिक्षकों की आर्थिक समस्याओं पर सरकार द्वारा विशेष ध्यान दिया जाए जिससे वे मुक्त रूप से अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर सकें।
 - वर्तमान में शिक्षकों को कक्षा में हर दृष्टि से सजग रहने की एवं प्रबुद्ध और जानकारी विशेषज्ञ के रूप में अपने को प्रस्तुत करने की सामर्थ्य अपने अंदर पैदा करनी होगी। इस सामर्थ्य के कारण ही वह एक विश्वसनीय संदर्भदाता, मार्गदर्शक और परामर्शी की भूमिका निर्वहन कर सकता है।¹²
 - शिक्षक को छात्रों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखना चाहिए।
 - शिक्षक की मानसिक-दशा तथा मानसिक स्वास्थ्य के लिए समय-समय पर शैक्षिक प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा सेमिनारों की व्यवस्था की जाए जिसमें शिक्षक उन्हें समस्याओं के बारे में अवगत करा सकें तथा इन समस्याओं के समाधान की व्यवस्था की जानी चाहिए।
 - उपरोक्त सभी सुझावों के साथ हमें नैतिक-शिक्षा को विशेष महत्त्व देना होगा। समय-समय पर ऐसी नैतिक शिक्षा से संबंधित सेमिनारों का आयोजन किया जाए जिसमें छात्र-शिक्षक तथा विशेषज्ञ सम्मिलित हो जिससे गुरु शिष्य संबंधों में सुधार हो सके।
 - यदि हम गुरु शिष्य संबंधों में प्यार तथा सम्मान का भाव चाहते हैं तो हमें नैतिक शिक्षा की ओर विशेष ध्यान देना होगा जिससे हमारा युवावर्ग आगे चलकर हमारे देश के लिए गौरव की मिसाल बन सके।
 - वट्टेण्ड रसेल के अनुसार - 'शिक्षक को राष्ट्र तथा चर्च की अपेक्षा अपने शिष्य के प्रति प्रेम होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं है तो वह आदर्श शिक्षक नहीं है।'¹³
- 'कबीर जब हम गावते, तब जाना गुरु नाहिं। अब गुरु दिल में देखिया, गावन को कछु नाहिं।'**¹⁴

¹⁰वट्टेण्ड रसेल : शिक्षा और समाज व्यवस्था, राजकमल प्रकाशन - 1968, पृ. 116.

¹¹वट्टेण्ड रसेल: शिक्षा और समाज व्यवस्था, राजकमल प्रकाशन - 1968, पृ. 166.

¹²शैक्षिक निर्देशन एवं परामर्श - महावीर प्रसाद गुप्ता, पृ. 30.

¹³वट्टेण्ड रसेल - शिक्षा की रूपरेखा - राजकमल प्रकाशन - 1963, पृ. 42.

¹⁴कबीरदास - सन्तवाणी संग्रह - 44/101.

समझें, ना समझें पर समझ की भाषा को तो समझें

आयुष्मान गोस्वामी*

भाषा के माध्यम से सीखने-सीखाने या भाषा को सीखने-सीखाने की बात करते ही चिंतन के समुद्र में प्रश्नों और जिज्ञासाओं की अनगणित लहरें उठने लगती हैं। पर बच्चों के **Medium of Instruction** की बात करना और वह भी सिर्फ एक अंग्रेज़ी के सहारे उन्हें लड़खड़ाकर येन-केन प्रकारेण चलते देखना, इसे न तो बच्चों के भविष्य को सही दिशा में बढ़ना कहा जाएगा न ही सीखने-समझने की आज्ञादी। समझ की भाषा हमेशा बच्चों में अपने परिवेश से ही आती है और उस भाषा को जब शिक्षण से जोड़ते हुए बच्चों के अनुभव या जीवन को कक्षा में किताबों और क्रियाकलापों द्वारा प्रस्तुत होने का अवसर दिया जाता है, तो सीखना या समझना और समझाना यह सब जीवंत बन जाता है। प्रस्तुत लेख में हमने हिंदी भाषी राज्य राजस्थान के अजमेर जिले के कुछ हिंदी माध्यम और अंग्रेज़ी माध्यम के स्कूलों में प्राथमिक स्तर पर शिक्षण के माध्यम और भाषा-शिक्षण संबंधी कुछ जीवंत अनुभव प्राप्त किए और उन्हीं को आधार बनाकर यहाँ कुछ सोचने और कहने का प्रयास किया है।

शिक्षा जगत् की सारी गतिविधियों या क्रियाकलापों को समझने का प्रयास किया जाए तो यह कहना ज्यादा मुश्किल नहीं है कि हम कहीं-न-कहीं समझने और समझाने के फेर में लगे हुए हैं। शैक्षिक अनुसंधानों की दिशा और सांप्रतिक दशा भी इसी 'समझ' के फेर को समझने में लगी है। बच्चा क्या समझता है, कैसे समझता है, उसके

समझने का तरीका क्या है इत्यादि प्रश्नों का जवाब देने के लिए हम कभी शैक्षिक मनोविज्ञान के अतीत और वर्तमान को टटोलने की कोशिश करते हैं, तो कभी शिक्षा के दार्शनिक आधारों को तलाशने लगते हैं। समाजशास्त्र भी इस तलाश से अलग तो है नहीं इसलिए उसे भी घसीटकर लाने का भरसक प्रयास किया जाता है। भाषा के विद्वान,

*प्रवक्ता शिक्षा, क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, अजमेर-305004.

समझ के ठेकेदार, पाठ्यक्रम के महायोद्धा, शिक्षाशास्त्र के धुरंधर महारथी और न जाने ऐसे ही कितने नामों से सम्मानित महानुभाव अपने-अपने हाथों में अलग-अलग शोध पद्धतियों का भंडार लिए तथा बुद्धि में वैचारिक संप्रत्ययों की बहुलता' लिए इस शिक्षा रूपी कुरुक्षेत्र में एक महासमर की तैयारी में जुटे हैं। एक पक्ष वामहस्थ की ओर झुका है तो दूसरा दक्षिण हस्थ के नीचे खड़ा है, एक समझने-समझाने का पूर्वपक्ष है तो दूसरा उसका उत्तर पक्ष, एक को ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय में रचनावाद की सनक लगी है तो दूसरा वस्तुवाद को छोड़ना ही नहीं चाहता। इन सभी महारथियों के बीच फँसा है तो नादान, सहज और हँसमुख बच्चा जिसके पास न तो समझ को समझने कोई तरीका है, न ही ज्ञान के पूर्वाग्रह की कोई छवि। वह एक निडर नायक की तरह अपने अनुभव और चिंतन के पथ पर निर्विहन बढ़ने को तत्पर है। उसे क्या सीखना है, कब सीखना। कैसे सीखना है, किससे और क्यों सीखना है, इस बात की चिंता नहीं है क्योंकि इन प्रश्नों से तो वे महारथी घिरे हैं जो उसके चारों ओर खड़े हैं। बच्चा तो सिर्फ सीखने और उसी के अनुसार आगे बढ़ाने में विश्वास रखता है। कदम-दर-कदम बढ़ना उसे आता है, उन कदमों की चाप भी वह सुनता है और सुनकर अपनी ही बनाई किसी लय में मदमस्त होकर आगे बढ़ जाता है, बिना इस भय के कि वह गिर भी सकता है। सीखने के जिस रास्ते पर वह बढ़ने लगता है उस पर रखा गया हर कदम उसे अगले कदम को विश्वास के साथ बढ़ाने की प्रेरणा देता है और असफलता या नाकामी की ठोकर भी उसे बहुत कुछ सिखा जाती है।

ऊपर के हमारे चिंतन को बच्चे की भाषा संबंधी समझ और भाषा के माध्यम से उसे समझाने के परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो कुछ आश्चर्य अवश्य होता है। हर बच्चे का जन्म किसी एक भाषायी परिवेश में होता है। यहाँ हम भाषा और बोली का वह शास्त्रीय भेद नहीं कर रहे हैं जिससे विद्वानों का सरोकार है अपितु भाषा को बच्चे के जीवन से जुड़ा एक अपरिहार्य तत्व मान रहे हैं। बच्चे के परिवेश की भाषा बहुत कुछ उसकी माता से मिलती है। माँ की तरह वह भी उसे हँसाती, खिलाती और समझाती है। न तो वह बच्चे को रुलाती है न ही रोता देख सकती है। बच्चे के सामने उसका हर कर्म माँ के समान सहज और प्रिय होता है। जैसे कोई माँ कभी भी मातृत्व की शास्त्रीय परिभाषा में बंधकर बच्चे को स्नेह नहीं करती उसी प्रकार बच्चे के परिवेश की भाषा किसी शास्त्रीय व्याकरण या उसके नियमों में नहीं बंधती है। इसीलिए छोटे बच्चे भाषा के प्रयोग को लेकर बड़ों की अपेक्षा कहीं अधिक सरल और सहज होते हैं जैसे हम कहेंगे—

1. आपने पानी पी लिया - हमने पानी पी लिया
2. आपको घर जाना है - हमको घर जाना है
3. आपसे गलती हुई - हमसे गलती हुई
4. आपका भाई आया - हमारा भाई आया

अब देखिए ज़रा बच्चा क्या कहता है। शुरू के तीन कदम चलकर जिस विश्वास से वह चौथे कदम पर आता है, हमसे कहीं अधिक तार्किक और बुद्धिमान होता है। वह कहता है -

“आपका भाई आया - हमका भाई आया।”

यहाँ बच्चा तर्क करता है कि जब आपने से हमने बना, आपको से हमको बना और आपसे से हमसे बना, तो आपका से हमका क्यों नहीं बनेगा, क्यों उसके लिए हमारा बोलना जरूरी है। शायद इसका जवाब न तो व्याकरण के पास उस तरह से है, जिस तरह से बच्चा सोचता है और न ही उन महारथियों के पास जो उसे पढ़ाने या सिखाने के नाम पर घेरे हुए हैं।

अब अगर बच्चे की औपचारिक शिक्षा की बात करें और प्राथमिक स्तर पर शिक्षण या शिक्षण के माध्यम पर विचार करें तो चिंतन नयी दिशाएँ लेता प्रतीत होगा। किसी भी बच्चे का औपचारिक प्राथमिक शिक्षण और भाषा के माध्यम से शिक्षण हमेशा उसकी मातृभाषा यथारूप उच्चारण, तदनुसार उतार-चढ़ाव और उसके समझने के अपने निराले ढंग पर निर्भर करता है। इसके साथ ही शिक्षक, जो कि स्वयं किसी परिवेश की उपज है, भी बच्चे की समझ के निर्माण में अहम् भूमिका अदा करता है। यदि शिक्षक की भाषा बच्चे के परिवेश की भाषा से अनजानी है तो बच्चा सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में अनजान-सा बना रहता है। यदि स्थिति इसके विपरीत है तो कक्षा में पढ़ाते समय शिक्षक के लिए उन शब्दों का प्रयोग करना सहज होता है जो बच्चे की रोजमर्रा की जिंदगी का हिस्सा बन चुके हैं। अब जब ऐसे शिक्षक चाहे भाषा पढ़ाएँ या भाषा के माध्यम से गणित, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान आदि की बात करें, बच्चे उनके साथ एक लगाव महसूस करते हैं क्योंकि शिक्षक की बोली उन शब्दों से सजी है जिनका स्वाद बच्चे हर साँस में लेते हैं।

हम प्रथम दृष्टया यह मान सकते हैं कि जिसे हम बच्चे की पारिवेशिक भाषा कह रहे हैं वह उसकी मातृभाषा भी है जो उसके लिए दूसरी भाषाओं तक जाने में एक सेतु का काम भी करती है। साथ ही, अगर हम यह मानते हैं कि स्थानीय उच्चारण या मातृभाषा का प्रभाव किसी विषय को पढ़ने या समझने में बाधक नहीं बल्कि सहायक है तो कक्षा में आप दिनों में घटने वाली कुछ छोटी-छोटी घटनाएँ हमारा ध्यान अवश्य खींचेगी।

एक बच्चा कहता है - “सर! ये बात तो आपने पैले भी बताई थी।”

(यह के स्थान पर ये और पहले की जगह पैले का प्रयोग करना।)

दूसरा बच्चा कह रहा है - “ये कैसे पता लगेगा कि कितनी-कितनी लाईनें कहाँ बनानी हैं।” (कितने या कितनी की जगह कितनी कहना साथ ही अँग्रेजी के बहुवचन लाइन्स को हिंदी का बहुवचन बनाना - लाईनें)

तीसरा बच्चा पूछता है - “सर! श्री के उप्पर फोर आयेगा क्या है।” (ऊपर की जगह उप्पर बोलना, मिली-जुली हिंदी-अँग्रेजी बोलना)

अब देखिए, शिक्षक क्या कह रहे हैं -

“Twenty में अपन ने कितना जोड़ा कि forty हो गया?”

(हमने कितना जोड़ा के स्थान पर अपन ने कितना जोड़ा कहना)

आगे बढ़ते हुए वह शिक्षक फिर पूछते हैं -

“Fifty में कितना add किया कि Fifty six हो गया।”

(यहाँ कितना शब्द बोला गया और साथ ही जोड़ के स्थान पर add को add कर दिया गया।)

अब तक के उदाहरण किसी भाषा की कक्षा के नहीं हैं, पर भाषा शिक्षण भी इस जमीनी सच्चाई से भाग नहीं सकता क्योंकि भाषा जीवन से भागने का नाम नहीं है बल्कि जीवन के अनुभवों को समेटने की एक कला है। इस कला की साधना हर भाषा शिक्षक करता है। तरीके कुछ अलग या इतर हो सकते हैं। देखते हैं, अंग्रेजी की कक्षा में क्या हो रहा है -

Teacher asks, "Why was the sultan in hurry?"

बच्चों से कुछ पूछा गया और पलट कर बच्चे पूछ रहे हैं "Hurry का मतलब? इस मतलब का मतलब बड़ा विचित्र है। मतलब समझ में आ जाए तो अर्थ भी समझ में आ जाएगा और सीखने-सिखाने की सार्थकता भी। शायद शिक्षक ने इसे समझ लिया और कहा-

"Hurry मतलब जल्दी में, सुल्तान जल्दी में क्यों था।" फिर आगे बढ़े Why did the Barber take so long to shave the Sultan? इसका मतलब हुआ कि शेव करने में उसने ज्यादा समय क्यों लिया, उसको ज्यादा Time क्यों लगा? अब देखिए, शिक्षक को पता है कि बच्चों का परिवेश उस भाषा को समझ सकता है, जो वहीं पैदा हुई है और खेती-कूदी है। वह भाषा इतनी सहज है कि समय की जगह Time कहने में अपनापन महसूस कर रही है। शिक्षक आगे बढ़ते हुए फिर कहते हैं।

The Barber took so long to shave the Sultan so that he could get food for his friends easily, मतलब उसको अपने दोस्तों के लिए खाना लेना था, वो विवक लेना चाहता था। तभी एक बच्चा पूछ बैठता है - सर! "Barber" मतलब, शिक्षक कहते हैं "नाई होता है।"

बच्चा यह मतलब पहले भी पूछ सकता था, पर नहीं पूछ सका। या तो उसका ध्यान ही नहीं था या जिस भाषा में शिक्षक पूछ रहे थे, वह उससे कुछ अजनबी थी। जैसे ही शिक्षक ने तथाकथित English teaching through english; या English as medium of instruction की ज़िद छोड़ दी, बच्चे ने भी न पूछने का भय त्याग दिया। एक समझदार शिक्षक और कर भी क्या सकता है। वह नियमों की जंजीरों में जकड़ा नहीं है बल्कि समझ पाने और समझा पाने की निष्ठाओं से बंधा है। भाषा को पढ़ाया जाए या भाषा के माध्यम से पढ़ाया जाए, दोनों ही स्थितियों में 'समझ की भाषा' महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

समझ की भाषा, बच्चों के लिए किसी औपचारिक प्राथमिक, द्वितीय या तृतीय भाषा से कहीं पहले सीखने-समझने के रास्ते खोल चुकी होती है। बड़ी उम्र के बड़े लोग समझ की जो भाषा जानते हैं वह किसी मानक हिंदी या Standard English के काफी समीप होती है और उसमें वे लोग कुछ आगे भी बढ़ चुके होते हैं, शायद इसीलिए बच्चे के प्राथमिक स्तर पर शिक्षण के माध्यम की बात भी वे उसी भाषा में करना चाहते हैं, पर बच्चा तो बच्चा है भला अपनी समझ की भाषा को कैसे और क्यों छोड़ दे, वह तो साफ सुथरी बात जानता है - जो समझ सकता हूँ वह है और जो नहीं समझ सकता हूँ उस पर क्या करूँ या कहूँ। बड़े लोगों के तर्क काफी दूर तक जाते हैं। English is now, a language of power, wisdom and rule, English is an International Language. पर बच्चा,

अपनी औकात और सीमाएँ दोनों जानता है। उसके अपने अंदर का संसार कहीं अधिक सहज और सुंदर है, उसे किसी पर Rule नहीं करना है, न ही कोई ऐसी Power अर्जित करनी है। न जाने आगे क्या हो और यदि Power या Rule नहीं कर पाए तो कुंठित होना पड़ेगा। बच्चा यहाँ पर प्रयोजनवादी विचारधारा के नज़दीक होता है, अर्थात् पहले से शिक्षा के लक्ष्य और उद्देश्य निर्धारित करके चलना उसे नहीं आता या कहें उसके अनुभव से मेल नहीं खाता। अपनी समझ से आगे बढ़ सके, कुछ कर सके और जीवन का हर पल आनंद से जी सकें, शायद यह बच्चे का आत्मिक-आंतरिक गंतव्य होता है। यह एक ऐसा गंतव्य है जिस तक पहुँचने के रास्ते अनेक हैं, और मंजिल, न जाने कहाँ और कैसी है।

प्राथमिक स्तर पर बच्चों के साथ जिस Medium of Instruction की बात हम समझ पा रहे हैं, वह शिक्षक का बच्चों के साथ एक जीवंत, सार्थक, सच्चा और नयी दिशा लेने वाला संवाद है, जिसमें संवाद की भाषा English Medium का स्कूल होते हुए भी वैसी English नहीं है जो ऊपर से बोझ की तरह लाद दी गई हो या जो हिंदी या स्थानीय भाषा से कुछ शब्दों को लेने में संकोच करती हो। यह शुद्ध, शास्त्रीय हिंदी से भी कुछ दूर ऐसी भाषा है जिसमें “पाचन तंत्र” को हाजमा या “गुरुत्वाकर्षण” को खींचने की ताकत कह कर समझा जाता है।

यह भाषा, जिसे सही अर्थ में Real Classroom Transaction कहा जाएगा, एक

ऐसी भाषा है जो बच्चों को, उसके परिवेश, संसार और संस्कार (भाषा का घरेलू वातावरण) के साथ स्वीकार करती है। आगे चलकर यह English Medium या हिंदी माध्यम का एक स्तरीय रूप ले ले, यह एक अलग बात है। पर, इतना कहा जा सकता है कि अभी जो कुछ प्राथमिक स्तर पर Classroom Transaction या Medium of Instruction के नाम पर हो रहा है, वह बहुभाषी Learning Environment को बढ़ावा देता है। जहाँ भाषाएँ एक दूसरे की प्रतिद्वंदी नहीं हैं अपितु सहगामी या सहयोगी हैं।

जहाँ तक Pure English medium की बात है या Classroom Transaction in English की बात है, वह न तो पूरी तरह से संभव है न ही अपेक्षित है क्योंकि कक्षा में बच्चे जब प्रश्न पूछते हैं या पूछे गए प्रश्नों का जवाब देते हैं, तो उनकी भाषा इस तथाकथित Pure English या शुद्ध हिंदी से कोसों दूर होती है। यदि बच्चों को सीखने-सिखाने की प्रक्रिया से जोड़ना है और उन्हें अपने अनुभवों से आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करना है तो हम कक्षायी शिक्षण का माध्यम ऐसी भाषा को बनाएँ जो कई भाषाओं का एक मिश्रित रूप है और जिसमें मातृभाषा किसी मानक भाषा तक पहुँचने में सशक्त सेतु का काम करती है।

इस दिशा में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 में भाषा शिक्षण और भाषा के माध्यम से शिक्षण संबंधी जो सुझाव दिए गए हैं उन्हें समझने और तदनुसार प्रयोग में लाने की महती आवश्यकता है।

मिड-डे मील योजना के प्रति बेसिक शिक्षा परिषद् द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के दृष्टिकोण का अध्ययन

कमलेश कुमार चौधरी*

सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा के लक्ष्य की प्राप्ति हेतु मिड-डे मील योजना एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण कदम है, किंतु जिस तरह से इस योजना के संबंध में दैनिक समाचार पत्रों में संपादकीय एवं समाचार पढ़ने को मिलते हैं उससे इस योजना की व्यवस्था एवं क्रियान्वयन संबंधी कमियाँ उजागर होती हैं। प्रस्तुत अध्ययन एवं प्रयास है यह जानने का कि बेसिक शिक्षा परिषद्, उत्तर प्रदेश द्वारा संचालित विद्यालयों में कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षण इस योजना के विषय में क्या दृष्टिकोण रखते हैं।

भारत एक प्रजातांत्रिक देश है। किसी भी राष्ट्र में प्रजातंत्र की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि उस राष्ट्र के नागरिक कितने जागरूक हैं। नागरिकों की जागरूकता, राष्ट्र के साक्षरता-प्रतिशत एवं शिक्षा की गुणवत्ता पर निर्भर करती है। इसीलिए शिक्षा आयोग (1964-66) ने कहा है कि “भारत के भाग्य का निर्माण इस समय उसकी कक्षाओं में हो रहा है।... हमारे स्कूल और कॉलेजों से निकलने वाले विद्यार्थियों की योग्यता एवं संख्या पर ही राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के उस महत्त्वपूर्ण कार्य की

सफलता निर्भर करेगी, जिसका प्रमुख लक्ष्य हमारे रहन-सहन का स्तर ऊँचा उठाना है।” बघेला, माहेश्वरी एवं भोजक (1985) के अनुसार शिक्षा की महत्ता को देखते हुए ही “संविधान के अनुच्छेद 45 में निविष्ट निर्देशक तत्व की पूर्ति के संबंध में कहा गया है कि राज्य को 14 वर्ष तक के बच्चों की निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करने का प्रयास करना चाहिए।” भारत (2005) में उल्लिखित है कि “86वां संविधान संशोधन विधेयक 13 दिसंबर, 2003 को अधिसूचित हुआ था।

*उपाचार्य, शिक्षा विभाग, एम.जे.पी. रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली (उ.प्र.).

इसमें 6 से 14 वर्ष तक के सभी बच्चों को मौलिक अधिकार के रूप में प्राथमिक शिक्षा देने का प्रावधान है।” यह संवैधानिक व्यवस्था इसीलिए की गयी, जिससे कोई भी बालक शिक्षा प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाए।

निस्संदेह मानव के व्यक्तित्व के विकास एवं राष्ट्र की प्रगति में शिक्षा की महत्ता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। शिक्षा से अपेक्षा की जाती है कि इसके माध्यम से सुयोग्य एवं रचनाशील श्रमशक्ति युक्त मानव का सृजन होगा, जो राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय समस्याओं को समझने तथा उनके समाधान में योगदान देने में सक्षम होंगे। परंतु सन् 2001 की जनगणना (संदर्भ - भट्ट एवं भार्गव 2005) के अनुसार भारत की साक्षरता मात्र 65.38 प्रतिशत है। अतः स्पष्ट है कि देश के आजाद होने के लगभग 60 वर्ष बाद भी हम शत-प्रतिशत साक्षरता के लक्ष्य से काफी दूर हैं। यद्यपि प्राथमिक शिक्षा को बढ़ावा देने एवं उसमें गुणात्मक सुधार हेतु सरकार द्वारा समय-समय पर अनेक योजनाएं संचालित की गई हैं, यथा निरौपचारिक शिक्षा, शिक्षा गारंटी योजना, आपरेशन ब्लैक बोर्ड, सर्वशिक्षा अभियान, मीडिया प्रचार योजना, जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम तथा वर्तमान में संचालित एक अति महत्वाकांक्षी मिड-डे मील योजना।

मध्याह्न भोजन योजना संदर्शिका (2006) में मिड-डे मील योजना के संचालन के पीछे यह तर्क दिया गया है कि “उत्तर प्रदेश के परिषदीय प्राथमिक विद्यालयों में निम्न आयवर्गीय अभिभावकों के अधिकांश बच्चे शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। एक सर्वे के अनुसार आर्थिक रूप से कमजोर 60 प्रतिशत बच्चे प्रातःकाल बिना भोजन किए विद्यालयों

में पढ़ने आते हैं। इनमें से 15.3 प्रतिशत बच्चे स्कूली शिक्षा पूर्ण करने से पूर्व विद्यालय छोड़ देते हैं।” राज्य सरकार इस विषम समस्या के समाधान हेतु आर्थिक रूप से विपन्न बच्चों को न केवल छात्रवृत्ति देती है, अपितु परिषदीय विद्यालयों में अध्ययनरत् सभी बच्चों को निःशुल्क पाठ्यपुस्तकें भी उपलब्ध कराती है साथ ही बालिकाओं की शिक्षा को सुदृढ़ करने की दृष्टि से उन्हें ड्रेस दिए जाने का भी प्राविधान है। उक्त सुविधाएँ प्रदान किए जाने के पश्चात भी यह देखा गया है कि यदि बच्चे कुपोषण का शिकार हैं, तो उनकी शिक्षा ग्रहण करने की क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ऐसे बच्चे नियमित रूप से विद्यालय नहीं आते हैं, पढ़ाई पर ध्यान केंद्रित न कर पाने के कारण पिछड़ जाते हैं, परीक्षा में खराब परिणाम प्रदर्शित करते हैं तथा पढ़ाई पूरी करने से पूर्व ही विद्यालय छोड़ देते हैं।

अतः स्वस्थ एवं विकसित समाज की संकल्पना को साकार करने हेतु प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में मध्याह्न भोजन योजना, निस्संदेह एक अत्यंत महत्वाकांक्षी योजना है। यह योजना 1995 में प्रारंभ हुई थी। उस समय इस योजना के अंतर्गत प्रत्येक छात्र को प्रतिमाह तीन किलोग्राम गेहूँ या चावल दिया जाता था। बच्चों के स्वास्थ्य एवं उनकी कक्षा में उपस्थिति पर अपेक्षित प्रभाव न पड़ने के कारण ही माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने याचिका संख्या 196/2001 पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज बनाम यूनियन ऑफ इंडिया एवं अन्य के संबंध में, पका-पकाया भोजन विद्यार्थियों को उपलब्ध कराने का निर्देश दिया। माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश के अनुपालन में ही

उत्तर प्रदेश में 1 सितंबर, 2004 से पका-पकाया भोजन उपलब्ध कराने की व्यवस्था शुरू हुई। इस योजना से शिक्षा के सार्वभौमीकरण के निम्न लक्ष्यों की प्राप्ति की आशा की गई-

- प्राथमिक कक्षाओं में विद्यार्थियों के नामांकन में वृद्धि।
- विद्यार्थियों को स्कूल में पूरे समय रोके रखने तथा विद्यालय छोड़ने (ड्राप-आउट) की प्रवृत्ति में कमी।
- निर्बल आय-वर्ग के बच्चों में शिक्षा ग्रहण करने की क्षमता विकसित करना।
- विद्यार्थियों को पौष्टिक आहार प्रदान करना।
- विद्यालय में सभी जाति एवं धर्म के छात्र-छात्राओं को एक स्थान पर भोजन उपलब्ध कराकर उनके मध्य सामाजिक सौहार्द, एकता एवं परस्पर भाई-चारे की भावना जागृत करना।

निस्संदेह सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा के लक्ष्य की प्राप्ति हेतु मिड डे-मील योजना एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण कदम है, किंतु जिस तरह से इस योजना के संबंध में दैनिक समाचारपत्रों में संपादकीय एवं समाचार पढ़ने को मिलते हैं उससे इस योजना की व्यवस्था एवं क्रियान्वयन संबंधी कमियाँ उजागर होती हैं यथा -

“स्कूली बच्चों को नहीं मिल रहा मिड-डे मील, जाँच रिपोर्ट में खुलासा, 16 ग्राम प्रधानों को नोटिस” (दैनिक जागरण, बरेली संस्करण, 13 अगस्त, 2008, पृ. 7)।”

“बच्चों को नहीं बांटा दोपहर का भोजन” (दैनिक जागरण, बरेली संस्करण, 13 मई, 2008, पृ. 8)।

“मिड-डे मील न देने का आरोप” (अमर उजाला, बरेली संस्करण, 2 मई, 2008, पृ. 10)।

“माध्याह्न भोजन योजना — एक अच्छे मकसद का बुरा हथ” (दैनिक जागरण, बरेली संस्करण, 10 दिसंबर 2006, पृ. संपादकीय)।

कुशवाहा (2006) ‘बच्चे फिर भूखे’ सिंह (2007)।

“भूखे गणराज्य में जश्न कैसा? — कोई बच्चा बिना तालीम के न रहे, कोई हिंदुस्तानी भूखा प्यासा न मरे” नदीम (2006) “मुद्दा/प्राथमिक शिक्षा, कब होंगे कामयाब”

“कब्रिस्तान में स्कूल — मिड-डे मील की गुणवत्ता भी सुधरने का नाम नहीं ले रही” (दैनिक जागरण, बरेली संस्करण, 23 अप्रैल, 2008 पृ. 10)।

“शिक्षक और ग्राम प्रधानों की मिली। भगत के कारण प्रदेश के 11 मंडलों में बच्चों को खाना मीनू के अनुसार नहीं दिया जा रहा है।” (अमर उजाला, बरेली संस्करण, 29 नवंबर, 2006)।

“विद्यालयों में मिड-डे मील ठप” (दैनिक जागरण, बरेली संस्करण, 29 नवंबर, 2006)।

“मीनू के अनुसार मिड-डे मील न बनने की शिकायत की गई” (अमर उजाला, बरेली संस्करण, 8 दिसंबर, 2006)।

“हैडमास्टर गायब, मिड-डे मील में धांधली” (दैनिक जागरण, आगरा संस्करण, 29 मई, 2007)।

इन समाचारों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि इस महत्वाकांक्षी योजना के क्रियान्वयन में कहीं-न-कहीं कुछ खामियाँ हैं। अतः प्राथमिक शिक्षा की प्रक्रिया के महत्त्वपूर्ण अंग शिक्षक, जो इन्हीं विद्यालयों में कार्यरत हैं, उनका इस योजना के विभिन्न पहलुओं पर दृष्टिकोण कैसा है?

क्या पुरुष एवं महिला शिक्षकों के दृष्टिकोण में अंतर है अथवा नहीं? यह जानने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई। इसी जिज्ञासा की संतुष्टि हेतु प्रस्तुत अध्ययन किया जा रहा है।

अध्ययन विधि - प्रस्तुत अध्ययन में शोध की वर्णनात्मक विधि को अपनाया गया है। इस अध्ययन हेतु न्यादर्श के रूप में बेसिक शिक्षा परिषद् उत्तर प्रदेश द्वारा संचालित अम्बेडकर नगर एवं बरेली जनपद के प्राथमिक विद्यालयों में सत्र 2007-08 में कार्यरत कुल 358 शिक्षकों का चयन साद्देश्य न्यादर्शन विधि द्वारा किया गया है। इनमें 211 पुरुष एवं 147 महिला शिक्षक हैं। दत्त संकलन हेतु शोधकर्ता द्वारा निर्मित 'मिड-डे मील योजना-दृष्टिकोण मापनी' को प्रयोग में लाया गया है। इस मापनी में कुल 31 कथन हैं। इन कथनों का उत्तर उनके सम्मुख सहमत/असहमत के नीचे बने खानों में सही (\checkmark) का चिह्न लगा कर देना था। प्रदत्तों से निष्कर्ष निकालने हेतु प्रतिशत एवं χ^2 की गणना की गई है। χ^2 की गणना प्रत्येक कथन पर सहमत/असहमत शिक्षकों की संख्या के आधार पर की गई है।

अध्ययन के उद्देश्य

- (क) मिड-डे मील योजना की व्यवस्था के प्रति बेसिक शिक्षा परिषद्, उत्तर प्रदेश द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के दृष्टिकोण की जानकारी प्राप्त करना।
- (ख) मिड-डे मील योजना की व्यवस्था के संबंध में बेसिक शिक्षा परिषद्, उत्तर प्रदेश द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत

पुरुष एवं महिला शिक्षकों के दृष्टिकोण का अध्ययन करना।

- (ग) मिड-डे मील योजना की प्रभावशीलता के संबंध में बेसिक शिक्षा परिषद्, उत्तर प्रदेश द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के दृष्टिकोण की जानकारी प्राप्त करना।
- (घ) मिड-डे मील योजना की प्रभावशीलता के प्रति बेसिक शिक्षा परिषद्, उत्तर प्रदेश द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों के दृष्टिकोण का अध्ययन करना।

परिकल्पना

- (1) मिड-डे मील योजना की व्यवस्था के संबंध में बेसिक शिक्षा परिषद्, उत्तर प्रदेश द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों के दृष्टिकोण में अंतर नहीं है।
- (2) मिड-डे मील योजना की प्रभावशीलता के संबंध में बेसिक शिक्षा परिषद्, उत्तर प्रदेश द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों के दृष्टिकोण में अंतर नहीं है।

तालिका 1 के अवलोकन से विदित होता है कि 18 कथनों में से मात्र 2 कथनों, कथन संख्या 17 मिड-डे मील पकाने व पीने हेतु स्वच्छ पानी उपलब्ध है एवं कथन संख्या 15 भोजन पकाने के स्थान पर साफ़-सफ़ाई का ध्यान रखा जाता है, पर 80% से अधिक शिक्षक सहमत पाए गए। 18 कथनों में से मात्र तीन

तालिका 1
बेसिक शिक्षा परिषद्, उत्तर प्रदेश द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों का
मिड-डे मील योजना की व्यवस्था के प्रति दृष्टिकोण का विवरण

क्र.सं.	कथन	शिक्षकों की संख्या (358)			
		सहमत	%	असहमत	%
1.	मिड-डे मील योजना द्वारा विद्यार्थियों को पौष्टिक भोजन उपलब्ध कराया जा रहा है।	227	63.41	131	36.59
2.	मिड-डे मील योजना में उपलब्ध कराया जा रहा खाद्यान्न उच्च गुणवत्ता का है।	187	52.23	171	47.77
3.	मिड-डे मील योजना के अंतर्गत भोजन मीनू के अनुरूप उपलब्ध कराया जा रहा है।	278	77.65	80	23.35
4.	प्रति विद्यार्थी 2 रुपए कन्वर्जन कास्ट में पौष्टिक भोजन उपलब्ध कराया जाना संभव है।	193	53.91	165	46.09
5.	मिड-डे मील हेतु प्रदत्त धनराशि का दुरुपयोग ग्राम शिक्षा समिति/वार्ड शिक्षा समिति द्वारा किया जाता है।	183	51.12	175	48.88
6.	मिड-डे मील हेतु रसोइया SC/ST या निर्बल वर्ग का है।	211	58.94	147	41.06
7.	मिड-डे मील के बर्तनों को विद्यालय में सुरक्षित रखना कठिन है।	223	62.29	135	31.37
8.	मिड-डे मील बनाने में अभिभावक भी हस्तक्षेप करते हैं।	123	34.36	235	65.64
9.	अधिकांश बच्चे मिड-डे मील के समय ही विद्यालय आते हैं।	148	41.34	210	58.66
10.	मिड-डे मील में विद्यार्थियों को पर्याप्त भोजन मिल पा रहा है।	233	65.08	125	34.92
11.	मिड-डे मील नियमित रूप से उपलब्ध कराया जाता है।	274	76.54	84	23.46
12.	मिड-डे मील हेतु शासन द्वारा नियमित रूप से धनराशि उपलब्ध कराई जाती है।	239	66.76	119	33.24
13.	बालक स्वच्छता के साथ मिड-डे मील ग्रहण करते हैं।	228	63.69	130	36.31
14.	विद्यार्थियों को समय पर मिड-डे मील उपलब्ध करवाना टेढ़ी खीर है।	145	40.51	213	59.49
15.	भोजन बनाने के स्थान पर सफाई का ध्यान रखा जाता है।	287	80.17	71	19.83
16.	भोजन पकाने हेतु उचित स्थान उपलब्ध है।	271	75.70	87	24.30
17.	मिड-डे मील पकाने व पीने हेतु स्वच्छ पानी उपलब्ध है।	311	86.87	47	13.13
18.	भोजन पकाने के स्थान पर सुरक्षा मानकों का पालन किया जाता है।	230	64.25	128	35.75

कथन, कथन सँख्या-3, 11 एवं 16 क्रमशः मिड-डे मील योजना के अंतर्गत भोजन मीनू के अनुसार उपलब्ध कराया जाता है, मिड-डे मील नियमित रूप से उपलब्ध कराया जाता है तथा भोजन पकाने हेतु उचित स्थान उपलब्ध है, से लगभग तीन-चौथाई शिक्षक सहमत पाए गए। कथन सँख्या - 1, 7, 10, 12, 13 एवं 18 क्रमशः विद्यार्थियों को पौष्टिक भोजन उपलब्ध कराया जा रहा है, मिड-डे मील के बर्तनों को विद्यालय में सुरक्षित रखना कठिन है, विद्यार्थियों को पर्याप्त भोजन मिल पा रहा है, मिड-डे मील हेतु शासन द्वारा नियमित रूप से धनराशि उपलब्ध कराया जाता है, बालक स्वच्छता के साथ मिड-डे मील ग्रहण करते हैं तथा भोजन पकाने के स्थान पर सुरक्षा मानकों का प्रयोग किया जाता है। पर 60 से 70 प्रतिशत के मध्य शिक्षक सहमत पाए गए। कथन सँख्या — 2, 4, 5 एवं 6 क्रमशः मिड-डे मील योजना में उपलब्ध कराया जा रहा भोजन उच्च गुणवत्ता का है, प्रति छात्र 2 रुपया कन्वर्जन कास्ट में पौष्टिक भोजन उपलब्ध कराया जाना संभव है, मिड-डे मील हेतु प्रदत्त धनराशि का दुरुपयोग ग्राम शिक्षा समिति/वार्ड समिति द्वारा किया जाता है तथा मिड-डे मील हेतु रसोइया SC&ST या निर्बल वर्ग का है, पर 50 से 60% शिक्षक ही सहमत पाए गए। कथन सँख्या 9 अधिकांश बच्चे मिड-डे मील के समय ही विद्यालय आते हैं तथा कथन सँख्या 14, विद्यार्थियों को समय पर मिड-डे मील उपलब्ध कराना टेढ़ी खीर है, से लगभग 40% शिक्षक सहमत थे। लगभग 35% शिक्षकों ने यह माना कि मिड-डे मील बनाने में अभिभावक हस्तक्षेप करते हैं।

तालिका 2 में मिड-डे मील की व्यवस्था से संबंधित कथनों पर बेसिक शिक्षा परिषद् उत्तर प्रदेश द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों के दृष्टिकोण को प्रदर्शित किया गया है। तालिका का अवलोकन करने पर विदित होता है कि कथन सँख्या 9 व 10 के अतिरिक्त अन्य किसी भी कथन पर पुरुष एवं महिला शिक्षकों के दृष्टिकोण में सार्थक अंतर नहीं था। कथन सँख्या 9 अधिकांश बच्चे मिड-डे मील के समय ही विद्यालय आते हैं, से 77 (36.49%) पुरुष शिक्षक तथा 71 (48.30%) महिला शिक्षक सहमत थे। इस कथन पर पुरुष एवं महिला शिक्षकों के मध्य ज्ञात χ^2 का मान 4.98 पाया गया। कथन सँख्या 10 मिड-डे मील में विद्यार्थियों को पर्याप्त भोजन मिल पा रहा है, से 128 (60.66%) पुरुष शिक्षक तथा 105 (71.43%) महिला शिक्षक सहमत पाई गई। इस कथन पर ज्ञात χ^2 मान 4.42 पाया गया। इन दोनों कथनों पर ज्ञात χ^2 मान 1 df पर 0.05 स्तर पर सार्थक है। अतः 18 कथनों में से मात्र इन दो कथनों के संबंध में शून्य परिकल्पना अस्वीकार की गई। इससे यह निष्कर्ष निकला कि इन दोनों कथनों पर पुरुष एवं महिला शिक्षकों के दृष्टिकोण में सार्थक अंतर है। पुरुष शिक्षकों की तुलना में सार्थक रूप से अधिक महिला शिक्षक इस बात से सहमत पाई गई कि अधिकांश बच्चे मिड-डे मील के समय विद्यालय आते हैं तथा मिड-डे मील में विद्यार्थियों को पर्याप्त भोजन मिल पा रहा है।

तालिका 2
बेसिक शिक्षा परिषद्, उत्तर प्रदेश द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों का मिड-डे मील योजना की व्यवस्था के प्रति दृष्टिकोण का विवरण

क्र.सं.	कथन	पुरुष-शिक्षक (211)			महिला-शिक्षक (147)			χ^2		
		सहमत	प्रतिशत	असहमत	प्रतिशत	सहमत	प्रतिशत			
1.	मिड-डे मील योजना द्वारा विद्यार्थियों को पौष्टिक भोजन उपलब्ध कराया जा रहा है।	128	60.66	83	39.34	99	67.35	48	32.65	1.66
2.	मिड-डे मील योजना में उपलब्ध कराया जा रहा खद्यान उच्च गुणवत्ता का है।	102	48.34	109	51.66	85	57.82	62	42.18	2.58
3.	मिड-डे मील योजना के अंतर्गत भोजन मीनू के अनुरूप उपलब्ध कराया जा रहा है।	168	79.62	43	20.38	110	74.83	37	25.17	1.15
4.	प्रति विद्यार्थी 2 रुपये कन्वर्जन कास्ट में पौष्टिक भोजन उपलब्ध कराया जाना संभव है।	106	50.24	105	49.76	87	59.18	60	40.82	2.80
5.	मिड-डे मील हेतु प्रदत्त धनराशि का दुरुपयोग ग्राम शिक्षा समिति/वार्ड शिक्षा समिति द्वारा किया जाता है।	108	51.18	103	48.82	75	51.02	72	48.98	0.02
6.	मिड-डे मील हेतु ससेइया SC&ST या निर्बल वर्ग का है।	122	57.82	89	42.18	89	60.54	58	39.46	0.87
7.	मिड-डे मील के बर्तनों को विद्यालय में सुरक्षित रखना कठिन है।	135	63.98	76	36.02	88	59.86	59	41.14	0.63
8.	मिड-डे मील बनाने में अभिभावक भी हस्तक्षेप करते हैं।	69	32.70	142	63.30	54	36.73	93	63.27	0.63
9.	अधिकांश बच्चे मिड-डे मील के समय ही विद्यालय आते हैं।	77	36.49	134	63.51	71	48.30	76	51.70	4.98*

10.	मिड-डे मील में विद्यार्थियों को पर्याप्त भोजन मिल पा रहा है।	128	60.66	83	39.34	105	71.43	42	28.57	4.42*
11.	मिड-डे मील नियमित रूप से उपलब्ध कराया जाता है।	154	72.99	57	27.01	120	81.63	27	18.37	3.61
12.	मिड-डे मील हेतु शासन द्वारा नियमित रूप से धनराशि उपलब्ध कराई जाती है।	141	66.82	70	33.18	98	66.67	49	33.33	0.08
13.	बालक स्वच्छता के साथ मिड-डे मील ग्रहण करते हैं।	134	63.51	77	36.49	94	63.95	53	36.05	0.01
14.	विद्यार्थियों को समय पर मिड-डे मील उपलब्ध करवाना टेढ़ी खीर है।	79	37.44	132	62.56	66	44.90	81	55.10	1.98
15.	भोजन बनाने के स्थान पर सफ़ाई का ध्यान रखा जाता है।	169	80.09	42	19.91	118	80.27	29	19.73	0.01
16.	भोजन पकाने हेतु उचित स्थान उपलब्ध है।	160	75.83	51	24.17	111	75.51	36	24.49	0.01
17.	मिड-डे मील पकाने व पीने हेतु स्वच्छ पानी उपलब्ध है।	181	85.78	30	14.22	130	88.44	17	11.56	0.53
18.	भोजन पकाने के स्थान पर सुरक्षा मानकों का पालन किया जाता है।	135	63.98	76	36.01	95	64.63	52	35.37	0.02

* χ^2 मान 0.05 स्तर पर सार्थक।

तालिका 3
बेसिक शिक्षा परिषद्, उत्तर प्रदेश द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों का मिड-डे मील योजना की व्यवस्था के प्रति दृष्टिकोण का विवरण

क्र.सं.	कथन	शिक्षकों की संख्या (358)			
		सहमत	%	असहमत	%
1.	मिड-डे मील से विद्यालयों में विद्यार्थियों की उपस्थिति बढ़ी है।	298	83.24	60	16.76
2.	मिड-डे मील से विद्यार्थियों के स्वास्थ्य में सुधार हुआ है।	184	51.40	174	48.60
3.	मिड-डे मील से अपव्यय की समस्या का समाधान हुआ है।	163	45.53	195	54.47
4.	मिड-डे मील से प्राथमिक विद्यालयों में प्रवेश हेतु जागरूकता बढ़ी है।	261	72.90	97	27.10
5.	मिड-डे मील से बच्चों के कुपोषण में कमी आई है।	175	48.88	183	51.12
6.	यह योजना लागू होने से प्राथमिक विद्यालयों में नामांकन बढ़ा है।	256	71.51	102	28.49
7.	मिड-डे मील योजना विद्यार्थियों के शैक्षिक स्तर को ऊँचा उठाने में सफल हुई है।	137	38.27	221	61.73
8.	मिड-डे मील योजना निर्बल आय वर्ग के बच्चों को शिक्षा ग्रहण करने हेतु प्रेरित करने में सफल रही है।	289	80.73	69	19.27
9.	मिड-डे मील देने से विद्यार्थी मन लगाकर शिक्षा ग्रहण करते हैं।	179	50.00	179	50.00
10.	मिड-डे मील के कारण अध्यापन कार्य में बाधा उत्पन्न होती है।	232	64.80	126	35.20
11.	मिड-डे मील योजना विद्यार्थियों में सामाजिक सौहार्द की भावना विकसित कर पा रही है।	237	66.20	121	33.80
12.	मिड-डे मील योजना शिक्षकों के लिए एक भारित योजना है।	207	57.82	151	42.18
13.	मिड-डे मील योजना को और व्यवस्थित बनाकर विद्यार्थियों को आकर्षित करना चाहिए।	290	81.01	68	18.99

तालिका 3 में मिड-डे मील की प्रभावशालिता के संबंध में शिक्षकों के दृष्टिकोण को प्रदर्शित किया गया है। इस तालिका पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि कथन संख्या 1, 8 एवं 13 क्रमशः मिड-डे मील से विद्यार्थियों की उपस्थिति बढ़ी है, मिड-डे मील योजना निर्बल आय वर्ग के बच्चों को शिक्षा ग्रहण करने हेतु प्रेरित करने में सफल रही है तथा मिड-डे मील योजना को और व्यवस्थित बनाकर, विद्यार्थियों को आकर्षित करना चाहिए से, इन विद्यालयों में कार्यरत लगभग 80% शिक्षकों ने अपनी सहमति जतायी है। मिड-डे मील से प्राथमिक विद्यालयों में प्रवेश हेतु जागरूकता बढ़ी है (कथन-4) तथा मिड-डे मील योजना के लागू होने से प्राथमिक विद्यालयों में नामांकन बढ़ा है (कथन-6) से 70% से अधिक शिक्षक सहमत पाए गए। मिड-डे मील योजना विद्यार्थियों में सामाजिक सौहार्द की भावना विकसित कर पा रही है (कथन-11), से लगभग 66% शिक्षक सहमत पाए गए। मिड-डे मील से अध्यापन कार्य में बाधा उत्पन्न होती है (कथन-10) तथा मिड-डे मील योजना शिक्षकों के लिए एक भारित योजना है (कथन-12) से लगभग 60% शिक्षक सहमत पाए गए तथा मात्र 38% शिक्षकों ने ही यह स्वीकार किया कि मिड-डे मील योजना विद्यार्थियों के शैक्षिक स्तर को ऊँचा उठाने में सफल रही है। शिक्षकों का यह दृष्टिकोण इस योजना के लिए शुभ नहीं कहा जा सकता। मिड-डे मील देने से विद्यार्थी मन लगाकर शिक्षा ग्रहण करते हैं (कथन-9) पर लगभग 50% शिक्षकों ने ही अपनी सहमति व्यक्त की है। मिड-डे मील से बच्चों के कुपोषण में कमी आई है (कथन-5)

तथा मिड-डे मील से अपव्यय की समस्या का समाधान हुआ है (कथन-3) से, 50% से कम शिक्षक सहमत पाए गए।

तालिका 4 में मिड-डे मील की प्रभावशालिता संबंधी आयाम के विभिन्न कथनों पर बेसिक शिक्षा परिषद्, उत्तर प्रदेश द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों के दृष्टिकोण को दर्शाया गया है। इस तालिका पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि कथन संख्या -3, मिड-डे मील से अपव्यय की समस्या का समाधान हुआ है, से 211 पुरुष शिक्षकों में से 86 (40.76%) शिक्षक तथा 147 महिला शिक्षकों में 77 (52.38%) शिक्षिकाएँ सहमत थीं। इन दोनों समूहों के मध्य χ^2 मान 4.72 पाया गया। यह मान 1 df पर 0.05 स्तर पर सार्थक पाया गया। अन्य कथनों पर प्राप्त χ^2 मान 0.05 स्तर पर सार्थक नहीं थे। अतः मात्र इस कथन के संबंध में शून्य परिकल्पना अस्वीकार कर दी गई। इससे यह निष्कर्ष निकला कि इस कथन पर पुरुष एवं महिला शिक्षकों के दृष्टिकोण में अंतर था। महिला शिक्षकों का दृष्टिकोण, पुरुष शिक्षकों की अपेक्षा इस कथन के संबंध में अधिक सकारात्मक पाया गया।

निष्कर्ष

- मिड-डे मील योजना के व्यवस्था संबंधी आयाम के 18 कथनों में से मात्र 5 कथन पर ही सर्वाधिक तीन-चौथाई शिक्षक सहमत पाए गए।
- रसोइया के SC&ST अथवा निर्बल वर्ग

तालिका 4
बेसिक शिक्षा परिषद्, उत्तर प्रदेश द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों का मिड-डे मील योजना की प्रभावशीलता के प्रति दृष्टिकोण का विवरण

क्र. सं.	कथन	पुरुष-शिक्षक (211)		महिला-शिक्षक (147)		χ^2				
		सहमत	%	सहमत	%					
1.	मिड-डे मील से विद्यालयों में विद्यार्थियों की उपस्थिति बढ़ी है।	172	81.52	126	85.71	21	14.29	1.03		
2.	मिड-डे मील से विद्यार्थियों के स्वास्थ्य में सुधार हुआ है।	101	47.87	110	52.13	83	56.46	64	43.54	2.30
3.	मिड-डे मील से अपव्यय की समस्या का समाधान हुआ है।	86	40.76	125	59.24	77	52.38	70	47.62	4.72*
4.	मिड-डे मील से प्राथमिक विद्यालयों में प्रवेश हेतु जागरूकता बढ़ी है।	155	73.46	56	26.54	106	72.11	41	27.89	0.16
5.	मिड-डे मील से बच्चों के कुपोषण में कमी आई है।	97	45.97	114	54.03	78	53.06	69	46.94	1.74
6.	यह योजना लागू होने से प्राथमिक विद्यालयों में नामांकन बढ़ा है।	150	71.09	61	28.91	106	72.11	41	27.89	0.04
7.	मिड-डे मील योजना विद्यार्थियों के शैक्षिक स्तर को ऊँचा उठाने में सफल हुई है।	79	33.44	132	62.56	58	39.46	89	60.54	0.14
8.	मिड-डे मील योजना निर्बल आय वर्ग के बच्चों को शिक्षा ग्रहण करने हेतु प्रेरित करने में सफल रही है।	165	78.20	46	21.80	124	84.35	23	15.65	2.11
9.	मिड-डे मील देने से विद्यार्थी मन लगाकर पढ़ते हैं।	97	45.97	114	54.03	82	55.78	65	44.22	3.32
10.	मिड-डे मील के कारण अध्यापन कार्य में बाधा उत्पन्न होती है।	135	63.99	76	36.01	97	65.99	50	34.01	0.15
11.	मिड-डे मील योजना विद्यार्थियों में सामाजिक सौहार्द की भावना विकसित कर पा रही है।	137	64.93	74	35.07	100	68.03	47	31.97	0.36
12.	मिड-डे मील योजना शिक्षकों के लिए एक भारित योजना है।	128	60.66	83	39.34	79	53.74	68	46.26	1.70
13.	मिड-डे मील योजना को और व्यवस्थित बनाकर विद्यार्थियों को आकर्षित करना चाहिए।	177	83.89	34	16.11	113	76.87	34	23.13	2.77

* χ^2 मान 0.05 स्तर पर सार्थक

के होने का उल्लेख मध्याह्न भोजन संदर्शिका में किया गया है, इन शिक्षकों के विद्यालय में रसोइया उक्त वर्ग से है, इस महत्त्वपूर्ण कथन पर भी लगभग 60% शिक्षकों ने ही अपनी सहमति व्यक्त की।

- 2 रुपये प्रति छात्र कन्वर्जन कास्ट में पौष्टिक भोजन उपलब्ध कराए जाने से भी लगभग आधे शिक्षक ही सहमत थे। मिड-डे मील हेतु प्रदत्त धनराशि का ग्राम शिक्षा समिति/वार्ड समिति द्वारा दुरुपयोग किए जाने की बात से लगभग आधे शिक्षकों ने सहमति व्यक्त की।
- लगभग 40% शिक्षकों ने यह स्वीकार किया कि अधिकांश बच्चे मिड-डे मील के समय ही विद्यालय आते हैं और विद्यार्थियों को समय से भोजन उपलब्ध कराना टेढ़ी खीर है।
- मिड-डे मील से विद्यालयों में विद्यार्थियों की उपस्थिति बढ़ी है, नामांकन बढ़ा है तथा निर्बल वर्ग के बच्चे शिक्षा ग्रहण करने हेतु प्रेरित हुए हैं, से लगभग 80% शिक्षक सहमत थे।
- मिड-डे मील देने से विद्यार्थियों के मन लगाकर पढ़ने, इनके कुपोषण में कमी, स्वास्थ्य में सुधार होने एवं शैक्षिक स्तर ऊँचा उठाने में सफलता तथा अपव्यय की समस्या के समाधान संबंधी कथन से लगभग आधे शिक्षक ही सहमत पाए गए।
- कुल 31 कथनों में से मात्र तीन कथन पर ही पुरुष एवं महिला शिक्षकों के

दृष्टिकोण में सार्थक अंतर पाया गया। इन कथनों जैसे-अधिकांश बच्चे मिड-डे मील के समय ही विद्यालय आते हैं, मिड-डे मील में विद्यार्थियों को पर्याप्त भोजन मिल पा रहा है तथा मिड-डे मील से अपव्यय की समस्या का समाधान हुआ है, पर पुरुष शिक्षकों की अपेक्षा महिला शिक्षक सार्थक रूप से अधिक सहमत पाई गई।

सुझाव

अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि मिड-डे मील योजना की व्यवस्था एवं प्रभावशालिता के संबंध में बेसिक शिक्षा परिषद, उत्तर प्रदेश द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों के दृष्टिकोण में अंतर नहीं था। यह योजना, पूरी तरह से इन शिक्षकों की आकांक्षा के अनुरूप संचालित नहीं हो पा रही है, तथापि 80% से अधिक शिक्षकों ने इस बात से अपनी सहमति व्यक्त की कि मिड-डे मील योजना से विद्यालयों में विद्यार्थियों की उपस्थिति बढ़ी है, मिड-डे मील योजना निर्बल आय वर्ग के बच्चों को शिक्षा ग्रहण करने हेतु प्रेरित करने में सफल रही है तथा मिड-डे मील योजना को और अधिक व्यवस्थित बनाकर विद्यार्थियों को शिक्षा ग्रहण करने हेतु आकर्षित करना चाहिए। अतः सरकार/शासन तंत्र से जुड़े लोगों को इन प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों से इस योजना की व्यवस्था एवं सफल संचालन में आने वाली कठिनाइयों के संबंध में बात करनी चाहिए तथा

उनके सुझावों को दृष्टिगत रखते हुए इस योजना को और प्रभावी बनाने का प्रयास करना चाहिए। साथ ही इन शिक्षकों को परिचर्चा/संगोष्ठी इत्यादि के माध्यम से इस महत्वाकांक्षी योजना के सामाजिक एवं शैक्षिक सरोकार से परिचित कराने एवं इस योजना में उनकी महती भागीदारी निभाने हेतु सकारात्मक दृष्टिकोण के विकास का प्रयास किया जाना भी वांछनीय प्रतीत होता है। तभी इन योजना के सफल संचालन में इन शिक्षकों का मन से सहयोग प्राप्त हो सकेगा तथा योजना के महत्वाकांक्षी लक्ष्य की प्राप्ति पूरी तरह से संभव हो सकेगी।

संदर्भ

- बघेला, एच.एस., पी. एन. माहेश्वरी, एण्ड बी.एल. भोजक 1985. *शिक्षा तथा भारतीय समाज*, हर प्रसाद भार्गव, आगरा, पृ. 40
- भारत सरकार, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, 2005. नयी दिल्ली पृ. 208
- भट्ट, एस. सी. एन्ड भागवत, जी. के. 2005. *लैन्ड एन्ड पीपल*, कल्पाज पब्लिकेशन, दिल्ली, पृ. 36
- कुशवाहा, सुभाष चन्द्र, 2006 *बच्चे फिर भूखें हैं, अमर उजाला*, मेरठ संस्करण, 20 दिसंबर, पृ. संपादकीय उत्तर प्रदेश, बेसिक शिक्षा विभाग, 2006. *मध्याह्न भोजन संदर्शिका* पृ. 6
- नदीम, 'मुद्दा/प्राथमिक शिक्षा, कब होंगे कामयाब', 2006 *दैनिक जागरण*, बरेली संस्करण, 6 अगस्त, पृ. 9
- सिंह, चन्द्रशेखर, 2007. *भूखे गणराज्य में जश्न कैसा? अमर उजाला*, मेरठ संस्करण, पृ. 16
- भारत सरकार, *शिक्षा आयोग की रिपोर्ट*, 1966. शिक्षा मंत्रालय, नयी दिल्ली, पृ. 1
- हॉज, के. एवं जे. जे. क्लिन, अन्य 1997. *लाईफ इवेन्ट्स अर्केरिंग इन फैमिलिज ऑफ चिल्ड्रेन विद रिक्वैरेंट ऐबडॉमिनल पेन*, जर्नल ऑफ साइकोमेट्रिक रिसर्च, अंक 28, पृ. 185-188
- स्मिथ, एल. एवं के. ई. सिंकलेयर, 1998. *स्ट्रेस एंड लर्निंग इन दि हायर स्कूल सर्टिफिकेट। रिट्रिब्व ऑन 06/06/2008 फ्रॉम डब्ल्यू. डब्ल्यू. डब्ल्यू. एजुकेशन.निक.इन*

उच्च शिक्षा की भारतीय परंपरा – एक दृष्टि

आनन्द प्रकाश पाण्डेय*

प्राचीनकाल से ही भारतवर्ष में उच्च शिक्षा की एक सुदृढ़ व्यवस्था रही है परंतु उसके स्वरूप में समय के साथ बदलाव आते रहे हैं। वैदिक काल में गुरुकुल, परिषदें, और तपोभूमि उच्च शिक्षा के केंद्र थे जहाँ अमीर और गरीब एक साथ शिक्षा प्राप्त करते थे। उच्च शिक्षा का प्रसार बौद्ध युग में भी बना रहा। गुरुकुल और आश्रम व्यवस्था के साथ-साथ उस काल में मठों, विहारों और विश्वविद्यालयों का निर्माण हुआ जहाँ देश विदेशों से हजारों विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने आते थे। सातवीं और आठवीं शताब्दी में भी कई विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई। यह क्रम आगे भी जारी रहा। अंग्रेजों के आगमन के बाद अंग्रेज शासकों द्वारा कई उच्च शिक्षा संस्थान खोले गए। परंतु धीरे-धीरे इन संस्थानों में भारतीयता लुप्त होने लगी और शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होता गया। आजादी के बाद विश्वविद्यालयों व उच्च-शिक्षा संस्थानों में बहुत वृद्धि हुई है परंतु उनकी गुणवत्ता पर प्रश्नचिह्न लगा हुआ है। उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम, उपयोगिता व उपलब्धता को लेकर भी सवाल उठते रहे हैं। आज भारतवर्ष में प्रचलित उच्चशिक्षा व्यवस्था पर गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है।

मानव सभ्यता और सामाजिक विकास, मानवीय बुद्धि से गहरे से जुड़ा है। हर मनुष्य में कुछ-न-कुछ बुद्धि होती है। शिक्षा द्वारा मनुष्य की प्रकृति, उसकी सामर्थ्य, उसकी संभावनाओं, उसकी बुद्धि और विवेक को बेहतर बनाया जा सकता है। शिक्षा वस्तुतः प्रकृति प्रदत्त स्वरूप में परिवर्तन लाने का ही नाम है। इसलिए शिक्षा न केवल वैयक्तिक, सामाजिक और राष्ट्रीय प्रगति के लिए आवश्यक है अपितु सभ्यता और संस्कृति के विकास के लिए भी अनिवार्य है। जिन देशों ने अपने यहाँ बेहतर शिक्षा व्यवस्था बनाई है उन देशों में काफी ऊँचे दरजे का विकास हो रहा है।

*सहायक निदेशक (उ.शि.), उ.प्र. इलाहाबाद.

प्राचीन भारत में शिक्षा, गुरु परंपरा के रूप में मान्य थी। शिष्य गुरु के सानिध्य में रहकर शिक्षा ग्रहण करता था। शिक्षा व्यवस्था पूर्णतया स्वतंत्र थी। किसी शासन के परितंत्र नहीं थी। वैदिक ऋषियों के आश्रम शिक्षा के मुख्य केंद्र थे। प्रत्येक आश्रम एक विश्वविद्यालय की भाँति कार्य करता था। आश्रम की जीवन पद्धति ऋत् (नैतिक कार्य) से संचालित होती थी। विद्यार्थी उपनयन संस्कार के पश्चात आश्रमों में प्रवेश लेते थे और उन्हें द्विज कहा जाता था। शिष्य गुरु के घर या आश्रम में निवास करते थे। गुरु-शिष्य का संबंध पिता-पुत्र सा था। सामान्यतः विद्या अवधि 12 वर्ष थी। किंतु कुछ शिष्य सत्य की खोज में आजीवन अध्ययनरत रहते थे जिन्हें नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहा जाता था। प्रशिक्षण, श्रवण, मनन और निदिध्यासन के माध्यम से दिया जाता था। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य आत्मज्ञान था। किंतु इसके अतिरिक्त तीन अन्य उद्देश्य भी थे - (1) धर्म-कर्तव्यों का पालन (2) अर्थ-भौतिक संपन्ना की प्राप्ति (3) काम-विधि सम्मत सुख।

प्राचीन भारतीय शिक्षा परंपरा की एक अन्य प्रमुख विशेषता यह थी कि उसमें गुरु के प्रति प्रचुर श्रद्धा और भक्ति थी। गुरु का स्थान सर्वोच्च था। समाज में उसे अत्यधिक आदर प्राप्त था। शाब्दिक दृष्टिकोण से भी गुरु उसे कहा जाता है जो गौरव और सम्मान के योग्य हो। एक अन्य व्याख्या के अनुसार 'गु' का अर्थ है अंधकार और 'रु' का अर्थ है अंधकार को दूर करने वाला। इस प्रकार गुरु का अर्थ हुआ अज्ञानता के अंधकार को दूर करना। गुरु ही अंधकार से प्रकाश तक का मार्गदर्शन करता है। प्राचीन ग्रंथों से ज्ञात होता है

कि विद्यार्थियों के शिक्षण काल में ईश्वर के तीनों स्वरूप उन्हें गुरु के नामरूप में दिखाई पड़ते हैं। गुरु ही परमब्रह्म है। गुरु में ही वह शक्ति है जो शिष्य के भाग्य को बदल सकता है।

**गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात् पर ब्रह्म, तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥**

वैदिक काल में तीन प्रकार के शिक्षा केंद्र कार्य कर रहे थे — (1) गुरुकुल - यह आधुनिक विश्वविद्यालय की भाँति कार्य करता था। (2) परिषद्— इसमें प्रतिष्ठित व्यक्तियों एवं विषय विशेषज्ञों द्वारा प्रशिक्षण दिया जाता था। (3) तपोभूमि— इन स्थलों पर उच्च कोटि के विद्वानों द्वारा गोष्ठियाँ आयोजित की जाती थीं। जिसमें धार्मिक एवं दार्शनिक समस्याओं पर विचार-विमर्श किया जाता था। तत् समय नैमिषारण्य तपोभूमि सबसे अधिक प्रतिष्ठित था। गुरुकुल-आश्रमों के प्रधान को कुलपति कहा जाता था। रामायणकाल में सबसे महत्त्वपूर्ण कुलपति ऋषि वशिष्ठ हुए जिनके आश्रम में दस हजार छात्र अध्ययन करते थे। प्रयाग के ऋषि भारद्वाज का आश्रम भी उस समय शिक्षा का प्रमुख केंद्र था। महाभारतकाल में भी आश्रम विद्या के प्रमुख केंद्र थे। ऋषि कण्व के आश्रम की ख्याति दूर-दूर तक फैली थी। कण्व, आश्रम के कुलपति थे। ऋषि व्यास का आश्रम भी बहुत वृहत था और लगभग 10 हजार विद्यार्थी वहाँ अध्ययन करते थे। यह गंगा नदी के पार हिमालय की तलहटी में स्थित था। परशुराम का आश्रम महेन्द्र पर्वत पर था।

अवंती में स्थित संदीपन का आश्रम भी तत् समय का प्रमुख केंद्र था। श्रीकृष्ण, बलराम और सुदामा वहाँ के छात्र थे। इसी समय नेमिषारण्य भी

ज्ञान का प्रमुख केंद्र था जिसके कुलपति शौनक थे। स्कन्दपुराण के अनुसार यहाँ पर छः हजार ऋषि एवं कई हजार विद्यार्थी निवास करते थे। इन गुरुकुलों के अतिरिक्त भी बहुत से छोटे-छोटे गुरुकुल थे, जिनमें आचार्य शिष्यों को अपने निवास स्थान पर पढ़ाया करते थे। अमीरों और गरीबों के लिए ज्ञानार्जन का मार्ग सदैव खुला था। संदीपन के आश्रम में सुदामा जैसे निर्धन और श्रीकृष्ण जैसे ऐश्वर्यसंपन्न व्यक्ति शिक्षा ग्रहण करते थे तथा मुनि भारद्वाज के आश्रम में द्रोण जैसे निर्धन ब्राह्मण और द्रुपद जैसे ऐश्वर्ययुक्त राजकुमार शिक्षा प्राप्त करते थे। शिक्षा का मूल उद्देश्य ज्ञान की प्राप्ति और अज्ञान की निवृत्ति था। भारतीय शास्त्रों में कहा गया है कि दुष्टजनों की विद्या विवाद के लिए होती है। उनका धन मद, विलासिता और स्वार्थपूर्ति के लिए होता है तथा उनकी शक्ति शोषण एवं उत्पीड़न के लिए होती है। परंतु साधु पुरुषों की विद्या ज्ञान के लिए, धन दान के लिए और शक्ति आर्त प्राणियों की रक्षा करने के लिए होती है।

**विद्या विवादाय धनं मदाय,
शक्ति परेषां परिपीडनाय ।
खलस्य साधोर्विपरीतमेतद्
ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय ।**

(गुणरत्न-7)

शिक्षा का प्रसार बौद्ध युग में भी बना रहा। गुरुकुल और आश्रम व्यवस्था के साथ-साथ इस युग में मठों, विहारों, उद्यानों और विश्वविद्यालयों का निर्माण हुआ था। विहारों में वेणुवन, जेतवन, यास्तिवन, सीतवन, पूर्वाराम, मुहावन, आम्रवन, न्यूग्रोधाराम, गोष्ठीराम आदि प्रमुख थे जहाँ पर

नैतिक तथा आध्यात्मिक शिक्षा दी जाती थी। अध्यापन कार्य मौखिक हुआ करता था। शिक्षकों में सारिपुत्त, महाभोगलान, महाकच्चायन, उपालि, आनंद और राहुल अति प्रतिष्ठित थे। इस युग में बड़े-बड़े विश्वविद्यालय बने जिनमें तक्षशिला, नालंदा, बल्लभी और विक्रमशिला विश्वविद्यालय विश्वभर में प्रसिद्ध थे।

तक्षशिला भारत का सबसे प्राचीन विश्वविद्यालय था। यह ब्राह्मण विद्याओं का केंद्र था। यहाँ पर वेदत्रयी, अष्टादश, शिल्प, व्याकरण और दर्शनशास्त्र में अध्ययन करने के लिए विदेशों से जिज्ञासु आते थे। सम्राट अशोक के समय तक यह विद्या केंद्र शिखर पर था। पतञ्जलि और जीवक यहाँ के विद्यार्थी एवं अध्यापक थे। व्याकरण के महान पंडित पाणिनी तक्षशिला में शिक्षक थे। प्रख्यात शल्य चिकित्सक कुमारजीव तक्षशिला के ही विद्यार्थी थे। डॉ. रामजी उपाध्याय का मत है कि शिल्पों का प्रथम सुप्रसिद्ध विश्वविद्यालय तक्षशिला था। यहाँ 18 शिल्प पढ़ाए जाते थे। 64 कलाओं का विधिवत अध्ययन होता था। विद्यार्थियों के जीवन और आचार पर विशेष ध्यान दिया जाता था। नालंदा विश्वविद्यालय मगध के राजा शुक्रादित्य ने बनाया था। इसका आकार बहुत विशाल था इसके अधिकार में 200 गाँव थे। यहाँ 10,000 विद्यार्थी और 1500 अध्यापक रहते थे। अध्यापकों में आचार्य नागार्जुन, आर्यदेव, चन्द्रपाल, धर्मपाल, भद्रसेन, दिग्नाग, ज्ञानचन्द्र, शांतिरक्षित वसबंधु, गुणमति, स्थिरमति, प्रभाकर मित्र आदि प्रमुख थे। इसकी कीर्ति समस्त एशिया में फैली थी। चीन, जापान, तिब्बत, कोरिया, टोखरा और मंगोलिया तक के विद्यार्थी यहाँ शिक्षा ग्रहण करने आते थे। चीनी यात्री ह्वेनसांग और

ईत्सिंग ने यहाँ अध्ययन किया था। नालंदा में वैदिक और बौद्ध दोनों धर्मों के ग्रंथों का पठन-पाठन होता था। इन ग्रंथों के मुख्य विषय - व्याकरण, न्याय, चिकित्सा विज्ञान, दर्शन और अध्यात्मशास्त्र थे। न्यायशास्त्र के लिए यह विश्वविद्यालय विख्यात था। इस प्रकार 11वीं सदी तक यह अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय रहा। बारहवीं सदी में तुर्कों के आक्रमण से यह विश्वविद्यालय नष्ट हो गया।

सातवीं शताब्दी में बल्लभी विश्वविद्यालय शिक्षा का प्रमुख केंद्र था। यहाँ धर्मशास्त्र, चिकित्साशास्त्र, नीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र जैसे लौकिक और व्यावहारिक विषयों का अध्यापन होता था। ह्वेनसांग के अनुसार यहाँ सैंकड़ों संघाराम थे तथा लगभग 6000 बौद्ध भिक्षु निवास करते थे।

आठवीं शताब्दी में पालवंश के नरेशों ने बिहार में भागलपुर से चौबीस मील दूर पत्थर घाटा स्थान पर विक्रमशिला विश्वविद्यालय की स्थापना की। चार शताब्दियों तक यह भारत का प्रमुख शिक्षा केंद्र था। यहाँ के विद्यार्थियों के भोजन, निवास, वस्त्र आदि की व्यवस्था विश्वविद्यालय की ओर से होती थी। विश्वविद्यालय में रत्नवज्र, कृष्ण समर वज्र, लीला वज्र, गतरक्षित, दीपंकर, श्रीज्ञान, बोधिभद्र, कमलरक्षित और नरेश श्रीज्ञान जैसे धुरंधर आचार्य थे। इस विश्वविद्यालय में धर्म, साहित्य, व्याकरण, न्यायदर्शन तथा तंत्रमंत्र शास्त्र का विशेष अध्ययन होता था। सन् 1203 में मुहम्मद बिन वख्तियार खिलजी ने इस विश्वविद्यालय को विध्वंस कर दिया।

उपर्युक्त वर्णित शिक्षा केंद्रों के अतिरिक्त दक्षिण भारत में काँची, ओदंतपुरी, वाराणसी, नवद्वीप, धारा, कन्नौज, उज्जैन आदि नगर शिक्षा के प्रमुख केंद्र थे।

प्राचीन काल की शिक्षण विधि बहुत उत्तम थी। इत्सिंग ने अपने ग्रंथ में प्राचीन शिक्षण क्रम का उल्लेख किया है। विद्यार्थियों को सबसे पहले व्याकरण का अध्ययन करना पड़ता था। दस वर्ष पश्चात् विद्यार्थी गद्य और पद्य की रचना प्रारंभ करते थे और हेतुविद्या तथा अभिधर्म कोष में लग जाते थे। 'न्याय द्वार तारक शास्त्र' से अनुमान शक्ति और 'जातकमाला' से विद्यार्थियों की ग्रहण शक्ति को विकसित किया जाता था। इसके बाद विवाद करने की शिक्षा दी जाती थी। तत्पश्चात् भर्तृहरि की महाभाष्य टीका और 'वाक्य प्रदीप' पढ़ाया जाता था। व्याकरण और हेतुविद्या के अध्ययन के बाद ज्योतिष, वैद्यक न्यायशास्त्र की शिक्षा दी जाती थी और सबसे अंत में आध्यात्मविद्या पढ़ाई जाता था। शिक्षा का यह क्रम अनेक वर्षों तक थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ चलता रहा। मुस्लिमों के आगमन के बाद यह व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई। मुस्लिमों की अपनी शिक्षा संस्थाएँ थीं जिन्हें दो भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(1) मकतब और मदरसा। मकतब प्राथमिक शिक्षा के केंद्र थे जो सामान्यतः मस्जिदों से संलग्न होते थे। इनका संचालन सरकारी अथवा गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा किया जाता था। इनमें अरबी-फारसी का ज्ञान कराने के साथ कुरान को कठस्थ कराया जाता था। कुछ मकतब खानगारों (सूफ़ी संतों के आश्रम) से संलग्न होते थे, वहाँ पर सूफ़ी धर्म एवं जीवन से बच्चों को अवगत कराया जाता था। मदरसे उच्च शिक्षा के केंद्र थे। मकतब की शिक्षा समाप्त करने के बाद ही कोई छात्र मदरसे में प्रविष्ट हो सकता था। प्रमुख मदरसों में दिल्ली, आगरा, लाहौर, जौनपुर, रामपुर, बीदर, कश्मीर,

गुजरात, बीजापुर, मालवा और मुल्तान थे। शिक्षा का मुख्य पाठ्यक्रम धर्मग्रंथों की टीका, हदीस (परंपराएं), फिक (न्यायशास्त्र), व्याकरण, तर्कशास्त्र, ज्योतिष शास्त्र, चिकित्सा शास्त्र, साहित्य, तत्वमीमांसा आदि थे। शिक्षा का माध्यम अरबी भाषा थी। उस समय के प्रमुख विद्वानों में अबुल फ़जल, फैज़ी, उर्फ़ी, नजीरी, कमीम, कुदसी हसन निज़ामी, अमीर हसन देहलवी, अमीर खुसरो, अब्दुल रहीम खानखाना, दाराशिकोह, अब्दुल कदीर बदावनी, रामानुज, जयदेव, जीव गोस्वामी, भास्कराचार्य, कल्हण, सायण, वाचस्पति मिश्र और हेमचन्द्र थे। मुगलों की शिक्षा पद्धति के विस्तार के बावजूद हिंदू शिक्षा के कुछ केंद्र निरंतर चलते रहे। जिनमें बनारस और मिथिला प्रख्यात थे। 17वीं और 18वीं शताब्दी के बीच मुगलों द्वारा स्थापित बहुत से मदरसे लुप्त हो गए।

15वीं शताब्दी के अंत में यूरोपियनों का आगमन हुआ। सर्वप्रथम पुर्तगाली गोवा आए। उनके बाद अंग्रेज़, डच और फ्राँसीसियों का आगमन हुआ। इन लोगों ने पाश्चात्य ज्ञान प्रदान करने के दृष्टिकोण से अनेकों शिक्षण संस्थाएँ खोलीं। 31 दिसंबर 1600 को ईस्ट इंडिया कंपनी का 15 वर्षों के लिए भारत में प्रवेश हुआ। 1772 में ब्रिटिश पार्लियामेंट ने ईस्ट इंडिया कंपनी को भारत में शासन करने का अधिकार प्रदान कर दिया। वारेन हेस्टिंग्स ने सबसे पहले भारतीयों की शिक्षा की ओर ध्यान दिया। उन्होंने 1780 में कलकत्ता मदरसा की स्थापना की। दूसरा महत्वपूर्ण शिक्षण संस्थान 'बनारस संस्कृत कॉलेज' बनारस के रेजीडेंट जोनाथन डंकन के प्रयास से 1791 में स्थापित हुआ। इस प्रकार प्रारंभ में अंग्रेज़ शासकों द्वारा भारतीयों की

शिक्षा के लिए उन्हीं की भाषा में प्रयत्न प्रारंभ किया गया। वेद एवं अन्य धार्मिक ग्रंथों के पठन-पाठन की व्यवस्था की गई। परन्तु कालांतर में कुछ ईसाई मिशनरियों द्वारा यह कहने पर कि ईसाई सरकार द्वारा गैर ईसाई धर्मों को प्रोत्साहित किया जा रहा है, के फलस्वरूप उक्त संस्थाओं में भारतीय धार्मिक शिक्षा बंद कर दी गई। इसी क्रम में 1800 ई. में एक अन्य प्रमुख शिक्षण संस्थान 'फोर्ट विलियम कॉलेज' की स्थापना बंगाल में की गई। जिसका उद्देश्य कंपनी के लिए कनिष्ठ सरकारी सेवक तैयार करना था। धीरे-धीरे ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा शिक्षा नीति में बदलाव लाया गया। भारतीय प्राचीन शिक्षा में अविश्वास प्रकट किया गया तथा पश्चिमी शिक्षा को श्रेष्ठ बताया गया। लार्ड मैकाले ने अंग्रेज़ी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने का प्रबल समर्थन किया। 1836 ई. में अंग्रेज़ी भाषा शिक्षा का माध्यम बन गई। वस्तुतः मैकाले का उद्देश्य ऐसे व्यक्तियों का निर्माण करना था जो रंग और रक्त से तो भारतीय हों परन्तु प्रकृति, विचार, नैतिकता और बुद्धि से अंग्रेज़ हों। 1835 में गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बेण्टिंक की समिति ने यह मत दिया कि अंग्रेज़ सरकार का मुख्य उद्देश्य भारतीयों में यूरोपीय साहित्य और विज्ञान का प्रचार होना चाहिए तथा शिक्षा के समस्त धन का प्रयोग अंग्रेज़ी की शिक्षा पर किया जाना चाहिए। सरकारी धन का प्रयोग प्राच्य विद्या की छपाई पर नहीं करना चाहिए। सरकार के उक्त प्रस्ताव का अनेक प्रतिष्ठित भारतीयों ने समर्थन किया। जिनमें राजाराम मोहन राय और राधाकान्त देव प्रमुख थे। उदारवादी अंग्रेज़ों ने उसका समर्थन इस आधार पर किया कि इससे स्वतंत्रता और

समानता के विचारों को फैलाने का अवसर मिलेगा तथा भारतीय स्वयं शासन करने के योग्य बन जाएंगे। शिक्षा के विस्तार के दृष्टिकोण से ब्रिटिश सरकार ने 24 जनवरी, 1857 को लंदन विश्वविद्यालय के प्रतिमान पर कलकत्ता, बाम्बे और मद्रास विश्वविद्यालय की स्थापना की तथा प्रत्येक विश्वविद्यालयों में कला संकाय, विज्ञान संकाय, चिकित्सा विज्ञान संकाय और अभियांत्रिकी विभाग का शिक्षण कार्य प्रारंभ किया। इन विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम एवं कार्यालय की भाषा अंग्रेजी थी। वर्ष 1872 में ब्रिटिश सरकार ने इलाहाबाद में म्योर सेंट्रल कालेज की स्थापना की तथा 1887 में उसे इलाहाबाद विश्वविद्यालय का दर्जा प्रदान कर दिया गया। उस समय इसकी परिधि में संयुक्त प्रांत, केंद्रीय प्रांत, केंद्रीय भारत एवं राजपूताना शामिल था। आजादी की लड़ाई के दौरान भारतीयों में मैकाले की शिक्षा प्रणाली को खत्म करके देश की जनता की जरूरतों के अनुरूप एक नयी प्रणाली खड़ी करने का सपना देखा गया था। महात्मा गाँधी के नेतृत्व में नयी तालीम की एक क्रांतिकारी कल्पना भी पेश की गई थी। परंतु आजाद भारत के शासक वर्ग को यह मंजूर नहीं था। उसने मैकाले की शिक्षा प्रणाली को न केवल जारी रखा बल्कि उसे और मजबूती प्रदान की गई। आज देश में 11,80,000 स्कूल, 17,625 कॉलेज, 328 विश्वविद्यालय एवं 122 डीमड विश्वविद्यालय हैं। परंतु दुनिया के उच्च कोटि के सौ केंद्रों में हमारे किसी शिक्षा केंद्र की गिनती नहीं है।

वर्ष 1991 में भारत सरकार ने देश की अर्थव्यवस्था के दरवाजे वैश्विक पूँजी और मुक्त बाजार के लिए खोल दिए। शिक्षा पर अंतर्राष्ट्रीय

मुद्राकोष और विश्व बैंक की नीतियाँ हावी होने लगीं। मुक्त बाजारवाद का सिद्धांत लागू किया गया। यह नियम शिक्षा पर पूरा नियंत्रण किए बगैर आगे नहीं बढ़ सकता था। इसके लिए यह जरूरी हो गया कि नर्सरी से लेकर इंजीनियरिंग, मेडिकल शिक्षा तक जो पढ़ाया जाए वह उपभोक्तावादी मुक्त बाजार की गुलामी करने वाला जनमानस तैयार करे। इसके अतिरिक्त उतने ही लोगों को ऊँची गुणवत्तामूलक शिक्षा दी जाए जितने की जरूरत वैश्विक पूँजी को अपने कारोबार के लिए है। शेष लोगों को या तो महज साक्षरता तक ही सीमित कर दिया जाए या फिर उन्हें ऐसे कौशल दिए जाएँ जिनसे वे बाजार के लिए आवश्यक निम्न स्तरीय काम कर सकें। आज यही शिक्षा प्रणाली विकसित हो चुकी है। वर्तमान में हमारे विश्वविद्यालयों की स्थिति बहुत ठीक नहीं है। राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर के शोध अब गिनती के विश्वविद्यालयों तक सीमित हो गए हैं। पढ़ाई कराकर छात्रों को ज्ञान से समृद्ध करने के बजाय विश्वविद्यालय डिग्री उपलब्ध कराने तक सीमित हो गए हैं। गुरु-शिष्य परंपरा लगभग समाप्त-प्राय है। विश्वविद्यालयों की इस बदहाली का एक कारण शिक्षा को निजी हाथों के सुपुर्द करना है। निजी क्षेत्र जब कहीं दाखिल होता है तो वह चैरिटी के लिए नहीं बल्कि कारोबार के लिए होता है। निजी क्षेत्र के ज्यादातर शिक्षा केंद्र गुणवत्ता और जरूरी संसाधनों के अभाव से ग्रस्त हैं। इनका मानदंड स्तर सार्वजनिक स्कूल प्रणाली से कम हैं। दुनिया के सबसे ताकतवर और विकसित आठ मुल्कों (अमेरिका, ब्रिटेन, कनाडा, जापान, फ्रांस, जर्मनी, रूस व इटली) जिन्हें जी-8 कहा जाता है,

में से केवल ब्रिटेन को छोड़कर अन्य सभी में सरकारी धन से चलने वाली उम्दा गुणवत्ता मूलक मजबूत सार्वजनिक स्कूल प्रणाली है। अमेरिका में डेढ़ सौ सालों से सार्वजनिक स्कूल प्रणाली है। जहाँ अमीर-गरीब और विभिन्न नस्लों, मजहबों व भाषाओं की पृष्ठभूमि के बच्चे एक साथ पढ़ते हैं। निजी स्कूल नाममात्र के हैं। प्रत्येक स्कूल पड़ौसी स्कूल (neighbourhood school) होता है यानि आपके पड़ोस में जो भी स्कूल है उसके अलावा आप अपने बच्चे को और कहीं नहीं पढ़ा सकते हैं। इसलिए वहाँ हर एक स्कूल का उम्दा होना अनिवार्य है। भारत में भी सभी को उच्च कोटि की शिक्षा प्राप्त हो इसके लिए सार्वजनिक समान स्कूल प्रणाली का नेटवर्क तैयार करना होगा। इसके अतिरिक्त कोई और विकल्प नहीं है। शिक्षा आज के भूमंडलीय समाज के संदर्भ में विशिष्ट समृद्धि अथवा प्रतिष्ठा का चिह्नमात्र नहीं रह गई है। हमारे जीवन में नयी लहर, उत्साह और संगठन अवतरित हो रहे हैं। एक बड़े पैमाने पर नव शिक्षित वर्ग का उदय हुआ है। भारतीय समाज में इन परिवर्तनों के अनुरूप क्या शिक्षा की प्रणाली एवं उद्देश्यों में परिवर्तन हुआ है इस पर स्पष्ट रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है। साधारणतया छात्र आत्मलाभ और ज्ञान के प्रति परम समर्पण की भावना से अनुचालित नहीं हो रहा है। शिक्षा, विद्यार्थी एवं विद्या केंद्र सीधे बाजार पर केंद्रित हो गए हैं। शिक्षाशास्त्रियों को अब शिक्षा की प्रणाली, आदर्श एवं लक्ष्य इनके अनुरूप बनाने पड़ेंगे।

शिक्षा सामाजिक अनुशासन एवं व्यावसायिक संगठन के स्तर पर सत्ता, शासन एवं अर्थ के लिए सदा सतत बदलते सामाजिक शक्तियों के

संतुलन के पीछे भागती रही। सामंतयुगीन समाज में शिक्षा संभ्रांत वर्ग के ऐश्वर्य एवं रुचि के अनुकूल भंगिमाएँ गढ़ने में सक्रिय रही। ब्रिटिश शासन के दरम्यान वह अंग्रेजों के हितों की पूर्ति करती रही। परिणामस्वरूप भारतीय शिक्षा की परंपरा धूल धूसरित हो गई। संस्कृत भाषा और उसमें संकलित विपुल-ज्ञान, साहित्य और अर्थ इस युग में हम खो बैठे। जो संस्कृत भाषा 17वीं शताब्दी तक विश्व की सिरमौर रही उसे कुछ परंपरा एवं कुलीनता के समर्थक वेदपाठी ब्राह्मण ही जिंदा रख सके हैं। उसकी सार्थकता एवं रागात्मक गतिविधियाँ सैंकड़ों साल पहले ही विलुप्त हो गई हैं। जिस प्रकार पठानों और मुगलों के शासनकाल में भारतीय संभ्रांत वर्ग प्रायः फारसी के प्रति आकर्षित था वैसा ही कंपनी बहादुर के शासनकाल से आज तक वह अंग्रेजी के प्रति आकर्षित है।

ध्यातव्य है कि अंग्रेजी भाषा, शिक्षा एवं पद्धति आज केवल स्वामी की ही भाषा नहीं है बल्कि वह नवीन स्पर्धा, औद्योगिक विकास, नगरीकरण एवं आधुनिकता का पर्याय मानी जाने लगी है। इतना सब होते हुए भी भारतीय अंग्रेजीदाँ आज तक अंग्रेजी के साथ वह निर्लिप्त, अकुंठित और सहज रिश्ता नहीं जोड़ सका जिसके होने के बाद ही मानव चेतना, संस्कृति में उपस्थित और चरितार्थ मूल्यों को आत्मसात करके शिक्षा की छूँछी कसरत से ऊपर उठती है। मैकाले से लेकर सैम पित्रोदा तक अंग्रेजी को भारतीय शिक्षा के लिए अनिवार्य मानते हैं। यह एक कुंठितहीनता का ही प्रभाव है। शिक्षक, शिक्षाशास्त्री और शिक्षा आयोग इस अबूझी लीक को रटते हुए अपने आलसी, परिश्रम विरागी वृत्ति एवं यथा

स्थितिवादी प्रमोद को ही उद्घाटित करते हैं। यह बहुत बड़ी कमी है। इसके रहते ज्ञान एवं मूल्यपरक शिक्षा की गुंजाइश न्यूनतम ही रहेगी।

यहाँ पर एक प्रश्न यह भी प्रासंगिक है कि क्या भारतीय शिक्षा का कोई सार्वदेशिक लक्ष्य, योजना या आदर्श है? और यदि ऐसा कोई लक्ष्य है तो क्या हमारी शिक्षण संस्थाएँ उसके अनुरूप चल रही हैं? जहाँ तक मेरा मानना है कि आज तक शिक्षा का कोई स्पष्ट लक्ष्य हमारे जीवन के समक्ष उभरकर नहीं आया। भारत में वर्ग, जाति, धर्म, परंपरा, भाषा और स्वार्थ की लीके इतनी गहरी हैं कि उसका असर शिक्षा के पाठ्यक्रमों पर भी पड़ता है। आधुनिकीकरण के नाम पर युवा पीढ़ी

को जातिवाद, सामंतवाद एवं पाश्चात्य सभ्यता की रंगीन झूठी अतिरंजना में ललचाकर कुंठित किया जा रहा है। परिणामस्वरूप युवाओं में अमर्यादित, अशोभनीय, अमानवीय, असामाजिक, अवसरवादी एवं प्रतिक्रियावादी स्वभाव प्रकट होने लगा है। आज मिल्टन जैसा कवि, प्लेटो जैसा दार्शनिक, डार्विन और न्यूटन जैसा वैज्ञानिक शेक्सपियर और कालीदास जैसे साहित्यकार, गेटे जैसा विचारक, लियोनार्दो की तरह इंजीनियर और चित्रकार नहीं बनाए जा सकते हैं। इसके लिए हमें प्रचलित शिक्षा व्यवस्था की कमियों से बचना होगा और एक समकालीन समन्वित संस्कृति के योग्य शिक्षा व्यवस्था बनानी होगी।

संदर्भ

- शर्मा, शंकर दयाल, 1995. प्रोफेशनल काम्प्यूटेन्सी इन हायर एजुकेशन इन इण्डियन ट्रेडिशन, एजुकेशन बाई एन. के. ओबेराय (संपादक), सी.पी.डी.एच.ई., यूनीवर्सिटी ऑफ दिल्ली, 1995, पृष्ठ-8
- लूनिया, बी.ए. भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास (सत्रहवाँ संस्करण), लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, हास्पिटल रोड, आगरा
- शंकर गौरी, हीराचंद ओझा, 1951. मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद उ.प्र.
- सांकृत्यायन, राहुल, 1974. पुरातत्व निबंधावली, इण्डियन प्रेस प्राइवेट लि. इलाहाबाद, उ.प्र.
- उपाध्याय, रामजी, 1985. भारतीय धर्म और संस्कृति, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, उ.प्र.
- दर, एस.एल. एवं एस. सोमासकान्दन, 2009. मूल्य परक शिक्षा : चुनौतियाँ एवं सम्भावनाएँ, इन इण्डियन एजुकेशन - ए हिस्टोरिकल सर्वे, राजर्षि टण्डन मुक्त वि. वि. इलाहाबाद, पृ. 17-41
- सद्गोपाल, अनिल, 2009. शिक्षा अधिकार विधेयक पर सवाल, सामयिक वार्ता आकाशवाणी, नयी दिल्ली

मुस्लिम पुनर्जागरण आंदोलन एवं मुसलमानों में आधुनिक शिक्षा का प्रसार

ललित कुमार*

भारत में हुआ उन्नीसवीं सदी का धार्मिक-सामाजिक आंदोलन अनेकानेक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण था। इसने भारत के राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षिक पहलुओं को गंभीरता से प्रभावित किया। आधुनिक शिक्षा का प्रसार इस आंदोलन की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता थी। राजा राममोहन राय, महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर, केशवचन्द्र सेन, रानाडे, दयानंद सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद सरीखे समाज सुधारकों के प्रयास से हिंदुओं ने आधुनिक शिक्षा को शुरू में ग्रहण करना शुरू कर दिया, किंतु आम मुसलमानों के विरोध के कारण मुस्लिम समाज काफ़ी समय बाद आधुनिक शिक्षा को आत्मसात् करने के लिए तैयार हो सका। भारत में प्राचीन और मध्यकाल में भी शिक्षा थी परंतु उस मध्यकाल शिक्षा का आधार प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन था और वह बहुत कुछ विश्वास पर आधारित था। आधुनिक शिक्षा की सबसे बड़ी देन तार्किक बुद्धि का विकास है। प्राचीन विचारों, सिद्धांतों और परंपराओं को तर्क के आधार पर देखना, भारतीयों ने इस शिक्षा के प्रभाव से आरंभ किया। मुस्लिम समाज के विकास के लिए भी आधुनिक शिक्षा की ज़रूरत को सर सैयद अहमद खाँ, सैयद अहमद, अब्दुल लतीफ़, गुलाम अहमद, मोहम्मद अली, डॉ. जाकिर हुसैन सरीखे लोगों ने महसूस किया और इन महानुभावों के अथक प्रयास के फलस्वरूप आम भारतीय मुसलमान आधुनिक शिक्षा को प्राप्त कर तत्कालीन शासन व्यवस्था एवं सामाजिक परिवर्तन की मुख्यधारा से अपने को जोड़ सका।

भारतीय पुनर्जागरण अथवा पुनर्जागरण आंदोलन संस्कृति ने जिस नवीन विचारधारा को जन्म दिया, उन्नीसवीं सदी के भारत की एक महान विशेषता जिस प्रकार धर्म और समाज में परिवर्तन करने का है। पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव से भयभीत भारतीय प्रयास किया और जिस प्रकार भारत के राष्ट्रीय

*सीनियर फैकल्टी मेम्बर, महिला प्रशिक्षण महाविद्यालय, पटना विश्वविद्यालय, पटना, उत्तरी गाँधी मैदान, पटना-80000.

जीवन के सभी क्षेत्रों में एक नवीन चेतना आरंभ हुई, उस चेतना, भावना और उससे प्रभावित विभिन्न प्रयत्नों को हम पुनर्जागरण आंदोलन के नाम से पुकारते हैं। इस राष्ट्रीय आंदोलन ने पश्चिमी संस्कृति से तर्क, समानता और स्वतंत्रता की भावना को प्राप्त करके भारत के प्राचीन गौरव को स्थापित करने का प्रयत्न किया और साथ-ही-साथ प्राचीन भारतीय संस्कृति के दोषों को दूर करते हुए उसे प्रगति के लिए नवीन आधार प्रदान किया। आरंभ में पुनर्जागरण एक बौद्धिक परिवर्तन था, बाद में वह अनेक सामाजिक और धार्मिक सुधारों का आधार बना और अंत में उसने भारत के राजनीतिक आंदोलन को जीवन प्रदान करने में सहयोग दिया। भारतीय जीवन का कोई भी क्षेत्र बाकी न रहा जिस पर इस राष्ट्रीय आंदोलन का प्रभाव नहीं पड़ा। सिन्हा, जगदीश नारायण¹ (1998) ने धार्मिक एवं सामाजिक सुधार आंदोलनों के बारे में ठीक ही लिखा है,

“उन्नीसवीं शताब्दी के धार्मिक एवं सामाजिक सुधार आंदोलन का भारत के इतिहास में विशेष स्थान है। इसके बहुमुखी स्वरूप और व्यापकता की दृष्टि से इस आंदोलन को संघर्षपूर्ण आधुनिक इतिहास में ही एक महत्वपूर्ण घटना माना जा सकता है। इस आंदोलन ने भारत की तात्कालिक जड़ता को समाप्त किया और देश के जन-जीवन को झकझोर दिया। इसने जहाँ एक ओर धार्मिक तथा सामाजिक सुधारों का आह्वान किया वहीं

दूसरी ओर इसने भारत के अतीत को उजागर कर भारतवासियों के मन में आत्मसम्मान और आत्मगौरव की भावना जगाने की कोशिश की। धार्मिक उपदेशों के साथ-साथ आंदोलन के नेताओं ने स्वतंत्रता और समानता का भी उपदेश दिया। भारत के समसामयिक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में इस स्वतंत्रता का अर्थ मात्र बौद्धिक चिंतन की स्वतंत्रता से ही नहीं, बल्कि असमानता, शोषण और अत्याचार से मुक्ति भी था।”

पुनर्जागरण का प्रभाव भारतीय मुसलमानों पर भी आया, यद्यपि उनके आंदोलनों का सूत्रपात कुछ विलंब से हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में मुस्लिम समाज क्रमिक अवनति तथा ह्रास के चक्र में फँस चुका था। मुसलमानों के मस्तिष्क में निराशा तथा रोष की भावना व्याप्त थी। देश में अपनी दीर्घकालीन राजनैतिक प्रभुता से वंचित हो जाने के कारण, वे नैराश्य तथा पराजय की भावना से भरे हुए थे। उनके आरंभिक आंदोलनों का मुख्य उद्देश्य अंग्रेजों को भारत से बाहर निकालकर शासन सत्ता को प्राप्त करना था। उनके आंदोलन धार्मिक कट्टरता पर आधारित थे। वे अंग्रेजी की शिक्षा और पश्चिमी संस्कृति के संपर्क के विरोध में थे। देव एवं देव² (1989) ने इस विरोध के फलस्वरूप मुसलमानों को हुई हानि की चर्चा करते हुए लिखा है,

“भारतीय मुसलमानों पर पाश्चात्य विचारों और आधुनिक शिक्षा का प्रभाव देर से पड़ा। उन्नीसवीं

¹सिन्हा, जगदीश नारायण (1998), 'धार्मिक एवं सामाजिक सुधार आंदोलन : कार्यक्षेत्र, स्वरूप और प्रभाव', आधुनिक भारत का इतिहास, संपादक- रामलखन शुक्ल, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, पृष्ठ-342-377.

²देव, अर्जुन एवं देव इंदिरा अर्जुन (1989) 'मुस्लिम सुधार-आंदोलन', आधुनिक भारत, कक्षा आठ के लिए इतिहास की पाठ्यपुस्तक, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली, पृ. 149-151.

सदी के पूर्वार्ध में कलकत्ता और दिल्ली के थोड़े से मुसलमानों ने ही अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त की थी। उलेमा (इस्लामी शिक्षा के पंडित) के विरोध के कारण अधिकांश मुसलमान भी ब्रिटिश शासन को फूटी आँखों देखते थे। अंग्रेजों ने उलेमा और उच्चवर्गीय मुसलमानों को धीरे-धीरे प्रभावहीन और शक्तिहीन बना दिया था। अंग्रेजी शिक्षा और उसके सामाजिक तथा आर्थिक लाभों से वंचित रहने के कारण भारतीय मुसलमानों में लंबे समय तक मध्य वर्ग का उदय नहीं हो सका।”

मुसलमानों द्वारा आधुनिक शिक्षा का बहिष्कार

भारतीय मुसलमान उस समय बहुत पिछड़ी हुई स्थिति में थे और उसका मुख्य कारण था उनका अंग्रेजी की शिक्षा और पश्चिमी संस्कृति से अलग रहना। कुमार, ललित³ (1992) ने आधुनिक शिक्षा की देन पर प्रकाश डालते हुए लिखा है,

“भारत में हिंदू और मुस्लिम काल में भी शिक्षा थी परंतु उस शिक्षा का आधार प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन था और वह बहुत कुछ विश्वास पर आधारित थी। आधुनिक शिक्षा की सबसे बड़ी देन तार्किक बुद्धि का विकास है। भारतीयों ने प्राचीन विचारों, सिद्धांतों और परंपराओं को तर्क के आधार पर देखना, इस शिक्षा के प्रभाव के फलस्वरूप आरंभ किया। क्या अच्छा है और क्या बुरा है, इसका निर्णय विश्वास पर नहीं बल्कि तर्क के आधार पर किया जाने लगा।

यही भावना भारतीय पुनर्जागरण आंदोलन को आरंभ करने वाली थी और यही भावना विभिन्न सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, वैज्ञानिक आदि जीवन के सभी क्षेत्रों में परिवर्तन का कारण बनी। यह भावना भारतीयों के बौद्धिक विकास का आधार बनी जिससे उन्नीसवीं तथा बीसवीं सदी के आधुनिक भारत का निर्माण हुआ।”

हिंदू अंग्रेजी शिक्षा को प्राप्त करके न केवल अपनी सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक उन्नति कर रहे थे बल्कि सरकारी सेवाओं में स्थान प्राप्त करके शासन में भी भाग ले रहे थे, किंतु मुसलमान इन सभी लाभों से वंचित थे। इस स्थिति में परिवर्तन करने का श्रेय “अलीगढ़-आंदोलन” को है जिसका आरंभ सर सैयद अहमद ख़ाँ ने किया। कुछ लोगों का मानना है कि जो कार्य हिंदुओं के लिए राजा राममोहन राय ने किया, वही कार्य सर सैयद अहमद ख़ाँ ने भारतीय मुसलमानों के लिए किया।

देव एवं देव⁴ (1989) ने सर सैयद अहमद ख़ाँ के कार्यों की समीक्षा करते हुए लिखा है,

“मुसलमानों में आधुनिक शिक्षा के प्रसार और सामाजिक सुधार के लिए सबसे महत्वपूर्ण आंदोलन सर सैयद अहमद ख़ाँ ने शुरू किया।। धार्मिक और शैक्षणिक सुधारों की समस्या बड़ी कठिन थी। उन्होंने मुसलमानों से इस्लाम की मूल मान्यताओं पर आधारित शुद्धता तथा सरलता से जीवन को अपनाने की अपील की। भारतीय मुसलमानों के पुनरुत्थान के लिए उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा अपनाने पर जोर

³कुमार, ललित (1992), ‘आधुनिक शिक्षा का योगदान’ दैनिक हिन्दुस्तान, 8 मई.

⁴देव, अर्जुन एवं इंदिरा अर्जुन (1989) - संदर्भ-2 में वर्णित.

दिया। 1864 ई० में उन्होंने अनुवाद समिति की स्थापना की जिसे बाद में वैज्ञानिक समिति का नाम दिया गया। इस समिति का कार्यालय अलीगढ़ में था। इसने विज्ञान तथा अन्य विषयों की अंग्रेजी पुस्तकों के उर्दू अनुवाद प्रकाशित किए और समाज सुधार से संबंधित उदार विचारों के प्रसार के लिए एक अंग्रेजी-उर्दू पत्रिका भी निकाली। उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि 1875 ई० में अलीगढ़ में “मोहम्मडन एंग्लो-ओरियंटल कॉलेज” की स्थापना थी। आगे चलकर यह कॉलेज भारतीय मुसलमानों का सबसे महत्वपूर्ण शिक्षा-संस्थान बन गया।”

जहाँ तक नयी शिक्षा, जो देश में अँग्रेजों द्वारा लायी गई थी, के प्रति मुसलमानों के दृष्टिकोण का प्रश्न है, वे इसे तनिक भी पसंद नहीं करते थे। उन्होंने पश्चिम की नयी शिक्षा से अपने को दूर रखने का प्रयत्न किया और अपने मकतबों तथा मदरसों में दी जाने वाली परंपरागत मुस्लिम शिक्षा को अपनी स्वाभाविक दृढ़ता से अपनाए रखा। नयी शिक्षा के प्रति अपनी उदासीनता को उचित बताने के लिए मुसलमानों ने कई कारण प्रस्तुत किए। डब्ल्यू. डब्ल्यू. हन्टर ने उनमें से कुछ का वर्णन इस प्रकार किया है प्रथम, अँग्रेज विदेशी भाषाओं द्वारा शिक्षा देते हैं जो एक ऐसी भाषा है जिससे शिक्षित मुसलमान घृणा करते हैं, दूसरा ग्रामीण विद्यालय एक मुसलमानों को ऐसी भाषा सीखने का अवसर नहीं देते जो जीवन में उत्तरदायित्वपूर्ण स्थान ग्रहण करने या अपने धार्मिक कर्तव्यों को पूरा करने के लिए आवश्यक है, तीसरे, शिक्षा पद्धति में मुसलमान नवयुवकों के लिए धार्मिक शिक्षा का कोई प्रावधान नहीं है।

अँग्रेजी सरकार ने भी अपनी ओर से मुसलमानों को संतुष्ट करने का न तो कोई प्रयास किया और न ही इस संदर्भ में कोई विचार व्यक्त किया। अँग्रेज पदाधिकारी मानते थे कि मुसलमान, जिनसे उन्होंने राजनैतिक सत्ता छीन ली है, उनके प्रति रुष्टता का मनोभाव रखते हैं और वे अब भी अपनी पूर्व राजनैतिक प्रभुता को प्राप्त करने का स्वप्न देखते हैं। लार्ड एडिनबरा ने 1843 ई० में कहा था-

“मैं इस धारणा की ओर से अपनी आँखें बंद नहीं कर सकता कि वह जाति (मुसलमान) हमारे प्रति प्रधानतः शत्रुता का भाव रखती है और हमारी वास्तविक नीति हिंदुओं को संतुष्ट करना है।”

1857 ई० के विद्रोह के पश्चात् मुसलमान और अँग्रेजों के संबंध और भी बिगड़ गए। इस विद्रोह के परिणामस्वरूप मुसलमानों की शैक्षिक आवश्यकता के प्रति अँग्रेज पदाधिकारियों के दृष्टिकोण में और अधिक प्रतिकूल बदलाव आया। उन्होंने मुसलमानों के शैक्षिक दृष्टिकोण एवं मनोभावों को जानने अथवा उन पर विचार करने का कोई प्रयत्न नहीं किया। उन्होंने अँग्रेजी शिक्षा को जो संरक्षण प्रदान किया उससे अरबी और फारसी के अध्ययन का, जिसे मुस्लिम शासन में सर्वोपरि स्थान प्राप्त था, महत्व और भी कम हो गया। इससे मुसलमानों को विश्वास हो गया कि अँग्रेजों की शैक्षिक नीति निश्चय ही उनके विरुद्ध है। अतः वे अँग्रेजी स्कूलों से दूर रहे और अपने बच्चों को पुराने मकतबों तथा मदरसों में भेजते रहे।

नयी शिक्षा के प्रति मुसलमानों के दृष्टिकोण में बदलाव

समय के व्यतीत होने के साथ-साथ मुसलमानों

के मस्तिष्क की वह कटुता, जो शासकीय अधिकारियों की उनके प्रति भेद-भाव तथा प्रतिशोधपूर्ण नीति के कारण उत्पन्न हुई थी, घटने लगी। वे इस बात को अधिकाधिक समझने लगे कि नयी शिक्षा से दूर रहने से उन्हीं की हानि हो रही है। नवीन परिस्थितियों के प्रति भारतीय मुसलमानों के दृष्टिकोण में जो यह परिवर्तन हुआ वह उनके प्रगतिशील आंदोलनों से स्पष्ट है। इन आंदोलनों का प्रमुख उद्देश्य मुस्लिम विचारों और संस्कृति को पश्चिम की नयी, उदार तथा विवेकपूर्ण विचारधारा के अनुसार परिवर्तित करना था। सिन्हा, जगदीश नारायण⁵ (1998) लिखते हैं—

“अठारहवीं शताब्दी की शुरुआत के साथ ही मुगल साम्राज्य पतन के रास्ते पर अग्रसर हो गया था। इस शताब्दी के दौरान मुस्लिम समाज में भी पतन की प्रक्रिया स्पष्ट होने लगी। ऐसी ही परिस्थितियों में रायबरेली के सैयद अहमद ने शेख अहमद सरहिंदी (1562-1624) की तरह ही मुसलमानों की भलाई के वास्ते इस्लाम को बाहरी तत्वों से मुक्त करने का काम शुरू किया। कुरान को अच्छी तरह समझने के लिए उन्होंने फ़ारसी में उसका अनुवाद किया। रायबरेली के सैयद अहमद के आंदोलन का सबसे बड़ा परिणाम यह हुआ कि उन्होंने मुसलमानों की बिगड़ती दशा की ओर उनका ध्यान आकृष्ट कर दिया। सैयद अहमद को अपनी कोशिशों में जिनका सहयोग मिला उनमें शाह मोहम्मद और मौलाना अब्दुल हई के नाम उल्लेखनीय हैं।

कई छोटे-छोटे दलों ने मुसलमानों की सामाजिक, राजनीतिक एवं शैक्षिक स्थिति को सुधारने का प्रयास किया। शाह वली उल्लाह के दल का भी मुख्य उद्देश्य भारतीय इस्लाम को बाहरी तत्वों से मुक्त कराना था। पूर्वी भारत में इसके मुख्य नेता करामत अली और हाजी शरीयत उल्लाह थे। वहाबी आंदोलन और कई छोटे-छोटे दलों ने मुसलमानों की सोच में सकारात्मक सुधार की कई कोशिशों की, किंतु मुसलमानों के शैक्षिक सुधार में किए गए सुधारों में सबसे सशक्त रहे अलीगढ़ आंदोलन और जामिया मिल्लिया इस्लामिया आंदोलन। नवाब अब्दुल लतीफ का मुस्लिम साहित्य मुसलमानों में आधुनिक चेतना का संचार कर उदारवादी विचारधारा को जन्म देने में काफी हद तक सफल रहा और फलस्वरूप मुसलमान आधुनिक शिक्षा की तरफ मुखातिब हो सके। जिस प्रकार सर सैयद अहमद ने उन्नीसवीं शताब्दी में मुसलमानों के धार्मिक तथा राजनीतिक चिंतन पर प्रभाव डाला उसी प्रकार बीसवीं शताब्दी में मुहम्मद इकबाल ने भी मुसलमानों की सोच को प्रभावित किया। उन्होंने एक ऐसे सक्रिय और गतिशील दृष्टिकोण अपनाने की अपील की जिससे विश्व को बदला जा सके।

मुस्लिम साहित्यिक समाज एवं आधुनिक शिक्षा का प्रसार

मुसलमानों में आधुनिक चेतना के प्रसार हेतु आरंभिक प्रयास करने का श्रेय नवाब अब्दुल लतीफ को है, जो इस आंदोलन के प्रवर्तक थे। वे एक ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने भारतीय मुसलमानों

⁵सिन्हा, जगदीश नारायण (1998) - संदर्भ-1 में वर्णित.

की पाश्चात्य संस्कृति तथा शिक्षा से दूर रहने तथा मध्यकालीन विचारों में लिप्त रहने की नीति की भर्त्सना की, क्योंकि उन्हें विश्वास था कि अंग्रेजी शासन इतना दृढ़ था कि उसका विरोध नहीं किया जा सकता और वह इतना उपयोगी था कि उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। इस विचार को कार्यान्वित करने के लिए नवाब अब्दुल लतीफ ने 1863 ई. में मुस्लिम साहित्यिक समाज की स्थापना की। कलकत्ता के उच्च वर्ग के मुसलमान इसके सदस्य थे और वे इस समाज के सचिव। समाज ने उनके नेतृत्व में यूरोपीय संस्कृति तथा शिक्षा के प्रति बड़ा आदर व्यक्त किया। इसके सदस्य एकत्र होकर सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक विषयों पर आधुनिक, उदार तथा विवेकपूर्ण विचारधारा की दृष्टि से चर्चा करते थे।

यह समाज मुसलमानों द्वारा अंग्रेजी भाषा के अध्ययन पर विशेष जोर देता था, क्योंकि इसके बिना वे पश्चिम के साहित्य और विज्ञान से परिचित नहीं हो सकते थे। इस समाज के प्रयत्न व्यर्थ नहीं हुए क्योंकि शीघ्र ही लार्ड हेस्टिंग्स द्वारा स्थापित कलकत्ता मद्रसा में अंग्रेजी साहित्य और भाषा की पढ़ाई आरंभ कर दी गई। बंगाल में मुसलमानों के लिए जो अन्य नये कॉलेज खोले गए उनमें भी इसी नीति का अनुसरण किया गया। अंग्रेजी भाषा के प्रति मुसलमानों की सोच के संदर्भ में सिंह, आर०पी०⁶ (2005) ने लिखा है कि प्रारंभ में मुसलमानों ने अंग्रेजी शिक्षा के महत्त्व को नहीं समझा और इसके अध्ययन का विरोध भी किया। बाद में अंग्रेजी

की शिक्षा के प्रति भारतीयों द्वारा इस तरह प्रयास किया गया कि कंपनी की सहायता से चलने वाली संस्थाओं में अंग्रेजी भाषा के माध्यम से शिक्षा देने की अनिवार्यता के लिए किए जेम्स मिल, चार्ल्स ग्रंट या फिर मैकाले के प्रयास की कोई जरूरत ही नहीं थी।

अहमदिया आंदोलन तथा मुसलमानों की नयी शिक्षा

यह आंदोलन जो मिर्जा गुलाम अहमद द्वारा 1889 ई० में आरंभ किया गया था, आधुनिक विचारधारा तथा आदर्शों से प्रेरित था। इसका मुख्य उद्देश्य ऐसे सुधारों को कार्यान्वित करके, जो पश्चिम की उदारवादी विचारधारा के अनुकूल हों, मुस्लिम समाज में पुनर्जागरण उत्पन्न करना था। यह आंदोलन मुसलमानों के लिए उसी उद्देश्य की पूर्ति करना चाहता था जो ब्रह्मसमाज ने हिंदुओं के लिए किया था। इस आंदोलन के संस्थापक ने इस बात का अनुभव किया कि हिंदुओं ने पाश्चात्य उदारवाद और शिक्षा को अपनाकर बुद्धिमानों का कार्य किया है। उनका विचार था कि मुसलमानों को भी ऐसा ही करना चाहिए। अपनी धार्मिक विचारधारा में भी इस आंदोलन ने ब्रह्मसमाज की ही भाँति पर्याप्त व्यापकता दिखाई, क्योंकि यह भी पूरी मानव जाति के लिए जाति, वर्ण और धर्म के भेदभाव के बिना एक सार्वभौमिक धर्म में विश्वास करता था। ये सब बातें मुस्लिम समाज की पुरानी रूढ़िवादी तथा संकीर्ण सांप्रदायिक विचारधारा से बिलकुल भिन्न थीं।

⁶सिंह, आर. पी. (2005), 'लैंग्वेज पौलिसी ड्यूरिंग कंपनी रूल', इंडियन एजुकेशनल रिव्यू, वॉल्यूम-41, नवंबर-2, जुलाई, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली, पृ. 3-33.

मुस्लिम समाज में वांछित सांस्कृतिक पुनर्जागरण लाने के लिए इस आंदोलन ने मुसलमानों के बीच नयी शिक्षा के प्रसार का समर्थन किया। अतः इसने बहुत सी शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना करना प्रारंभ किया जिनमें पुरानी मुस्लिम भाषाओं — अरबी और फ़ारसी — और उनके साहित्य के अध्ययन के अतिरिक्त अंग्रेज़ी भाषा और पाश्चात्य विज्ञानों के अध्ययन पर पर्याप्त जोर दिया जाता था।

सशक्त शैक्षिक, सामाजिक एवं सुधारवादी आंदोलन — अलीगढ़ आंदोलन

जहाँ तक मुसलमानों में आधुनिक चेतना के प्रसार का प्रश्न है, अलीगढ़ आंदोलन, जो भारतीय मुसलमानों के सबसे बड़े नेताओं में से एक सर सैयद अहमद खाँ के द्वारा चलाया गया था, निश्चय ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण आंदोलन था। मुसलमानों और सरकार के बीच वांछित पुनर्मेल स्थापित करने के लिए सर सैयद अहमद खाँ ने एक शक्तिशाली आंदोलन प्रारंभ किया। इसके लिए, उन्होंने एक ओर तो शासकों को मुसलमानों की स्वामिभक्ति का विश्वास दिलाने की कोशिश की और दूसरी ओर अंग्रेज़ों के प्रति वफ़ादार रहने से होने वाले लाभों से मुसलमानों को परिचित कराने का प्रयत्न किया। मुसलमानों की उन्नति के लिए सर सैयद अहमद खाँ ने दो मुख्य लक्ष्य निर्धारित किए - (1) अंग्रेज़ी सरकार और मुसलमानों के संबंध को ठीक करना, और (2) मुसलमानों में आधुनिक शिक्षा का प्रचार करना।

अंग्रेज़ों और मुसलमानों के संबंध को ठीक करने का प्रयत्न सर सैयद अहमद खाँ ने बहुत ही उपयुक्त अवसर पर आरंभ किया था। हिंदू पश्चिमी

संस्कृति से प्रभावित होकर न केवल योग्य बनते जा रहे थे बल्कि राजनीतिक भावनाओं की भी प्रगति कर रहे थे जो कि अंग्रेज़ों की दृष्टि से क्रांतिकारी और अंग्रेज़ों के विरुद्ध होती जा रही थी। इस कारण, अंग्रेज़ों ने भी मुसलमानों की वफ़ादारी को प्राप्त करने की कोशिश की क्योंकि मुसलमानों में कोई प्रभावशाली राजनीतिक प्रगति उस समय तक नहीं हुई थी और मुसलमानों का प्रयोग हिंदुओं की बढ़ती हुई राष्ट्रियता की भावना के विरुद्ध किया जा सकता था।

सर सैयद अहमद खाँ अपने दूसरे उद्देश्य से उदासीन न थे। उन्होंने मुसलमानों की शिक्षा और सामाजिक प्रगति के लिए भी निरंतर प्रयत्न किया और इसके लिए वे मुसलमानों को अंग्रेज़ी भाषा की शिक्षा देना आवश्यक मानते थे। उन्होंने बताया कि कुरान में ऐसी कोई बात नहीं है जो मुसलमानों को अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त करने या पश्चिमी संस्कृति के संपर्क में आने से रोके। अपने उद्देश्य के प्रचार, प्रसार तथा पूर्ति के लिए 1864 ई० में उन्होंने गाज़ीपुर में, अपने भारतीय तथा यूरोपीय मित्रों की सहायता से, एक अनुवाद समाज स्थापित किया। मुसलमानों को अपनी मातृभाषा द्वारा पाश्चात्य कलाएँ तथा विज्ञान सीखने में इस समाज ने, अंग्रेज़ी में लिखी हुई इतिहास, अर्थशास्त्र, विज्ञान और अन्य विषयों की बहुत सारी पुस्तकों का उर्दू में अनुवाद करके बड़ी सहायता दी। बाद में इसे 'अलीगढ़ का वैज्ञानिक समाज' के रूप में परिवर्तित कर दिया गया। इस समाज ने अंग्रेज़ी पुस्तकों का उर्दू में अनुवाद करने के साथ-साथ उर्दू और अंग्रेज़ी में एक पत्रिका को भी आरंभ किया जिसका उद्देश्य मुसलमानों में सामाजिक सुधार करना था।

1869 ई. में सैयद अहमद खाँ इंग्लैंड गए और उन्हें स्वयं पश्चिमी संस्कृति के संपर्क में आने का अवसर मिला। 1870 ई. में वह भारत वापस आ गए और तब से उन्होंने अंग्रेजी की शिक्षा का प्रचार और भी अधिक उत्साह से आरंभ किया। 1875 ई० में उन्होंने एंग्लो-ओरियण्टल कॉलेज की स्थापना की और यहीं कॉलेज आगे चलकर मुस्लिम विश्वविद्यालय में परिवर्तित हुआ। इस कॉलेज ने मुसलमानों के आधुनिकीकरण में उसी प्रकार भाग लिया जिस प्रकार हिंदुओं के आधुनिकीकरण में कलकत्ता के हिंदू कॉलेज ने भाग लिया था। इस कॉलेज में कला और विज्ञान की शिक्षा का प्रबंध पश्चिमी शिक्षा-पद्धति के आधार पर किया गया और इसने नौजवान मुसलमानों को उदार शिक्षा और प्रगतिशील विचारों के निर्माण में बहुत सहायता प्रदान की। सर सैयद अहमद खाँ ने मुसलमानों में आधुनिक विचारों को फैलाने के लिए एक 'मुस्लिम शिक्षा सभा' की स्थापना भी की और अनेक ऐसे व्यक्तियों को अपने चारों तरफ एकत्र किया जो उनके विचारों को फैलाने के लिए प्रयत्नशील बनें। जिस लगन के साथ सर सैयद अहमद ने अपना शैक्षिक कार्य प्रारंभ किया, उसका सरकारी पदाधिकारियों पर बड़ा प्रभाव पड़ा और तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड लारेंस ने उन्हें एक स्वर्ण-पदक द्वारा विभूषित किया और लार्ड मैकॉले की पुस्तकों का एक पूरा संकलन उन्हें प्रदान किया। इससे सर सैयद अहमद खाँ की ख्याति बहुत बढ़ गई और मुस्लिम शिक्षा के क्षेत्र में एक अग्रणीय नेता के रूप में उनके

प्रभाव में पर्याप्त वृद्धि हुई। सर सैयद अहमद खाँ ने इस मत का भी प्रचार किया कि इस्लाम धर्म की मान्यताएँ विक्टोरियन धार्मिक और सामाजिक मान्यताओं की विरोधी नहीं हैं और इसलिए मुसलमान लोग पाश्चात्य शिक्षा और संस्कृति को अपनी परंपरागत मान्यताओं और जीवन पद्धति को किसी प्रकार की हानि पहुँचाए बिना ग्रहण कर सकते हैं।

मुस्लिम शिक्षा, समाज सुधार और जागृति के लिए जो कार्य सर सैयद अहमद खाँ ने किया, वह उस समय तक किसी भी भारतीय मुसलमान ने नहीं किया था। उन्होंने मुस्लिम समाज और धर्म में सुधार करके उन्हें आधुनिक परिस्थितियों के अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया और उन्होंने ही प्रभावशाली ढंग से सर्वप्रथम मुसलमानों को यह बतलाने का साहस किया कि अंग्रेजी भाषा की शिक्षा और पश्चिमी सभ्यता के संपर्क में आए बिना उनकी प्रगति संभव नहीं है। इन विचारों को मुस्लिम समाज में फैलाने में उन्हें रूढ़िवादी मुसलमानों के कट्टर विरोध का सामना करना पड़ा किंतु उन्होंने इस कार्य को किया और इसमें सफलता पाई। सर सैयद अहमद के प्रयास की सराहना करते हुए चन्द्र, विपीन⁷(1996) लिखते हैं,

“सैयद अहमद खान का विश्वास था कि मुसलमानों का धार्मिक और सामाजिक जीवन आधुनिक, पाश्चात्य, वैज्ञानिक ज्ञान और संस्कृति को अपनाकर ही सुधर सकता है। इसलिए आधुनिक शिक्षा का प्रचार जीवन-पर्यन्त उनका प्रथम ध्येय रहा। एक अधिकारी के रूप में उन्होंने अनेक नगरों में विद्यालय स्थापित किए

⁷चन्द्र, विपीन (1996), 'नये भारत का उदय', आधुनिक भारत, कक्षा 12 के लिए पाठ्यपुस्तक, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली, पृ. 151-165.

थे और पश्चिमी ग्रंथों का उर्दू में अनुवाद कराया था।”

जामिया मिल्लिया इस्लामिया के रूप में आधुनिक राष्ट्रीय शिक्षा का उदय

बीसवीं शताब्दी के द्वितीय दशक में भारतीय मुसलमानों में राष्ट्रीय भावना का उदय होना एक महत्वपूर्ण घटना थी, क्योंकि इसने उनका संपूर्ण सामाजिक तथा राजनैतिक दृष्टिकोण ही बदल दिया और उनकी भावी प्रगति पर गहरा प्रभाव डाला। शीघ्र ही उनकी राजनैतिक राष्ट्रीयता एक सर्वव्यापी तत्त्व बन गई जिसमें शिक्षा का क्षेत्र भी सम्मिलित था। सर सैयद अहमद खाँ द्वारा स्थापित अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के अंग्रेजी दृष्टिकोण के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया आरंभ हो गई। यह मुसलमानों की उस राष्ट्रवादी इच्छा का स्वाभाविक परिणाम था जिसके अनुसार वे अपनी शिक्षा को विदेशी प्रभाव से मुक्त करके, अपने हाथों में रखना चाहते थे।

शिक्षा के क्षेत्र में भारतीय मुसलमानों की महत्वाकांक्षा अपनी चरम सीमा को तब पहुँची जब असहयोग आंदोलन के जोश में राष्ट्रवादी मुसलमान मोहम्मद अली के नेतृत्व में खिलाफत आंदोलन चला रहे थे, इस आंदोलन के अंतर्गत मुस्लिम छात्र शासकीय विद्यालयों से अलग हो गए। सरकार द्वारा नियंत्रित तथा सहायता-प्राप्त विद्यालयों से अलग होकर विद्यार्थियों और अध्यापकों ने अपना असहयोग व्यक्त किया और साथ ही उन्होंने अक्टूबर 1920 ई. में कुछ तम्बुओं के नीचे एक प्रतिद्वंदी संस्था की स्थापना की जिसका नाम जामिया मिल्लिया इस्लामिया

रखा गया और जिसके प्रथम आचार्य मोहम्मद अली हुए।

जामिया मिल्लिया, जिसकी स्थापना प्रगाढ़ राष्ट्रीयता के असीम स्वप्नों तथा उत्साहपूर्ण विचारों के दिनों में हुई, भारतीय मुसलमानों की सर्वोच्च शैक्षिक आकांक्षाओं का प्रतीक है। यह शिक्षा को विदेशी प्रभाव से स्वतंत्र रखकर अपने हाथों में रखने की उनकी इच्छा का स्पष्ट प्रमाण है। मुसलमानों के मस्तिष्क को संकीर्ण सांप्रदायिकता के घेरे से निकालकर राष्ट्रीयता के विस्तृत तथा प्रगतिशील पथ पर अग्रसर करने का यह उनका अंतिम और कदाचित् सर्वोत्तम प्रयास था।

आरंभ में जामिया को काफी कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। जामिया के लिए वह समय सबसे अधिक कठिन था जब खिलाफत और असहयोग आंदोलन के उत्साह की लहर, जिसकी पृष्ठभूमि में इसका जन्म हुआ, मंद पड़ गई। ‘सीधी कार्यवाही’ को 1922 ई. में समाप्त कर देने के पश्चात् राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं के मस्तिष्क में निराशा और पराजय की भावना व्याप्त हो गई थी, यहाँ तक कि कुछ लोगों ने इस संस्था को बंद करने का भी विचार व्यक्त किया। कुछ अध्यापकों ने चुपचाप अन्य काम खोज लिए और बहुत से छात्रों ने इसे छोड़कर दूसरे संस्थानों में प्रवेश ले लिया। ऐसी विपरीत परिस्थितियों में जामिया ने अपने को किसी भाँति जीवित रखा, क्योंकि भविष्य में इसे शिक्षा और संस्कृति का एक महान राष्ट्रीय केंद्र बनना था। 1952 ई. में इसे दिल्ली स्थानान्तरित कर दिया गया और तब से इसके इतिहास में एक नवीन अध्याय प्रारंभ हुआ। प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री डॉ. जाकिर हुसैन का जामिया अधिक ऋणी है। उन्होंने

प्राचार्य के रूप में इस संस्था की बड़ी सेवा की और उन्हीं के मार्गदर्शन में यहाँ बुनियादी शिक्षा की महान योजना पर प्रयोग किया गया, जो आगे चलकर हमारी राष्ट्रीय शिक्षा की आधारशिला बनी।

उपसंहार

भारतीय पुनरुद्धार आंदोलन की एक इकाई के रूप में मुस्लिम राष्ट्रीय आंदोलन ने तत्कालीन भारतीय समाज को सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक तथा शैक्षिक क्षेत्र में गंभीरता से प्रभावित किया। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय और जामिया मिल्लिया इस्लामिया जैसी सशक्त, बहुआयामी और प्रभावशाली शिक्षा संस्थानों के अतिरिक्त कई अन्य देशी संस्थाओं की स्थापना भी इस महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान हुई। तार्किक दृष्टिकोण का विकास, धर्म-सुधार, अच्छे साहित्य का निर्माण तथा विभिन्न भाषाओं के साहित्य का विकास, अनुसंधान तथा वैज्ञानिक भावना का विकास, औद्योगीकरण की भावना का विकास, ललित कलाओं की उत्पत्ति, मध्यम वर्ग की उत्पत्ति, भारत की राष्ट्रीयता का निर्माण और राजनैतिक आंदोलन का आरंभ, विदेशी तथा पश्चिमी विद्वानों से संपर्क तथा समाचार-पत्र, पत्रिकाएँ तथा छापाखानों की स्थापना जैसी कई महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों का श्रेय इस आंदोलन को जाता है और इन उपलब्धियों से प्रभावित होकर तथा इन उपलब्धियों पर अपना प्रभाव छोड़ती हुई शिक्षा अपना स्वरूप राष्ट्रीय, सामाजिक तथा धार्मिक जरूरतों के अनुसार निर्धारित कर सकने का प्रयास करती रही और बहुत हद तक कर सकी।

सिन्हा जगदीश नारायण⁸ (1998) ने मुस्लिम राष्ट्रीय आंदोलन के साथ-साथ अन्य आंदोलनों के बारे में लिखा है,

“चूँकि ये सभी आंदोलन मुख्य रूप से ‘उदारवादी’ थे अतः पश्चिम के उदारवादी तत्वों से इनका विरोध नहीं था। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के भारत में स्थायित्व के लिए यह स्थिति लाभदायक थी। अतः अँग्रेजों ने इन सुधारों एवं सुधारकों का अपने हित में उपयोग किया। आंदोलनों के परिणामस्वरूप अँग्रेजी शिक्षा और पश्चिमी विचारों का भारत में काफी प्रसार हुआ। इस काम में अँग्रेजों ने अँग्रेजी प्रशासकों, पश्चिमी विद्वानों तथा ईसाई पादरियों के अलावा भारतीय सुधारकों के सहयोग एवं समर्थन का भी उपयोग किया। सुधार आंदोलन की शायद सबसे बड़ी उपलब्धि यह थी कि इसने भारतीयों को समानता, स्वतंत्रता एवं जागरण का संदेश एक ऐसे समय पर दिया जब देश गुलामी की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था और समस्त जन-जीवन अंधविश्वास, रूढ़िवादिता एवं अज्ञान के अंधकार में भटक रहा था।”

अँग्रेजी भाषा की शिक्षा एवं आधुनिक शिक्षा का प्रसार अँग्रेजों की प्रारंभिक शैक्षिक नीति का हिस्सा नहीं था। वे अँग्रेजी शिक्षा प्राप्त ऐसे लोगों की तलाश में थे जिनकी मदद से वे राज-काज चला सकें और जो स्वतंत्रता की बात न करके उनके इशारे पर उनके हित के लिए काम करते रहें। यदि पुनर्जागरण के माध्यम से विभिन्न सामाजिक संगठन अपने-अपने धर्मों के लोगों

⁸सिन्हा, जगदीश नारायण (1998), संदर्भ-1 में वर्णित.

को आधुनिक शिक्षा देने का प्रयास नहीं करते तो शायद भारत में अंग्रेजी एवं विज्ञान की शिक्षा का प्रसार इतनी तेजी से नहीं हो पाता। अंग्रेजी शिक्षा देने या न देने की अँग्रेजों की असमंजस की स्थिति की चर्चा लाल, सुन्दर⁹ 1982। कुछ इस प्रकार करते हैं,

“सन् 1757 से लेकर 1854 तक करीब 100 साल के अनुभव और सलाह मशविरे के बाद इंग्लिस्तान के नीतिज्ञों को इस बात का विश्वास हुआ कि थोड़े से भारतवासियों को अंग्रेजी शिक्षा

देना इस देश में अंग्रेजी साम्राज्य को कायम रखने के लिए आवश्यक है। किंतु इस पर भी ये लोग इतने बड़े प्रयोग के लिए एकाएक साहस न कर सके। ट्रेवेलियन ने अपने लेख और बयान, दोनों से उन्हें साफ आगह कर दिया था कि अशिक्षित या अंग्रेजी शिक्षा से वंचित भारतवासियों के दिलों में अपनी पराधीनता के विरुद्ध गहरा असंतोष भीतर ही भीतर भड़कता रहता था, जिसका विदेशी शासकों को पता तक नहीं चल सकता था।”

⁹लाल, सुन्दर (1982), 'भारतीय शिक्षा का सर्वनाश', भारत में अंग्रेजी राज (द्वितीय खंड), प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नयी दिल्ली, पृ. 682-703.

अध्यापक शिक्षा — समस्याएँ एवं चुनौतियाँ

सतीश कुमार यादव*

विद्यालयी शिक्षा में गुणात्मक सुधार लाने के लिए गुणवत्तापूर्ण अध्यापक शिक्षा की आवश्यकता पर विभिन्न आयोगों, समीतियों, और शिक्षा नीतियों ने समय-समय पर जोर दिया है। विशेष रूप से राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) ने अध्यापक शिक्षा में आमूल-चूल परिवर्तन किए जाने का सुझाव दिया। एन.सी.टी.ई., एन.सी.ई.आर.टी. व अन्य संस्थाओं/संगठनों द्वारा भी अध्यापक शिक्षा में बदलाव के प्रयत्न किए जाते रहे हैं। इसके बावजूद अध्यापक शिक्षा में अपेक्षित परिवर्तन नहीं हो पाया है। प्रस्तुत लेख में अध्यापक शिक्षा से जुड़ी कुछ समस्याओं एवं चुनौतियों का विश्लेषण किया गया है और उनके समाधान भी सुझाए गए हैं ताकि अध्यापक शिक्षा को सशक्त व विद्यालयी शिक्षा के अनुकूल बनाया जा सके।

अध्यापक शिक्षा व विद्यालयी शिक्षा एक दूसरे के पूरक हैं। अध्यापक शिक्षा से ही विद्यालयी शिक्षा में सुधार लाया जा सकता है क्योंकि अध्यापक शिक्षा द्वारा अध्यापकों को तैयार किया जाता है और उनको इस दौरान आवश्यक ज्ञान व कौशल दिया जाता है।

अध्यापक शिक्षा हमारे देश में आज़ादी से पहले भी थी परंतु भारत सरकार ने अध्यापक शिक्षा की मुख्य भूमिका के बारे में विचार की आवश्यकता बहुत समय बाद महसूस की, विशेषकर

आज़ादी के बाद और इसमें सुधार लाने के काफ़ी प्रयास किए। सन् 1947-48 में माध्यमिक स्तर पर केवल 51 संस्थान थे जो कि सन् 2009 में बढ़कर 8000 से भी ज़्यादा हो गए हैं। अध्यापक शिक्षा में सुधार लाने के लिए इस दौरान कई कमेटियों, कमीशन व आयोगों का गठन किया गया।

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948) ने पूर्व अध्यापक शिक्षा में सिद्धांत व व्यवहार को समाहित करने का सुझाव दिया और बताया कि सैद्धांतिक पाठ्यक्रमों में लचीलापन होना चाहिए और

*प्रोफ़ेसर, अध्यापक शिक्षा एवं विस्तार विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली.

सेवाकालीन कार्यक्रमों के द्वारा शिक्षकों में जागरूकता लाई जानी चाहिए। इन्हीं सुझावों के अंतर्गत बड़ौदा में सन् 1950 में अध्यापक शिक्षा पर राष्ट्रीय स्तर के अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों के प्राचार्यों का सम्मेलन हुआ। इसमें आए सुझावों के मद्देनजर कई विश्वविद्यालयों ने अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रमों को बदला।

माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53) ने अध्यापक शिक्षा में मूल्यांकन की नयी तकनीकों के प्रयोग का सुझाव दिया था व साथ ही योग्य व कुशल व्यक्तियों को शिक्षण व्यवसाय में लाने के लिए भी सुझाव दिया था। इस आयोग की रिपोर्ट के अनुसार प्रशिक्षण दो तरह के होने चाहिए। पहला, स्कूली शिक्षा के बाद दो साल का प्रशिक्षण और दूसरा स्नातक के बाद एक साल का प्रशिक्षण। सन् 1960 के दौरान एक मुख्य बदलाव आया। राष्ट्रीय स्तर के कई संस्थानों को मिलाकर राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् को बनाया गया। इस संस्थान में अध्यापक शिक्षा विभाग भी बनाया गया और चार क्षेत्रीय शैक्षिक संस्थान, अजमेर, भुवनेश्वर, भोपाल व मैसूर में बनाए गए। इन संस्थाओं में माध्यमिक स्तर के बी.एड. प्रशिक्षण के अंतर्गत अच्छे अध्यापक तैयार किए गए और एक नवीन कार्यक्रम भी शुरू किया गया, जिसमें हायर सैकेंडरी के बाद चार वर्ष का बी.एस.सी. बी.एड का पाठ्यक्रम पढ़ाया जाने लगा। एन.सी.ई.आर.टी. ने सेवापूर्व के साथ सेवाकालीन कार्यक्रम भी शुरू किए। इसके साथ 1964 में विभिन्न राज्यों में राज्य शैक्षिक संस्थान खोले गए। इससे अध्यापकों को राज्य स्तर पर सेवाकालीन प्रशिक्षण दिए गए।

शिक्षा आयोग (1964-66) ने अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाने पर बल दिया। इस आयोग ने सुझाया कि अध्यापक शिक्षा संस्थानों में स्कूली शिक्षा, व्यावहारिक जीवन, व विश्वविद्यालयों के अकादमिक जीवन के बीच सामंजस्य बनाया जाए और आपस की दूरियों को कम किया जाए। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अध्यापक शिक्षा में सुधार लाने के लिए प्राप्त धन उपलब्ध कराए। सेवा के दौरान शिक्षकों के प्रशिक्षण का आयोजन विश्वविद्यालयों और शिक्षक संगठनों द्वारा किया जाए और हर पाँच साल में इस तरह के कार्यक्रम में हर शिक्षक को दो-तीन महीने बिताना अनिवार्य हो; इस तरह कार्यक्रम आंकड़ों के आधार पर तय होने चाहिए और प्रशिक्षण संस्थानों को साल भर सेमिनार, कार्यशालाएँ, रिक्रेशर कोर्स, ग्रीष्मकालीन इंस्टीट्यूट आयोजित कराने चाहिए।

सन् 1973 में भारत सरकार ने राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् (नेशनल काउंसिल ऑफ टीचर एजुकेशन, एन.सी.टी.ई.) का गठन किया जो कि अध्यापक शिक्षा में राष्ट्रीय स्तर पर एक सलाहकार समिति के रूप में कार्य करे और अध्यापक शिक्षा के कार्यक्रमों की समय-समय पर मापदंडों के अनुसार समीक्षा करे। इसका मुख्यालय अध्यापक शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी. नयी दिल्ली में बनाया गया। सन् 1976 में एन.सी.टी.ई ने चार सुझाव दिए। पहला, अल्पकालीन सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रमों को विश्वविद्यालय स्वीकृति दे। दूसरा, स्कूल अध्यापकों को विस्तार सेवाओं से जोड़ा जाए। तीसरा, हर जिले में मानव संसाधन व पठन-पाठन सामग्री के निर्माण के लिए अध्यापक केंद्र खोले जाएँ और चौथा, पत्राचार द्वारा सेवाकालीन

प्रशिक्षण शुरू किए जाएँ और उनमें आधुनिक प्रौद्योगिकी का प्रयोग किया जाए। एन.सी.टी.ई. ने 1978 व 1988 में राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम की रूपरेखा बनाई व प्रकाशित की।

चट्टोपाध्याय समिति (1983-85) की यह सिफ़ारिश थी कि बारहवीं कक्षा के बाद माध्यमिक स्तर के शिक्षकों के प्रशिक्षण की अवधि पाँच वर्ष होनी चाहिए ताकि उन्हें सामान्य व व्यवसायिक शिक्षा साथ-साथ दी जा सकें। शुरू में चार वर्ष का एकीकृत कोर्स चलाया जाए। इसमें यह भी सुझाव दिया गया था कि विज्ञान और कला संबंधी कॉलेजों में एक शिक्षा विभाग की भी स्थापना होनी चाहिए ताकि विद्यार्थी शिक्षक-शिक्षा के विषय में पढ़ सकें। इसके साथ शिक्षक केंद्रों का विचार भी सामने रखा गया था जिसे एक मिलन मंच की तरह लिया जाए, जहाँ लोग इकट्ठे हों और अपने अपने अनुभवों पर विचार-विमर्श करें। इसका सुझाव था कि शिक्षक शिक्षावकाश में ज्ञान के केंद्रों की यात्रा पर जा सकते हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) ने अध्यापक शिक्षा को पूर्ण रूप से बदलने व इसकी समीक्षा का सुझाव दिया और आगे तीन और सुझाव दिए - (1) अध्यापक शिक्षा एक निरंतर प्रक्रिया है। सेवापूर्व व सेवारत अध्यापक शिक्षा एक दूसरे से जुड़े हैं और इनको अलग नहीं किया जा सकता। (2) अध्यापक शिक्षा के नये कार्यक्रम राष्ट्रीय शिक्षा नीति के मुख्य बिंदुओं के अनुसार हों। (3) राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अनुसार ही अध्यापक शिक्षा के नये प्रशिक्षण संस्थान हों और उसी के अनुसार संस्थानों को मजबूती प्रदान की जाए। यह भी सुझाव दिया गया कि केंद्र की सहायता से अध्यापक शिक्षा के पुनर्गठन व पुनर्निर्माण

की योजना बनाई जाए जिसमें अध्यापकों के लिए अभिमुखीकरण व प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करने का प्रावधान हो और अध्यापकों के सतत् ज्ञान, योग्यता व कौशल में वृद्धि के लिए अच्छे संस्थान, अकादमिक व टैक्नीकल संसाधन उपलब्ध कराए जाएँ। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) ने सेवापूर्व और सेवाकालीन शिक्षक शिक्षा को एक सतत् प्रक्रिया में जोड़ दिया। इसने हर ज़िले में ज़िला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान (डाईट) की कल्पना की। 250 शिक्षा महाविद्यालयों का दर्जा बढ़ाकर उन्हें शिक्षक-शिक्षा महाविद्यालय (कॉलेज ऑफ़ टीचर एजुकेशन) बनाने के लिए सिफ़ारिश की। साथ ही 50 उच्च शिक्षा अध्ययन संस्थान (इंस्टीट्यूट ऑफ़ एडवांस्ड स्टडी इन एजुकेशन) स्थापित करने के लिए कहा और राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषदों को मजबूत किए जाने की बात भी कही।

आचार्य राममूर्ति समीक्षा समिति (1990) ने रिफ़ेशर कोर्स आदि को शिक्षकों की विशेष आवश्यकताओं से जोड़े जाने की संस्तुति की और सुझाव दिया कि मूल्यांकन और उसके बाद फॉलोअप की गतिविधियाँ भी इस योजना का हिस्सा बना दी जाएँ। सेवाकालीन कार्यक्रमों के लिए दूरस्थ शिक्षा व्यवस्था बनाई जाए जिसमें दूरदर्शन, रेडियो, प्रिंट मीडिया का प्रयोग किया जाए और फेस-टू-फेस कार्यक्रमों का भी प्रावधान हो। परंतु समिति ने यह भी सुझाया कि अध्यापक शिक्षा की पहली डिग्री पत्राचार द्वारा नहीं देनी चाहिए।

यशपाल समिति की रिपोर्ट (1993) “शिक्षा बिना बोझ के में लिखा है कि शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम की कमी के कारण स्कूलों में शिक्षण की गुणवत्ता असंतोषजनक रही है।” इन प्रशिक्षण

कार्यक्रमों का पाठ्यक्रम स्कूल की बदलती परिस्थितियों के अनुकूल होना चाहिए। इन कार्यक्रमों में इस बात पर बल देना चाहिए कि प्रशिक्षणार्थियों में स्व-अधिगम और स्वतंत्र-चिंतन की योग्यता का विकास हो सके।

सन् 1993 में राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् संवैधानिक रूप में पार्लियामेंट के एक्ट से स्थापित की गई। ताकि देश में अध्यापक शिक्षा के मापदंडों व मानकों का निर्धारण व रखरखाव किया जा सके। सन् 1998 में एन.सी.टी.ई ने अध्यापक-शिक्षा पाठ्यक्रम की रूपरेखा तैयार की जिसमें विद्यालयी शिक्षा के विभिन्न स्तर पर अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रमों की चर्चा की गई है। इसने बी.एड. कार्यक्रम की अवधि एक वर्ष से दो वर्ष करने का सुझाव दिया है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने भी 1990 तथा 2001 में मॉडल अध्यापक शिक्षा का पाठ्यक्रम बनाया तथा सन् 2006 में एन.सी.टी.ई व एन.सी.ई. आर.टी. के सहयोग से अध्यापक शिक्षा का पाठ्यक्रम बना है जिसको अंतिम रूप देने से पहले विभिन्न संस्थानों से सुझाव लिए जा रहे हैं।

इन सभी प्रयासों के बावजूद अध्यापक शिक्षा में अपेक्षित गुणात्मक विकास नहीं हो सका है और कई समस्याएँ व चुनौतियाँ इससे जुड़ी हैं जिनकी इस लेख में चर्चा की गई है। इनका समाधान किए बिना अध्यापक शिक्षा में सुधार लाना कठिन है।

अध्यापक-शिक्षा की चुनिंदा समस्याएँ एवं चुनौतियाँ

- भारत सरकार ने केंद्र की सहायता से अध्यापक शिक्षा योजना के अंतर्गत सभी राज्यों में लगभग 580 जिला शिक्षा व प्रशिक्षण संस्थान,

104 शिक्षक शिक्षा महाविद्यालय व 31 उच्च शिक्षा अध्ययन संस्थान स्थापित किए हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) के अनुसार ये संस्थान अध्यापक-शिक्षा में गुणात्मक सुधार लाने में सहायक सिद्ध होंगे और अध्यापकों को सेवापूर्व व सेवाकालीन प्रशिक्षण निरंतर रूप से प्रदान करेंगे। परंतु ये संस्थान जिन उद्देश्यों के लिए बने थे वे पूरा नहीं कर पा रहे हैं। इनमें से ज्यादातर संस्थान तो केवल सेवापूर्व अध्यापक प्रशिक्षण ही कर रहे हैं और उन्होंने केवल अपने संस्थानों का नाम ही बदला है। इन संस्थानों में शोध का कार्य न के बराबर है। इस योजना के तहत राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषदों को भी वित्तीय सहायता दी गई परंतु इन संस्थानों में भी कोई खास सुधार नहीं हुआ। इस योजना की समीक्षा व पुनर्विचार की आवश्यकता है ताकि सभी संस्थान निर्धारित उद्देश्यों के अंतर्गत कार्य कर सकें और अध्यापक शिक्षा में सुधार ला सकें।

- हमारे देश में माध्यमिक स्तर पर अध्यापक शिक्षा में चार मॉडल हैं। पहला मॉडल चार वर्ष का एकीकृत बी.एड. (विज्ञान और कला में स्नातक के साथ में) और दूसरा दो वर्ष का बी.एड. कोर्स है। यह दोनों कोर्स एन.सी.ई. आर.टी. के क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान अजमेर, भोपाल, भुवनेश्वर व मैसूर में चल रहे हैं। तीसरा, एक वर्ष का बी.एड. बाकी देश के सभी विश्वविद्यालयों में चल रहा है। चौथा, दो वर्ष का बी.एड. इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली में दूरस्थ शिक्षा के तहत चल रहा है। इन सभी प्रारूपों में

सिद्धांत और अभ्यास (theory and practice) एकीकृत नहीं है। इसके साथ विषयवस्तु व शिक्षाशास्त्र (content and pedagogy) का भी एकीकरण नहीं है। सभी तरह के मॉडलों की समयावधि अलग-अलग है। पाठ्यक्रम में सूचना तथा संचार प्रौद्योगिकी (आई.सी.टी.) का प्रयोग नहीं के बराबर है। इन सभी मुद्दों का अनुसंधान व शोध के माध्यम से हल ढूँढ़ना चाहिए ताकि बी.एड. कार्यक्रम से मननशील शिक्षक (reflective teacher) तैयार हो सकें।

- अध्यापक शिक्षा व विद्यालयी शिक्षा का आपस में तालमेल नहीं है। सेवापूर्व अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम में विद्यार्थियों व अध्यापकों की आवश्यकताओं के बारे में बहुत कम चर्चा की गई है। सेवापूर्व अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम को राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 के अनुसार बदला जाए ताकि दोनों पाठ्यक्रमों में सामंजस्य हो सके और विद्यार्थियों की आवश्यकतानुसार अध्यापक शिक्षा को एक नया दृष्टिकोण दिया जा सके।
- अध्यापक शिक्षा के आँकड़ों के लिए कोई पुख्ता प्रबंध व्यवस्था नहीं है। इसके बिना अध्यापकों की संख्या, पाठ्यक्रम की स्थिति, पठन पाठन की विभिन्न विधियाँ, मूल्यांकन विधियाँ व अन्य महत्वपूर्ण मुद्दों के बारे में जानकारी कहीं एक जगह उपलब्ध नहीं है। बिना आँकड़ों के, आवश्यकतानुसार अध्यापक-शिक्षा में कार्यक्रम तैयार करने में कठिनाई महसूस की जाती है। आधुनिक तकनीकी के प्रयोग द्वारा सूचनार्थ व्यवस्था तैयार की जाए

जिससे सभी स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय इत्यादि का आपस में तालमेल हो और ऐसी सुविधा हो कि अध्यापक शिक्षा से संबंधित सभी आंकड़े एक जगह उपलब्ध हो और नेटवर्क तथा संपर्क व्यवस्था बनाई जाए। अध्यापक शिक्षा में इस व्यवस्था के आधार पर समय समय पर नये कार्यक्रम तैयार किए जाएँ।

- अध्यापक-शिक्षा के पाठ्यक्रम की रूपरेखा राष्ट्रीय स्तर पर एन.सी.ई.आर.टी., एन.सी.टी.ई व विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तीन संस्थानों द्वारा तैयार की जाती है। इन तीनों संस्थाओं का आपस में तालमेल नहीं है। इन तीनों संस्थानों का आपस में तालमेल बढ़ाए जाने की आवश्यकता है ताकि अध्यापक-शिक्षा के पाठ्यक्रम की रूपरेखा सही दिशा में बने और अध्यापक-शिक्षा के मुख्य बिंदुओं को सभी पाठ्यक्रम प्रारूपों में दर्शाया जा सके।
- हमारे देश में बी.एड. की सामान्य डिग्री दी जाती है जिससे भावी शिक्षक प्राइमरी से लेकर उच्चतर माध्यमिक स्तर तक स्कूलों में शिक्षण कार्य कर सकता है। प्रत्येक स्तर पर विशेष प्रकार के ज्ञान व कौशलों की आवश्यकता होती है। इस बी.एड. सामान्य की जगह बी.एड. डिग्री हर स्तर पर अलग-अलग होनी चाहिए और उसी स्तर के अनुसार अध्यापक तैयार किए जाने चाहिए। इसी तरह स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा, कला शिक्षा में भी अलग से अध्यापक तैयार किए जाने चाहिए।
- उच्च शिक्षा में अध्यापन के लिए अध्यापक-शिक्षा नहीं दी जाती। किसी भी विषय में मास्टर डिग्री के बाद उच्च शिक्षा में प्रवक्ता

बना जा सकता है और अपना विशिष्ट विषय पढ़ाया जा सकता है। परंतु हर विषय को पढ़ाने का एक विशेष शिक्षाशास्त्र होता है। हर विषय का ज्ञान व कौशल भी भिन्न होता है। उच्च शिक्षा में भी अध्यापक शिक्षा को शुरू किया जाए ताकि प्रवक्ता अपने विषय को पेशेवर ढंग से पढ़ाने के लिए तैयार हो सके।

- सेवाकालीन शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए कोई स्थायी योजना नहीं है जिससे कि अध्यापकों को प्रशिक्षण लगातार सुचारू रूप से दिया जा सके। ज्यादातर प्रशिक्षण कार्यक्रम तदर्थ रूप से आयोजित किए जाते हैं। इससे सभी अध्यापकों को आवश्यकतानुसार प्रशिक्षण नहीं दिया जाता। सेवार्त अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए एक योजना बनाई जाए जिसके तहत सभी प्राध्यापकों को सुचारू व सुसंगठित रूप से समय-समय पर प्रशिक्षण दिया जा सके ताकि वे प्रोफेशनली योग्य बन सकें।
- अधिकतर प्रशिक्षण कार्यक्रमों में प्रायः आमने-सामने (face-to-face) प्रक्रिया का प्रयोग किया जाता है जिसमें एक समय में बहुत कम अध्यापकों को प्रशिक्षण मिल पाता है। साथ ही इस तरह के प्रशिक्षण कई स्तरों पर आयोजित किए जाते हैं। परंतु कई स्तरों पर प्रशिक्षण में सूचनाएँ व ज्ञान कई बार गलत ढंग से प्रस्तुत हो जाती हैं। इसलिए अध्यापक प्रशिक्षण में दूरस्थ विधि का भी प्रयोग करना चाहिए ताकि इस विधि द्वारा ज्यादा संख्या में अध्यापकों व प्राध्यापकों को प्रशिक्षण दिया जा सके। इसके साथ ही विभिन्न स्तरों पर प्रशिक्षणों की आवश्यकता

भी नहीं होगी और सभी केंद्रों पर एक जैसा प्रशिक्षण दिया जा सकेगा। इस माध्यम के लिए टेलीकांफ्रेंसिंग विडियोकांफ्रेंसिंग का प्रयोग किया जा सकता है। एन.सी.ई.आर.टी. ने इस माध्यम से विभिन्न राज्यों के अध्यापकों व प्राध्यापकों के लिए सन् 1996 से अब तक कई प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए हैं। दूसरे संस्थान भी इन तकनीकों का प्रयोग कर रहे हैं। परंतु इस प्रणाली का प्रयोग व्यापक रूप से सभी संस्थानों द्वारा किया जाना चाहिए।

- राष्ट्रीय व राज्य स्तर के संस्थानों में बहुत प्रकार की प्रशिक्षण सामग्री उपलब्ध है। परंतु यह सामग्री इन संस्थानों तक ही रह जाती है और यह उन स्कूलों व संस्थानों तक नहीं पहुँच पाती जो देश के दुर्गम स्थानों में स्थित हैं। इस प्रकार की सामग्री को देश के दूर-दूर तक बसे सभी संस्थानों में भेजा जाए और एक ऐसी योजना बनाई जाए जो सुचारू रूप से कार्य करे ताकि सभी संस्थानों को शिक्षण व प्रशिक्षण सामग्री उपलब्ध हो सके।
- प्रायः अध्यापक-शिक्षा में अनुसंधान व नये प्रयोगों का योजनाबद्ध तरीके से प्रचलन नहीं है और उन्हें प्रोत्साहन भी नहीं दिया जा रहा है। अध्यापक-शिक्षा में नये-नये प्रयोग किए जाने चाहिए ताकि शिक्षा जगत से जुड़ी समस्याओं का समाधान हो सके और समय-समय पर शैक्षिक प्रक्रिया में सुधार भी लाया जा सके। इसके साथ ही अध्यापक-शिक्षा कार्यक्रमों के सतत् मूल्यांकन की भी आवश्यकता है ताकि सेवापूर्व व सेवाकालीन

प्रशिक्षणों में लगातार सुधार प्रक्रिया जारी रहे। निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि विभिन्न आयोगों व समितियों जिनकी चर्चा सेवाकालीन प्रशिक्षण के बाद प्रशिक्षणों के प्रभाव का अध्ययन किया जाए और देखा जाए कि प्रशिक्षण से स्कूल प्रक्रिया में कुछ सुधार हुआ या नहीं। इस पेपर में की है, के सुझावों को दृढ़तापूर्वक क्रियान्वित किया जाए तो अध्यापक शिक्षा की चुनौतियों का सामना किया जा सकेगा। इसके पुनर्निमित्त किए जाने की आवश्यकता है कि वे साथ ही उपर्युक्त विभिन्न सुझावों को क्रियान्वयन करने के लिए योजनाबद्ध कार्यक्रम बनाए जाएँ ताकि अध्यापक शिक्षा की समस्याओं व चुनौतियों क्षेत्र विशेष के संदर्भ में प्रासंगिक हो सकें का हल निकल सके और इनमें सुधार भी लाया (एन.सी.ई.आर.टी. 2009)। जा सके।

संदर्भ

- मिनिस्ट्री ऑफ एजुकेशन, 1948. रिपोर्ट ऑफ दी यूनिवर्सिटी एजुकेशन कमीशन, गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया, नयी दिल्ली
1952. रिपोर्ट ऑफ दी सैकेंड्री एजुकेशन कमीशन, गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया, नयी दिल्ली
1964. एजुकेशन एण्ड नेशनल डेवलपमेंट, रिपोर्ट ऑफ दी एजुकेशन कमीशन (1964-66) गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया, नयी दिल्ली
- मानव संसाधन विकास मंत्रालय, 1986, 1992. राष्ट्रीय शिक्षा नीति, भारत सरकार, नयी दिल्ली
1990. टूवर्ड्स एन एनलाटेन्ड एण्ड ह्यूमेन सोसायटी, आचार्य राममूर्ति रिब्यू कमेटी, भारत सरकार, नयी दिल्ली
1993. शिक्षा बिना बोझ के, यशपाल कमेटी रिपोर्ट, भारत सरकार, नयी दिल्ली
1995. दी टीचर एण्ड सोसाईटी, चट्टोपाध्याय कमेटी रिपोर्ट, भारत सरकार, नयी दिल्ली
- नेशनल काउंसिल ऑफ टीचर एजुकेशन, 1998. करिकूलम फ्रेमवर्क फॉर क्वालिटी टीचर एजुकेशन, एन.सी.टी.ई., नयी दिल्ली
- एन.सी.ई.आर.टी., 2005. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005), एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली
2009. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) पाठ्यचर्या नवीकरण के लिए शिक्षक-शिक्षा राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली
- यादव, एस.के., 2003. क्वालिटी इम्प्रूवमेंट ऑफ टीचर एजुकेशन, यूनिवर्सिटी न्यूज, वॉल्यूम 41, नं. 40, अक्टूबर (06-12)
2008. इनोवेशन इन एलीमेंट्री टीचर एजुकेशन, यूनिवर्सिटी न्यूज, वॉल्यूम 46, नं. 45, नवंबर (10-16)
2009. ए स्टडी ऑफ प्री सर्विस टीचर एजुकेशन प्रोग्राम एट, सैकेंड्री स्टेज इन डिफरेंट स्टेट्स ऑफ इण्डिया, अनपब्लिशड रिपोर्ट, डी.टी.ई.ई., एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

पर्यावरण एवं पर्यावरण नीतिशास्त्र शिक्षा — एक प्रतिमान परिवर्तन

निर्मला गुप्ता*

सीमा सिंह**

पर्यावरण मात्र एक शाब्दिक एवं सैद्धांतिक अवधारणा न होकर एक वैश्विक एवं सार्वभौमिक मानवीय समस्या है जो मानव जीवन की गुणवत्ता को प्रभावित कर रहा है, जिसमें सारे विश्व की चिंता समाहित है क्योंकि पर्यावरण की समृद्धि ही संसार की समृद्धि है। अतः शोषण और विषमता जितनी कम होगी पर्यावरण उतना ही समृद्ध होगा। अपनी भावी पीढ़ी को जीवन की संपन्नता तभी सौंपी जा सकती है जब वर्तमान पीढ़ी पर्यावरण संरक्षण के लिए पूर्ण जागरूक व कटिबद्ध हो। पर्यावरण प्रदूषण के कारण मानव जीवन की गुणवत्ता प्रभावित हो रही है जिसका प्रमुख आधार भी मनोवैज्ञानिक, वैचारिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक है। अतः एक नये प्रकार का प्रदूषण वैचारिक प्रदूषण जो संपूर्ण प्रदूषण की जड़ है पर नियंत्रण कर लिया जाए तो मानव जीवन की गुणवत्ता को बनाए रखा जा सकता है। इस दिशा में 'पर्यावरण नीतिशास्त्र शिक्षा' (**Environmental Ethics Education**) एक महत्त्वपूर्ण आधारस्तम्भ हो सकता है। पर्यावरण नीतिशास्त्र के माध्यम से ही व्यक्ति में पर्यावरण के प्रति वैचारिक स्तर पर प्रदूषण के विचार को दूर किया जा सकता है। पर्यावरण नीतिशास्त्र इस बात पर बल देता है कि व्यक्ति पर्यावरण को नुकसान पहुँचाने वाली हर वस्तु को जैसे- प्लास्टिक, गोला-बारूद इत्यादि का यथासंभव पूर्ण त्याग करे। व्यक्ति स्वविवेक से संपूर्ण सृष्टि के प्रति हितकारी प्रवृत्तियाँ अपनाएँ। पर्यावरण प्रदूषण के प्रति अपने कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व का बोध सिर्फ पर्यावरण अध्ययन से संभव नहीं है बल्कि मनुष्य के अंदर इस प्रकार का दृष्टिकोण विकसित किया जाए कि उसके मन एवं मस्तिष्क में पर्यावरण के प्रति वैचारिक स्तर पर भी प्रदूषण का विचार न आए। इस दिशा में पर्यावरण नीतिशास्त्र शिक्षा प्रासंगिक हो सकती है।

*शोध छात्रा, शिक्षा संकाय, सतीशचन्द्र कालेज, बलिया, (उ.प्र.)

**शोध छात्रा, शिक्षा संकाय, राजा हरपाल सिंह महाविद्यालय, सिगरामऊ, जौनपुर, (उ.प्र.)

पर्यावरण असंतुलन आज के विश्व समुदाय के लिए एक ज्वलंत समस्या है, जिसका जनक स्वयं मानव है। वायु, जल, ध्वनि, मृदा प्रदूषण, ओजोन परत में छेद, घटता जलस्तर, बढ़ता तापमान, सिकुड़ते ग्लेशियर, बढ़ती मरुभूमि, लुप्त होते वन्य जीव, अतिवृष्टि, भू-स्खलन, नदियों का बढ़ता जलस्तर आदि प्राकृतिक प्रकोप आज के सभ्यतावादी युग के लिए बहुत बड़ी चुनौती बने हुए हैं। वैज्ञानिक तरक्की के उन्माद से ग्रस्त मानव प्रकृति का निर्मम दोहन करने में अपनी श्रेष्ठता समझ रहा है। पेड़ों की कटाई, अवैध खनन, अधिक मात्रा में जल का दोहन, पुराने वाहनों से निकलता धुँआ, मिलों की नालियों में बहती गंदगी, सड़क पर दौड़ते असंख्य वाहनों से निकलता धुँआ हमारे मानस पटल को दूषित कर रहा है। सिंह (2004)।

संयुक्त राष्ट्र संघ की 'जलवायु परिवर्तन एवं मानव स्वास्थ्य पर खतरा और समाधान' नामक रिपोर्ट में इस बात का खुलासा किया गया है कि वायु प्रदूषण के कारण एक ओर जहाँ अनेक घातक बीमारियाँ उत्पन्न हो रही हैं वहीं दूसरी वायु में बढ़ती हुई विषैली गैसों के प्रभाव से पृथ्वी के तापमान में वृद्धि (ग्लोबल वार्मिंग) का खतरा बढ़ता जा रहा है जो जलवायु परिवर्तन का प्रमुख कारण है। इस रिपोर्ट के अनुसार ग्लोबल वार्मिंग के दुष्प्रभावों के चलते विश्वभर में डेढ़ लाख लोग सन् 2000 में काल कवलित हुए। विश्व स्वास्थ्य संगठन का कहना है कि बीसवीं शताब्दी का नवाँ दशक सबसे गर्म रहा। यही नहीं पिछले वर्ष गर्मी में 20 हजार लोग लू की अधिकता के चलते मारे गए। इस रिपोर्ट के अनुसार इसी तरह CO₂ की मात्रा बढ़ती गई तो

अगली शताब्दी में पृथ्वी की सतह के तापमान में 1.4 से 5.8° सेल्सियस तक बढ़ने की भविष्यवाणी की गई है। इस कारण तापमान में होने वाली न्यूनतम वृद्धि से मानव जीवन पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों को रोक पाना असंभव होगा। आई.पी.सी.सी. अर्थात् 'इंटरगवर्नमेंटल पैनल आन क्लाइमेट चेंज' की रिपोर्ट के अनुसार 1990 की तुलना में समुद्र का जलीय स्तर 10 से 20 सेमी. तक बढ़ा है। पहाड़ों के हिमनदों की बर्फ लगातार पिघल रही है। वैज्ञानिकों के अनुसार विगत 50 वर्षों में पृथ्वी का तापमान 1° सेल्सियस बढ़ा है। अब यदि 3.6° डिग्री सेल्सियस तापक्रम और बढ़ता है तो अंटार्कटिका के विशाल हिमखंड पिघल जाएँगे (लामा, 1995)।

संयुक्त राष्ट्र ने धरती को नुकसान पहुँचाने वाली ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में कटौती के उपायों पर सभी देशों के बीच विचारों के आदान-प्रदान को सुगम बनाने के लक्ष्य से 'क्लाइमेट न्यूट्रल नेटवर्क' शीर्षक से एक ऑनलाइन सेवा प्रारंभ की है। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम United Nations Environment Programme (U.N.E.P.) के तहत ग्रीन हाउस गैसों की कटौती के विषय पर 21 जनवरी 2008 को मोनाको में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन के मौके पर संयुक्त राष्ट्र कार्यक्रम के अध्यक्ष आचिम स्टेनर ने इस सेवा का शुभारंभ किया। गत वर्ष दिसंबर 2007 में जलवायु परिवर्तन पर आयोजित सम्मेलन के बाद मोनाको का यह सम्मेलन पर्यावरण के मुद्दों पर दूसरा सबसे बड़ा सम्मेलन था जिसमें दुनिया के तकरीबन 154 देशों और सैकड़ों पर्यावरण विशेषज्ञों ने भाग लिया।

इस प्रकार पर्यावरण में परिवर्तन न केवल मन-मस्तिष्क बल्कि हमारी जीवन शैली एवं कार्यक्षमता को भी प्रभावित करता है। जनसंख्या वृद्धि एवं वैश्वीकरण से जहाँ एक तरफ पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है वहीं दूसरी ओर वैश्विक स्तर पर अनियंत्रित गरीबी, बेरोज़गारी एवं अशिक्षा की समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। उपभोक्तावादी एवं पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के कारण मनुष्य अपने भौतिक सुख साधनों के लिए प्रकृति का अनियंत्रित शोषण कर रहा है जिससे संपूर्ण पारिस्थितिकी पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है और अनेक प्रकार की नयी-नयी समस्याएँ तथा घातक बीमारियाँ उत्पन्न हो रही हैं। इसी तरह यदि पर्यावरण की समस्याएँ बढ़ती रहीं तो एक दिन पृथ्वी पर जीवन का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाएगा। ऐसे में पर्यावरण संरक्षण के उपायों पर विचार करने एवं व्यक्तिगत स्वार्थों से ऊपर उठकर पर्यावरण के ऊपर जन चेतना लाने की नितांत आवश्यकता है। तभी एक स्वस्थ, स्वच्छ एवं सभ्य समाज का निर्माण संभव है। अतः वर्तमान परिवेश में पर्यावरण शिक्षा को प्रभावी बनाने के लिए प्रतिमान परिवर्तन की आवश्यकता है जिसके लिए पर्यावरण नीति शास्त्र की शिक्षा अत्यंत प्रासंगिक हो सकती है (सिंह एंड गुप्ता, 2008)।

पर्यावरण शिक्षा

पर्यावरण शिक्षा वह शिक्षा है जो पर्यावरणीय घटकों का विस्तृत ज्ञान, पर्यावरण तथा मानव के मध्य अंतर्संबंधों एवं पारस्परिक निर्भरता का ज्ञान और पर्यावरण के प्रति संचेतना का विकास कर पर्यावरण संरक्षण की अभिवृद्धि व कौशल का विकास

करती है। ललितपुर (नेपाल) के भोलाप्रसाद लोहानी ने पर्यावरणीय शिक्षा को परिभाषित करते हुए लिखा है कि “पर्यावरणीय शिक्षा का अभिप्राय मानवीय पारिस्थितिकी एवं मानवीयता का प्रकृति के साथ संबंध स्थापन की जागरूकता विकसित करने से है।”

अंतर्राष्ट्रीय प्रकृति एवं प्राकृतिक स्रोत संरक्षण परिषद के नेवादा सम्मेलन में पर्यावरण शिक्षा की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि—

“पर्यावरणीय शिक्षा वह शिक्षा प्रक्रिया है जिसके द्वारा मानव अपनी संस्कृति तथा जैव भौतिक परिवेश के बीच पारस्परिक संबंधों की समझ तथा श्लाघा का विकास, सम्प्रत्यों का स्पष्टीकरण, कुशलताओं और अभिवृत्तियों का विकास करता है। यह शिक्षा व्यक्ति की निर्णय प्रक्रिया एवं व्यवहार संहिता में भी अपेक्षित परिवर्तन लाती है।”

न्यूजीलैंड के रेंचैपमैन के अनुसार—
“पर्यावरणीय शिक्षा का अभिप्राय सद्नागरिकता विकसित करने के लिए संपूर्ण पाठ्यक्रम को पर्यावरणीय मूल्यों एवं समस्याओं पर केंद्रित करना है ताकि सद्नागरिकता का विकास हो सके तथा अधिगमकर्ता पर्यावरण के संबंध में भिन्न, प्रेरित तथा उत्तरदायी हो सके।”

सतत् या पोषणीय विकास की शिक्षा

सतत् या पोषणीय विकास की अवधारणा का उल्लेख सर्वप्रथम 1987 में पर्यावरण एवं विकास पर गठित वैश्विक आयोग ने अपने प्रतिवेदन ‘आवर कॉमन यूचर’ के अंतर्गत किया है। इस गठित वैश्विक आयोग के अध्यक्ष नार्वे के तत्कालीन प्रधानमंत्री ग्रो हार्लेम ब्रन्टलैंड बनाए गए थे। इसी

प्रतिवेदन की सार्वभौमिकता के संदर्भ में संयुक्त राष्ट्र ने दिसंबर 2002 में सामान्य सभा से पारित अपने प्रस्ताव में 2005 से 2014 के दशक को सतत् विकास के लिए शिक्षा दशक घोषित किया है।

सतत् विकास के लिए शिक्षा का संप्रत्यय पर्यावरण शिक्षा की अवधारणा से सर्वथा भिन्न है जहाँ जागरूकता एवं अवबोध से प्रतिमान परिवर्तन संलग्नता, सहभागिता एवं समस्या समाधान के तरफ होता है। इस प्रकार सतत् विकास की अवधारणा पर्यावरण शिक्षा से अधिक व्यापक दृष्टिकोण लिए हुए है। अतः सतत् विकास के अधोलिखित उद्देश्य प्रस्तावित किए जा सकते हैं-

- (क) **पारिस्थितिकीय उद्देश्य** — इसके अंतर्गत इको तंत्र एकरूपता, जैव विविधता, क्षमता निर्वहन एवं वैश्विक मुद्दे सम्मिलित हैं।
- (ख) **सामाजिक-सांस्कृतिक उद्देश्य** — इसके अंतर्गत सशक्तिकरण, सहभागिता, सामाजिक गतिशीलता, सामाजिक समरसता, सांस्कृतिक पहचान एवं संस्थागत विकास आते हैं।
- (ग) **आर्थिक उद्देश्य** — इसके अंतर्गत आर्थिक समृद्धि, आर्थिक समानता एवं आर्थिक कुशलता समाहित है (ब्राउन लेस्टर, 1981)।

पर्यावरण नीतिशास्त्र शिक्षा

आज जब जंगली जीवन का विनाश हो रहा है, मनुष्य-मनुष्य के खून का प्यासा है। प्रकृति का अंधाधुंध शोषण किया जा रहा है तो आज नीतिशास्त्र और उसकी अवधारणाओं की जरूरत सबसे अधिक है। पशु वध पाप है, हरे पेड़ को काटना पाप है, किसी भी जीव को सताना पाप है। पाप और पुण्य की सीमा रेखाओं को समझे बिना हम पर्यावरण के

सत्य को नहीं समझ सकते। इसे समझना है तो पर्यावरण नीतिशास्त्र का अध्ययन आवश्यक है क्योंकि पर्यावरण नीतिशास्त्र पर्यावरण के प्रति सार्वभौमिक नैतिक कर्तव्यों एवं मूल्यों का विज्ञान है। यह विज्ञान आदर्श मानवीय चरित्र को रेखांकित करता है जिसकी परिणति आदर्श मानवीय गुणों के रूप में होती है (ब्यास, 1996)।

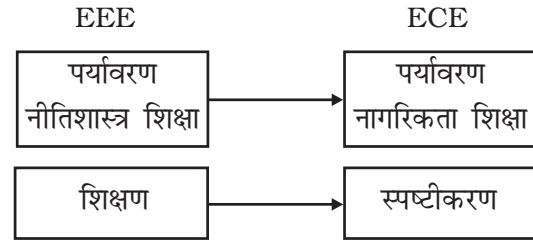
पर्यावरण नीतिशास्त्र पर्यावरण शिक्षा का एक महत्वपूर्ण अंग है। पर्यावरण नीतिशास्त्र से तात्पर्य पर्यावरणयुक्त व्यवहार, मूल्य एवं मानदंडों से है। यह एक प्रकार से पर्यावरण शिक्षा का नीतिशास्त्रीय उपागम है। जहाँ पर्यावरण शिक्षा को पोषणीय विकास के लिए शिक्षा के रूप में विश्लेषित किया जाता है वही पोषणीयता (sustainability) को एक नैतिक एवं नीतिशास्त्रीय अनिवार्यता/ आवश्यकता के रूप में परिभाषित किया जाता है जिसके आधारभूत तत्व सांस्कृतिक विविधता एवं परंपरागत ज्ञान हैं जिन्हें सम्मान देना आवश्यक हो गया है।

पर्यावरण नीतिशास्त्र शिक्षा को आत्मसात करने के लिए शैक्षिक कार्यक्रम में एकीकृत चिंतन (Collaborative thinking) को सम्मिलित करना होगा। प्रो. इयूजीन हारग्रोव का मानना है कि अमेरिका के पब्लिक स्कूलों में यदि पर्यावरण नीतिशास्त्र शिक्षा को लागू किया जाएगा तो सिद्धांतविहीनता का भय उत्पन्न होगा क्योंकि पाश्चात्य संदर्भ में नीतिशास्त्र को धर्म से साहचर्य किया जाता है जिसके कारण लोगों का मत है कि पब्लिक स्कूल जैसी पंथनिरपेक्ष शिक्षण संस्था में नीतिशास्त्र की शिक्षा नहीं देनी चाहिए। इसके लिए उपयुक्त स्थान घर और चर्च ही है। यह पाश्चात्य चिंतन का यथास्थितिवादी दृष्टिकोण है।

दूसरी ओर प्रसिद्ध चिंतक नेलनडिंग्स भी पब्लिक स्कूल में नैतिक व नीतिशास्त्रीय शिक्षा पर आपत्ति करती है कि Secular Framework में इसकी शिक्षा नहीं दी जा सकती वहीं प्राइमरी एवं माध्यमिक स्कूल स्तर पर पाठ्यक्रम में 1958 से ही जापान में नैतिक शिक्षा एक महत्वपूर्ण अंग है लेकिन जापान में भी नीतिशास्त्रीय मूल्यों की सिद्धांत-विहीनता गम्भीर समस्या है। हारग्रोव के अनुसार नीतिशास्त्रीय मूल्यों की सिद्धांत-विहीनता को रोकने हेतु पर्यावरण नीतिशास्त्र शिक्षा से पर्यावरण नागरिकता की शिक्षा के प्रतिमान परिवर्तन होना चाहिए। हारग्रोव के अनुसार नीतिशास्त्र शिक्षा एक कलंक का धब्बा है उसको सामाजिक नीतिशास्त्र के रूप में सम्मिलित कर दूर किया जा सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि नैतिकता या नीतिशास्त्र शिक्षा की जगह नागरिकता की शिक्षा (Teaching of Citizenship) दी जाए क्योंकि नागरिकता शब्द समुदाय-उन्मुख है। यह मानव समुदाय में व्यक्ति की भूमिका को विवेचित करता है।

पर्यावरण नागरिकता की शिक्षा का विचार विशेष रूप से संयुक्त राज्य में अर्थपूर्ण है जहाँ लोग नीतिशास्त्र को धार्मिक अंधविश्वास के रूप में लेते हैं। पर्यावरण नीतिशास्त्र शिक्षा जहाँ पब्लिक स्कूल में कठिन है वहीं दूसरी तरफ पर्यावरण नागरिकता की शिक्षा उपयुक्त है क्योंकि यह नैतिक शिक्षा की नकारात्मक छवि से दूर है। पर्यावरण नागरिकता की शिक्षा का दृष्टिकोण संकुचित है जबकि पर्यावरण नीतिशास्त्र शिक्षा का दृष्टिकोण व्यापक है। सिद्धांत-विहीनता की समस्या को दूर करने के लिए शिक्षक को व्यक्तिगत मूल्य निर्णय का त्याग करना होगा तथा निष्पक्षता पर बल देना होगा एवं शिक्षण

से स्पष्टीकरण के प्रतिमान परिवर्तन करना होगा। इसे अधोलिखित रूप में स्पष्ट किया जा सकता है।



प्रतिमान परिवर्तन (हारग्रोव, 1989)

पर्यावरण नीतिशास्त्र शिक्षा को सार्वभौमिक रूप से प्रदान करने में सिद्धांत-विहीनता का भय एवं मूल्य सापेक्षतावाद का खतरा प्रमुख है जिसे स्वायत्तता से दूर किया जा सकता है क्योंकि पर्यावरण नीतिशास्त्र शिक्षा में स्वायत्तता एक अहम तत्व है। इसका उद्देश्य दैनिक जीवन में पर्यावरणीय उत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार करने की इच्छा रखना है। निष्कर्षतः भारतीय चिंतन पद्धति पाश्चात्य चिंतन पद्धति से अनिवार्यतः व्यापक दृष्टिकोण रखती है। इसलिए शैक्षिक प्रक्रिया में चिंतन योग्यता के उन्नयन को उपेक्षित किया गया तो शिक्षा मात्र प्रशिक्षण की अवधारणा तक ही सीमित रह जाएगी। इसके लिए जापान जैसे देश में पोषणीय विकास (Sustainable Development) के लिए निर्देश दिया गया है कि पर्यावरणीय उत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार हेतु शिक्षा में प्रणाली/पूर्ण चिंतन, आलोचनात्मक चिंतन, विश्लेषणात्मक तर्क एवं संचार योग्यता को समन्वित किया जाए। क्योंकि पर्यावरण नीतिशास्त्र शिक्षा मात्र सैद्धांतिक अवधारणा न होकर सांस्कृतिक विविधता, परंपरागत ज्ञान एवं जीवन पद्धति है।

पर्यावरण नीतिशास्त्र के उद्देश्य

- (क) पर्यावरण नीतिशास्त्र को समझने हेतु छात्रों में सकारात्मक अभिवृद्धि का विकास करना।
- (ख) छात्रों के अंदर पर्यावरण के प्रति चेतना उत्पन्न करना।
- (ग) पर्यावरण नीतिशास्त्र को समझने हेतु सकारात्मक वातावरण सृजित करना।
- (घ) छात्रों में पर्यावरण प्रदूषण की भयावहता के प्रति नैतिक मूल्य विकसित करना।
- (ङ) छात्रों में पर्यावरण संरक्षण के लिए ज्ञान, कौशल, अभिवृद्धियों तथा मूल्यों को विकसित करना।
- (च) पर्यावरण नीतिशास्त्र के माध्यम से छात्रों में परंपरागत ज्ञान एवं सांस्कृतिक विविधता के प्रति सम्मान की भावना का विकास करना।
- (छ) पर्यावरण नीतिशास्त्र के द्वारा छात्रों को दैनिक जीवन में पर्यावरणीय उत्तरदायित्व पूर्ण व्यवहार करने योग्य बनाना।
- (ज) छात्रों को पर्यावरण नीतिशास्त्र के बारे में अवधारणात्मक एवं वैचारिक ज्ञान के लिए अभिप्रेरित करना।
- (झ) पर्यावरण नीतिशास्त्र के माध्यम से व्यक्तियों के जीवन की गुणवत्ता को उच्च स्तर पर बनाए रखना।

पर्यावरण नीतिशास्त्र की उपादेयता

पर्यावरण मात्र एक शाब्दिक एवं सैद्धांतिक अवधारणा न होकर एक वैश्विक एवं सार्वभौमिक मानवीय समस्या है जो मानव जीवन की गुणवत्ता को प्रभावित कर रहा है, जिसमें सारे विश्व की चिंता समाहित है क्योंकि पर्यावरण की समृद्धि ही संसार की समृद्धि

है। अतः शोषण और विषमता जितनी कम होगी पर्यावरण उतना ही समृद्ध होगा। अपनी भावी पीढ़ी को जीवन की संपन्नता तभी सौंपी जा सकती है जब वर्तमान पीढ़ी पर्यावरण संरक्षण के लिए पूर्ण जागरूक व कटिबद्ध हो। आज हमारे सामने प्रदूषण से भी भयानक समस्या पश्चिम की भौतिकवादी सभ्यता के फलस्वरूप होने वाले दुष्परिणामों की है जिन्हें अपनाकर हमने भारतीय मूल्यों, परंपराओं एवं संस्कृति के मूलभूत आयामों पर चोट पहुँचाई। व्यक्ति में धर्म व संस्कृति की जगह पैसे का महत्त्व बढ़ गया है। व्यक्ति में भावनाओं का प्रवाह उल्टा चल रहा है, वह अहिंसा तथा अपरिग्रह का महत्त्व भूल गया है। देश में जाति, धर्म, क्षेत्र आर्थिक व सामाजिक असमानता से पर्यावरण असंतुलित हो रहा है तथा विभिन्न प्रकार के अपराधों में वृद्धि हो रही है। आज हमें अपनी प्राचीन संस्कृति एवं मूल्यों की ओर लौटना होगा तथा स्वार्थवृत्ति को त्यागना होगा। प्रत्येक व्यक्ति को स्वार्थ से ऊपर त्याग की भावना अपनाकर आत्म नियंत्रण करते हुए सामाजिकता की भावना को महत्त्व देना होगा तभी हमारा भौगोलिक एवं सामाजिक पर्यावरण संतुलित रह सकेगा (सचदेवा, 2005)।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारी लापरवाही तथा जीवन मूल्यों एवं नैतिकता की उपेक्षा ने ही पर्यावरण को बहुत नुकसान पहुँचाया है। पर्यावरण प्रदूषण के कारण मानव जीवन की गुणवत्ता प्रभावित हो रही है जिसका प्रमुख आधार भी मनोवैज्ञानिक, वैचारिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक है। अतः एक नये प्रकार का प्रदूषण, वैचारिक प्रदूषण जो संपूर्ण प्रदूषण की जड़ है पर नियंत्रण कर लिया जाए तो मानव जीवन की गुणवत्ता को बनाये रखा जा

सकता है। इस दिशा में 'पर्यावरण नीतिशास्त्र शिक्षा' (Environmental Ethics Education) एक महत्वपूर्ण आधार-स्तंभ हो सकता है। पर्यावरण नीतिशास्त्र के माध्यम से ही व्यक्ति में पर्यावरण के प्रति वैचारिक स्तर पर प्रदूषण के विचार को दूर किया जा सकता है। पर्यावरण नीतिशास्त्र इस बात पर बल देता है कि व्यक्ति पर्यावरण को नुकसान पहुँचाने वाली हर वस्तु को जैसे - प्लास्टिक, गोला बारूद इत्यादि का यथासंभव पूर्ण त्याग करें। जीवन में भोग की जगह त्याग, प्रवृत्तिवाद की जगह निवृत्तिवाद, असंयम की जगह संयम, भौतिकता की जगह आध्यात्मिकता को अपनाएँ। पाश्चात्य संस्कृति का अंधाधुंध अनुकरण छोड़ें

तथा स्वविवेक से संपूर्ण सृष्टि के प्रति हितकारी प्रवृत्तियाँ अपनाएँ। पर्यावरण प्रदूषण के प्रति अपने कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व का बोध सिर्फ पर्यावरण अध्ययन से संभव नहीं है बल्कि मनुष्य के अंदर इस प्रकार का दृष्टिकोण विकसित किया जाए कि उसके मन एवं मस्तिष्क में पर्यावरण के प्रति वैचारिक स्तर पर भी प्रदूषण का विचार न आए। इस दिशा में पर्यावरण नीतिशास्त्र शिक्षा प्रासंगिक हो सकती है अन्यथा पोषण विकास (Sustainable Development) एक सिद्धांत एवं कल्पना की चीज बनकर रह जाएगा जिससे बहुत समय तक पृथ्वी पर मानव जीवन एवं मानव जीवन की गुणवत्ता को बनाए रखना संभव नहीं होगा।

संदर्भ

- नेलनडिंग्स, 2002. 'एजुकेटिंग मॉरल पीपुल', ए केयरिंग इन अल्टरनेटिव टू करेक्टर एजुकेशन, टीचर्स कालेज प्रेस, न्यूयार्क, पृ. 7
- लामा, महेन्द्र पी., 1995. 'इन्वारमेन्टल कन्सर्न इन साउथ एशिया', मेनस्ट्रीम, 4 नवंबर
- लेस्टर, बी, 1981. 'बिल्डिंग ए सस्टनेबुल सोसायटी', न्यूयार्क : नार्टन एण्ड कंपनी
- व्यास, हरिश्चन्द्र, 1996, 'विभिन्न विषयों के माध्यम से पर्यावरण शिक्षा', परिप्रेक्ष्य न्यूपा, नयी दिल्ली, वर्ष 3, अंक 1, अप्रैल
- सचदेवा, एन. कुमार, 2005. 'बदलते परिवेश में पर्यावरण शिक्षा की आवश्यकता', परिप्रेक्ष्य न्यूपा, नयी दिल्ली, वर्ष 12, अंक 3, दिसंबर
- सिंह, देवेन्द्र, 2004. 'पर्यावरण, पर्यावरण शिक्षा एवं संचार माध्यम', मुक्त शिक्षा, राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी संस्थान, नयी दिल्ली, जून
- सिंह, देवेन्द्र एण्ड निर्मला गुप्ता, 2008. 'सतत् विकास के परिप्रेक्ष्य में पर्यावरण नीतिशास्त्रा की उपादेयता', ट्रेड्स एंड थॉट इन एजुकेशन, इलाहाबाद, प्रकाशनार्थ स्वीकृत
- हारग्रोव, इयूजीन सी., 1989. 'फाउंडेशन ऑफ इन्वारमेन्टल इथिक्स', डेन्टम : इन्वारमेन्टल इथिक्स बुक्स, पृ. 2
- हारग्रोव, इयूजीन सी., 1996. 'दि रोल ऑफ सोशली इवाल्वड आइडियल्स इन इन्वारमेंटल इथिक्स एजुकेशन', इन कनाडा एंड द यूकोन : ए होलिस्टिक एप्रोच इनवाल्विंग द यूमनीटीज, वाल्युम 14, वाइट हार्स यूकोन कालेज, पृ. 20

माध्यमिक शिक्षा का सर्वव्यापीकरण चुनौतियाँ एवं संभावनाएँ

देवेन्द्र सिंह*

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद शिक्षा नीतियों संवैधानिक प्रावधान सरकारी व गैर सरकारी संगठनों के प्रयासों की वजह से आज हम प्रारंभिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करने के करीब हैं। और अब भारत सरकार द्वारा माध्यमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण को प्राथमिकता दी जा रही है तथा इसके लिए सर्वशिक्षा अभियान की तर्ज पर माध्यमिक शिक्षा अभियान चलाने का प्रस्ताव रखा जा रहा है। माध्यमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण से संबंधित प्रमुख चुनौतियाँ कौन सी हैं तथा उनका समायोजन कैसे किया जा सकता है ताकि माध्यमिक शिक्षा की गुणवत्ता को बनाए रखा जा सके। इस प्रकार इस पत्र में माध्यमिक शिक्षा से जुड़े सर्वव्यापीकरण मुद्दों पर प्रकाश डाला जा रहा है।

परिवर्तन एवं संवर्द्धन एक अनिवार्य प्राकृतिक परिघटना है। इस दृष्टिकोण से राष्ट्र विशेष की प्रगति एवं समृद्धि इस बात पर निर्भर करती है कि उसके नागरिक अपनी संभावनाओं की सर्वोच्चता के कितने निकट हैं। नागरिकों की अपनी संभावनाओं की सर्वोच्चता पर प्रतिष्ठित करना गुणात्मक शिक्षा प्रणाली का कार्य है क्योंकि सबका संवर्द्धन एवं विकास मनुष्य करता है लेकिन मनुष्य के अंतर्गत मानवीय गुणों का विकास शिक्षा करती है क्योंकि शिक्षा आंतरिक एवं परिभाषात्मक रूप से मूल्योन्मुखी है। यह व्यक्ति को विशिष्ट दिशा की तरफ अग्रसर करती

है। यही कारण है कि प्रत्येक राष्ट्र अपने राष्ट्रीय दर्शन के अनुरूप राष्ट्रीय लक्ष्यों एवं आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु एक राष्ट्रीय शैक्षिक तंत्र सृजित करता है। राष्ट्रीय शैक्षिक तंत्र जितना ही सुदृढ़ एवं आधुनिकतम प्रणाली उपागमों पर आधारित होगा उतना ही वह राष्ट्रीय लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायक होगा। शिक्षा द्वारा ही व्यक्ति विभिन्न संस्कारों के माध्यम से अपने शरीर, मन और आत्मा के तीनों पक्षों का समन्वित विकास कर समाज एवं राष्ट्र का उपयोगी नागरिक बनता है। इसीलिए शिक्षा को जीवन की प्रयोगशाला माना गया है (मीडिया मीमांसा-2008)।

*रीडर, शिक्षा संकाय, सतीश चन्द्र कॉलेज, बलिया (उ.प्र.).

शिक्षा का मूल उद्देश्य होता है राष्ट्र निर्माण हेतु सभ्य एवं सुसंस्कृत चरित्रवान नागरिकों का निर्माण करना। शिक्षा छात्रों में जिज्ञासा पैदा करे और प्रश्न करना सिखाए। लेकिन आज की शिक्षा व्यवस्था में विद्यार्थियों के लिए प्रश्न का कोई स्थान ही नहीं है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली राष्ट्र निर्माण से दूर होती जा रही है एवं अपेक्षाकृत सैद्धांतिक व सूचनात्मक होती जा रही है। उसका समाज व उसकी समस्याओं से संबंध-विच्छेद सा हो गया है। शिक्षा प्रणाली में समग्रता का अभाव है। इसे कई खंडों में विभाजित कर दिया गया है। प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा जैसे कई स्तर बन गए हैं। एक तरफ माध्यमिक शिक्षा के प्रति सरकार का दृष्टिकोण तटस्थ है, वहीं दूसरी तरफ प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमिकरण हो रहा है एवं उच्च शिक्षा का वैश्वीकरण हो रहा है। निष्कर्षतः माध्यमिक शिक्षा की कीमत पर प्राथमिक एवं उच्च शिक्षा का विस्तार हो रहा है एवं माध्यमिक शिक्षा, प्राथमिक एवं उच्च शिक्षा के बीच सशक्त माध्यम न होकर मध्यम श्रेणी की भूमिका निर्वाह कर रही है। इन संदर्भों में माध्यमिक शिक्षा की गुणवत्ता हेतु अनिवार्यतः सर्वव्यापीकरण सकारात्मक दृष्टिकोण हो सकता है।

माध्यमिक शिक्षा का सर्वव्यापीकरण

प्राथमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण के परिणाम से उत्साहित होकर केंद्र सरकार एवं मानव संसाधन विकास मंत्रालय सर्व शिक्षा अभियान के मॉडल पर माध्यमिक शिक्षा की गुणात्मकता हेतु माध्यमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण (Universalisation of Secondary Education) के लिए राष्ट्रीय

माध्यमिक शिक्षा अभियान (RMSA) हेतु सिद्धांततः सहमत हो गए हैं। सार्वजनिक व्यय एवं वित्त समिति (Expenditure Finance Committee) ने सर्वव्यापीकरण हेतु मिशनरी दृष्टिकोण के साथ प्रस्ताव की पुष्टि कर दी है। राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान के प्रस्ताव की मूल विशेषताएँ अधोलिखित हैं—

- (क) 15 एवं 16 वर्ष तक के सभी बालकों को 2017 तक माध्यमिक शिक्षा को उपलब्ध, प्राप्य एवं देना सुनिश्चित करना।
- (ख) 2020 तक 15 एवं 16 वर्ष तक के सभी बालकों का सार्वभौमिक ठहराव सुनिश्चित करना।
- (ग) राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान की अनुमानित लागत रु. 42705 करोड़ रुपये होगी, जिसमें से 34164 करोड़ रुपये केंद्र सरकार वहन करेगी।
- (घ) 2020 तक सार्वभौमिक ठहराव सुनिश्चित करने हेतु कुल लागत रु. 54000 करोड़ अनुमानित है।
- (ङ.) 11वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान 5 किमी. के अंदर एक माध्यमिक विद्यालय स्थापित करना।
- (च) राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान के अंतर्गत बालिकाओं, अनुसूचित जाति एवं जनजाति, अल्पसंख्यकों एवं अन्य वंचित वर्गों की शिक्षा हेतु विशेष प्रावधान होना।
- (छ) सर्व शिक्षा अभियान की तर्ज पर माध्यमिक शिक्षा से संबंधित सभी योजनाओं का राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान में विलय (दि हिन्दू-2008)।

राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान हेतु 2 लाख अतिरिक्त शिक्षक आवश्यक होंगे। वर्तमान में 1:32 के शिक्षक-छात्र अनुपात से कुल 10.82 लाख शिक्षक माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत हैं। लेकिन केंद्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड (केब) द्वारा 1:30 शिक्षक-छात्र अनुपात के दृष्टिकोण से 72000 शिक्षकों के चयन करने होंगे। इसके अतिरिक्त 53.10 लाख अतिरिक्त नामांकन हेतु 1.77 लाख अतिरिक्त शिक्षक वांछित होंगे। 2005-06 के लिए 58.86% माध्यमिक विद्यालय निजी क्षेत्र द्वारा संचालित हैं जिसमें से 31.08% निजी वित्तविहीन विद्यालय हैं। इस प्रकार राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान मिशनरी दृष्टिकोण के साथ एक सकारात्मक कदम है जो माध्यमिक शिक्षा की गुणात्मकता से प्रत्यक्षतः संबंधित है।

चुनौतियाँ

माध्यमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण से संबंधित प्रमुख चुनौतियाँ अधोलिखित हैं—

- (क) प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा में बालकों के सकल नामांकन दर में काफी विषमता है। जहाँ प्राथमिक शिक्षा के लिए यह दर 95% है, उच्च शिक्षा के लिए 10.3% है वहीं माध्यमिक शिक्षा के लिए यह दर 36% है अर्थात् 60% से अधिक छात्र माध्यमिक विद्यालयों में नामांकित नहीं हैं (वू, कौल एंड शंकर, 2005)।
- (ख) शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर आवंटित बजट प्रावधान विभेदकारी है। जहाँ शिक्षा के अंतर्गत प्राथमिक शिक्षा पर 50% खर्च किया जा रहा है वहीं माध्यमिक शिक्षा पर 30% एवं उच्च

शिक्षा पर 13% ही खर्च किया जा रहा है (तिलक, 2004)।

- (ग) कोठारी आयोग (1964-66) ने स्पष्ट सुझाव दिया था कि शिक्षा पर आवंटन का 2/3 विद्यालयी शिक्षा पर एवं 1/3 उच्च शिक्षा पर खर्च करना चाहिए। इस दृष्टिकोण से राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान की सांदर्भिक उपादेयता बढ़ जाती है।
- (घ) माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53) ने सर्वप्रथम माध्यमिक शिक्षा के अधोलिखित तात्कालिक कमियों का उल्लेख किया था—
- माध्यमिक विद्यालयों का पाठ्यक्रम छात्रों की आवश्यकताओं एवं अभिरुचियों के अनुरूप नहीं है। इसलिए छात्रों का सर्वांगीण विकास नहीं हो पाता है।
 - शिक्षण विधियों एवं पाठ्यक्रम के प्रारूप के कारण छात्रों में सहयोग की भावना, आत्म सम्मान, आत्मविश्वास, अनुशासन तथा आज्ञाकारिता जैसे गुणों का विकास छात्रों में नहीं होता है।
 - माध्यमिक शिक्षा की परीक्षा प्रणाली वैध एवं विश्वसनीय नहीं है इसलिए छात्रों की योग्यताओं, सृजनात्मकता एवं जिज्ञासा का समुचित मूल्यांकन नहीं हो पाता है।
 - माध्यमिक शिक्षा प्रणाली पुस्तकीय ज्ञान केंद्रित है। इसमें जीवन संबंधी कार्यप्रणाली तथा समस्याओं का बोध नहीं कराया जाता है।
 - माध्यमिक शिक्षा में शिक्षक-छात्र संबंध एवं अंतःक्रिया का अभाव होता है। इससे शिक्षा की गुणवत्ता प्रभावित होती है।

- कक्षाओं में शिक्षक-छात्र अनुपात अव्यावहारिक होता है। शिक्षक अपने छात्रों को पहचान नहीं पाता है।
- शिक्षण वृत्ति आकर्षक नहीं है (शर्मा, 2006)।
- (ड) माध्यमिक विद्यालयों के अध्यापन की शिक्षण विधि परंपरागत है। केवल पुस्तक प्रणाली अथवा व्याख्यान पद्धति का ही प्रचलन है अर्थात् माध्यमिक शिक्षा प्रणाली 'चाक एवं टाक' विधि तक ही सीमित है।
- (च) परीक्षा केंद्रित माध्यमिक शिक्षा के कारण अनुचित साधनों का प्रयोग एक जीवन पद्धति बन गया है इसलिए यह शिक्षकों को चयनात्मक अध्यापन एवं छात्रों को चयनात्मक अध्ययन की तरफ अभिप्रेरित करती है। सूचना एवं उपाधि को ही शिक्षा के मूल उद्देश्य का पर्याय समझा जाने लगा है।
- (छ) परीक्षा केंद्रित एवं सूचना केंद्रित होने के कारण माध्यमिक शिक्षा में सृजनात्मकता एवं जिज्ञासा का पूर्णतः अभाव है।
- (ज) केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड एवं अन्य राज्यों द्वारा आयोजित बोर्ड द्वारा परीक्षा पद्धति एवं मूल्यांकन पद्धति में विषमता का समावेश होना।
- (झ) शिक्षा की अवधारणा में परिवर्तन का होना। वर्तमान सूचना संचार युग में शिक्षा को एक 'वस्तु' माना जा रहा है, परिणामतः नैतिक मूल्यों के अभाव में माध्यमिक शिक्षा के अंतर्गत चरित्र निर्माण का स्थान धनार्जन ने ले लिया है। जिससे पूरे माध्यमिक शिक्षा तंत्र का अवमूल्यन हुआ है।
- (ञ) माध्यमिक विद्यालयों में वित्तविहीन शिक्षा प्रणाली के कार्य संस्कृति के प्रभावी होने के कारण भी माध्यमिक शिक्षा की गुणवत्ता में अप्रत्याशित रूप से संपूर्ण शैक्षिक पारिस्थितिकी में अवमूल्यन हुआ है क्योंकि शिक्षण संस्थाएँ स्थापित करना व्यवसाय का पर्याय बन गया है।
- (ट) माध्यमिक शिक्षा प्रणाली में प्रचलित परीक्षा प्रणाली एवं मूल्यांकन प्रणाली सिर्फ छात्रों के संज्ञानात्मक पक्ष तक ही सीमित है, भावात्मक एवं क्रियात्मक पक्ष पूर्णतः उपेक्षित हैं। इसलिए छात्रों में निर्णय शक्ति, तर्क शक्ति, कल्पना शक्ति एवं आलोचनात्मक मूल्यांकन आदि पक्षों का विकास नहीं हो पाता है।
- (ठ) माध्यमिक शिक्षा प्रणाली में प्रचलित शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया स्मृति के शिक्षण तक ही सीमित है। अवबोध, परावर्तन, विश्लेषण एवं संश्लेषण का पूर्णतः विलोप है अतः छात्रों को रटने पर बल मिलता है।
- (ड) शिक्षक एवं छात्रों में अध्यापन एवं अध्ययन के प्रति उदासीन दृष्टिकोण। इसके लिए शिक्षक का शिक्षण संस्था से अनुपस्थित होना एवं छात्रों का सिर्फ नामांकन एवं परीक्षा को ही शिक्षा का पर्याय मानना। उदाहरणार्थ, 10वीं कक्षा में शिक्षण संस्था में प्रवेश तो 1000 छात्रों का सैद्धांतिक रूप से है लेकिन कक्षा शिक्षण में कुल उपस्थिति लगभग 200 है।

आलोचनात्मक मूल्यांकन

माध्यमिक शिक्षा की गुणवत्ता बनाए रखने हेतु माध्यमिक शिक्षा का सर्वव्यापीकरण एक

सकारात्मक दृष्टिकोण है। सर्व शिक्षा अभियान की तर्ज पर राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान की अनुप्रयोगात्मक उपादेयता से इनकार नहीं किया जा सकता। माध्यमिक शिक्षा की चुनौतियों का अधोलिखित समाधान प्रस्तावित कर माध्यमिक शिक्षा की गुणवत्ता को बनाए रखा जा सकता है।

(क) माध्यमिक शिक्षा में अनुचित साधन प्रयोग परीक्षा पूर्व, परीक्षाकालीन एवं परीक्षा पश्चात् नकलबद्ध की सार्वभौमिक प्रवृत्ति को अभिभावक, छात्र, शिक्षक एवं समुदाय के सकारात्मक एवं सक्रिय सहयोग से हतोत्साहित किया जाए एवं संपूर्ण शैक्षिक पारिस्थितिकी में कार्य संस्कृति विकसित किया जाए।

(ख) शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को स्मृति स्तर (रटने पर जोर) के शिक्षण से अवबोध स्तर के शिक्षण के तरफ उन्मुख किया जाए।

(ग) माध्यमिक शिक्षा की शिक्षण पद्धति को सिर्फ 'चाक एवं टाक' से सूचना एवं संचार तकनीक (ई-एजुकेशन, टीचिंग एवं लर्निंग) की तरफ प्रतिमान परिवर्तन किया जाए।

(घ) माध्यमिक शिक्षा को सिर्फ सूचनात्मक, सैद्धांतिक एवं संज्ञानात्मक न बनाकर इसे भावात्मक एवं क्रियात्मक पक्षों के समन्वित विकास हेतु प्रोत्साहित किया जाए।

(ङ) माध्यमिक विद्यालयों से ट्यूशन एवं कोचिंग को पूर्णतः प्रतिबंधित कर शिक्षक-छात्रों में

कक्षा-शिक्षण के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण एवं कार्य संस्कृति विकसित की जाए।

(च) राष्ट्रीय पाठ्यचर्या प्रारूप-2005 के आलोक में अधोलिखित संस्तुतियों का प्रभावी क्रियान्वयन सुनिश्चित किया जाए—

- मांग के अनुरूप परीक्षा का आयोजन।
- पास-फेल लिखने की जगह पुनर्परीक्षा वांछनीय।
- विद्यालय में सहायता एवं परामर्श सेवा उपलब्ध कराना।
- पाठ-आधारित परीक्षा की जगह समस्या समाधान और क्षमता आधारित मूल्यांकन।
- सूचना को ज्ञान समझने की प्रवृत्ति पर नियंत्रण।
- शिक्षकों के व्यावसायिक दक्षता में सुधार से संबंधित तथ्य सेवापूर्व एवं सेवारत् प्रशिक्षण से संबंधित नीतियों में समाहित हो (एन.सी.एफ, 2005)।

(छ) माध्यमिक विद्यालयों की परीक्षा पति में आमूल-चूल परिवर्तन करके 25-40% प्रश्न लघुउत्तरीय प्रकार के एवं शेष बहुविकल्पीय प्रश्नों को समाहित कर छात्रों में तनाव को कम किया जाए।

(ज) माध्यमिक शिक्षा के लिए धन का आवंटन प्राथमिक शिक्षा की भाँति सुनिश्चित किया जाए क्योंकि सर्व शिक्षा अभियान की भाँति राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान भी माध्यमिक शिक्षा की गुणात्मकता से प्रत्यक्षतः संबंधित है।

संदर्भ

- एन.सी.एफ., 2005. एन.सी.ई.आर.टी., श्री अरविन्द मार्ग, नयी दिल्ली
- तिलक, जे.बी.जी., 2004. पब्लिक सबसिडीज इन एजुकेशन इन इंडिया, इकोनॉमिक एंड पोलिटिकल विकली दि हिन्दू - मूव टू यूनिवर्सलाइज सैकेंडरी एजुकेशन, 7 जुलाई 2008
- मीडिया मीमांसा - विश्वविद्यालयों के बदलते परिसर, माखन लाल चतुर्वेदी पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, भोपाल, वर्ष 2, अंक-1, जुलाई-सितंबर 2008
- वू, किन बिंग, विनीता कौल, एंड दीपा शंकर, 2005. हाऊ इण्डिया इज एचिविंग यूनिवर्सल इलीमेंट्री एजुकेशन, फाइनेंस एंड डेवलपमेंट, ए क्वाटरली मैगजीन ऑफ आई. एम.एफ., वा. 42, नं.-2
- शर्मा, आर.ए., 2006. भारतीय शिक्षा प्रणाली का विकास, मेरठ, आर. लाल बुक डिपो

उच्च शिक्षा की गुणवत्ता और प्रासंगिकता मुद्दे और उत्तरदायित्व

निर्भय सिंह*

उच्चतर शिक्षा को विकास की ऊँची दर और विकास के लाभ को जन-जन तक पहुँचाने का माध्यम मानते हुए यह लेख इसकी गुणवत्ता और प्रासंगिकता से जुड़े कुछ मुद्दों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता है और इस बात पर जोर देता है कि हमें इस क्षेत्र में गुणवत्ता लाने का हरसंभव प्रयत्न करना चाहिए।

शिक्षा विशेषकर उच्चतर शिक्षा एक ऐसा माध्यम है जो भारत को विकास के उच्चतर मार्ग पर अग्रसर कर सकती है। यह एक ऐसा दायित्व है जो असंख्य, मूर्त तथा अमूर्त रूपों में विकास के विविध क्षेत्रों में हमारी सभी प्रतिबद्धताओं को लाभ पहुँचाता है। शिक्षा व विकास के बीच सीधा व सरल संबंध है। उच्चतर शिक्षा मानव पूँजी में वृद्धि करती है, जो विकास की ऊँची दर संभव बनाती है तथा विकास के लाभ जन-जन तक पहुँचाती है।

प्रत्येक देश की शिक्षा व्यवस्था की विलक्षणताएँ, चुनौतियाँ एवं समस्याएँ होती हैं। भारत में उच्चतर शिक्षा में जिस प्रकार से सँख्यात्मक वृद्धि हुई उसी प्रकार से उसमें गुणात्मक हास आता गया तथा यह गुणात्मक हास ही उच्चतर शिक्षा व्यवस्था के गिरते स्तर का कारण बना। हम इसको सँख्यात्मक वृद्धि बनाम गुणवत्ता नहीं कहेंगे वरन् गुणवत्ता पूर्ण सर्व सुलभ एवं अभिगम्य शिक्षा व्यवस्था की रचना कहेंगे। क्या हमारी शिक्षा प्रणाली लोगों को

नयी स्थितियों का सामना करने और कठिन दायित्वों को पूरा करने के लिए तैयार करती है? क्या यह विद्यार्थियों को चहुँमुखी व्यक्तित्व के विकास में मदद देती है? क्या यह उनका चरित्र-निर्माण करने, उन्हें सेवानुखी, सुविचारित, दयालु और सहिष्णु, और सभी प्रकार की मतांधता तथा पक्षपात से मुक्त बनाती है? क्या यह विद्यार्थियों को भार की बहुमूल्य बौद्धिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विरासत के प्रति जागरूक बनाती है और उन्हें उस

*विभागाध्यक्ष, शिक्षा संकाय, बी.वी.एम. (पी.जी.) कॉलेज, बाह जनपद, आगरा.

पर गर्व करना सिखाती है? और साथ ही विश्व धरोहर में जो सर्वोत्कृष्ट है, उसे ग्रहण करने के लिए प्रेरित करती है? आज हमें उच्च शिक्षा की गुणवत्ता और प्रासंगिकता से जुड़े कुछ मुद्दों और उत्तरदायित्वों की ओर ध्यान आकृष्ट करना होगा जो निम्न हैं-

गुणवत्तायुक्त शिक्षा तक पहुँच — शिक्षा तक पहुँच का मूल्यांकन सिर्फ सँख्यात्मक संदर्भ में नहीं किया जा सकता। गुणवत्तापरक शिक्षा तक पहुँच भी उतनी ही ज़रूरी है जितनी कि शिक्षा तक पहुँच। मैं शिक्षा और विकास से संबद्ध कई विशेषज्ञों की इस राय से सहमत हूँ कि भारत में कालेज और विश्वविद्यालय शिक्षा की गुणवत्ता इसके मात्रात्मक विकास की गति के साथ सामंजस्य नहीं रख पाई है। प्रत्येक शैक्षिक वर्ष के प्रारंभ में यही देखने को मिलता है कि विद्यार्थी और उनके माता-पिता को अच्छे कॉलेजों में दाखिले के लिए कड़ा संघर्ष करना पड़ता है, जिनकी सँख्या बढ़ती माँग पूरी करने की दृष्टि से बहुत कम होती है।

स्वतंत्रता के बाद हमने उच्च शिक्षा के क्षेत्र में काफी विस्तार किया है लेकिन इसके बाद भी विश्व के सर्वोत्कृष्ट 20 विश्वविद्यालयों में से एक भी भारत का नहीं है। आज़ादी के 60 साल बाद भी देश के विश्वविद्यालय जाने वाले आयु वर्ग की कुल जनसँख्या के 7 प्रतिशत छात्रों को ही उच्च शिक्षा में दाखिला मिल पाता है जिससे देश में उच्च शिक्षा का विस्तार न सिर्फ़ ठहर सा गया है वरन् उसका स्तर भी गिरता जा रहा है। उच्च शिक्षा से जुड़ी विभिन्न समस्याओं द्वारा बार-बार चेतावनी दी जाती रही है कि विश्वविद्यालयों और उच्च शैक्षणिक संस्थानों की सँख्या में बढोतरी नहीं की

गई और उनकी गुणवत्ता में सुधार नहीं किया गया तो अर्थव्यवस्था की बढ़ती ज़रूरतों को पूरा करने के लिए देश में कुशल और प्रशिक्षित पेशेवरों की कमी हो जाएगी। हमें अपने विश्वविद्यालयों की ब्रैंड इमेज (छवि) में सुधार लाना चाहिए। अगर आज हमारे भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थानों (आई.आई.टी.) और प्रबंध संस्थानों (आई.आई.एम्स.) की विश्वभर में ब्रैंड वेल्यू यानी रचनात्मक पहचान कायम हुई है तो क्यों न हम देशभर के विश्वविद्यालयों और कॉलेजों के लिए ऐसी ही राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय पहचान का दावा करें। किंतु, ऐसा करने के लिए हमें आई.आई.टी. और आई.आई.एम्स. की सफलता के लिए ज़िम्मेदार कारणों को भलीभाँति समझना होगा और उनसे प्राप्त अनुभवों का लाभ उठाना होगा। मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने क्षेत्रीय इंजीनियरिंग कॉलेजों को पूर्ण केंद्र वित्त-पोषित राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थानों का दर्जा देकर उचित फैसला किया है। इस दिशा में एक अन्य कदम हमारे विश्वविद्यालयों, राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं और उद्योग के बीच एक भागीदारी विकसित करने, यानि भारत की अनुसंधान और विकास क्षमताओं में वृद्धि के लिए एक स्वर्ण त्रिभुज बनाने का होना चाहिए।

उच्चतर शिक्षा तक पहुँच — हमारे देश में कॉलेज और विश्वविद्यालय शिक्षा का ज़बरदस्त विस्तार हुआ है। आज़ादी के बाद कॉलेज और विश्वविद्यालय शिक्षा का लोकतंत्रीकरण करने में हमने काफी सफलता प्राप्त की है, जो आज ग्रामीण आबादी और अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और समाज के अन्य निम्नस्तरीय वर्गों के करीब आ गए हैं।

फिर भी हमारी यह कोशिश होनी चाहिए कि उच्चतर शिक्षा, खासकर व्यावसायिक शिक्षा का विस्तार उस स्तर तक किया जा सके, जितना विकसित देशों में है। दसवीं पंचवर्षीय योजना के दस्तावेज में इस मद पर जोर दिया गया है और सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) की 8 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर हासिल करने के लिए इसे अनिवार्य समझा गया है। उच्चतर उत्पादकता के ज़रिए उच्चतर विकास की दर का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए अनिवार्य है कि ज्ञान के आधार को समृद्ध बनाया जाए और हमारी जो कामकाजी आबादी है उसमें कुशल-श्रमिकों के प्रतिशत को बढ़ाया जाए।

उच्चतर शिक्षा का निर्यात — भारत में उच्चतर शिक्षा के निर्यात की संभावनाएँ हैं। मैंने हाल ही में अखबारों में पढ़ा था कि पिछले वर्ष भारत से लगभग 72000 विद्यार्थी अमेरिका के विश्वविद्यालयों में अध्ययन के लिए भेजे गए। इसके साथ ही भारत विदेश में अध्ययन के लिए सबसे अधिक विद्यार्थी भेजने वाले देश चीन से भी आगे निकल गया है। इसका अर्थ यह हुआ कि उच्च शिक्षा के लिए इतने सारे विद्यार्थियों को विदेश भेजने में देश को भारी मात्रा में विदेशी मुद्रा खर्च करनी पड़ती है।

विद्यार्थियों को बाहर नहीं भेजा जाना चाहिए। विदेश में शिक्षा के लिए जाने वाले विद्यार्थी कई तरह से हमारे राष्ट्र-निर्माण में योगदान करते हैं। किंतु मैं जिस मुद्दे की ओर ध्यान दिलाना चाहता हूँ वो यह है कि क्या हम विकासशील और विकसित देशों से बड़ी संख्या में आने वाले उन विदेशी विद्यार्थियों के लिए भारत को एक आकर्षक लक्ष्य नहीं बना सकते - जो गुणवत्तायुक्त स्कूली,

उच्च और व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त करने हमारे देश में आते हैं? इससे हमारे देश को असंख्य लाभ होंगे। सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि इस दिशा में व्यवस्थित प्रयासों से देश में उच्च शिक्षा का स्तर ऊँचा उठाने में मदद मिलेगी, जिससे भारतीय विद्यार्थियों को लाभ होगा। इस लक्ष्य को हासिल करने के लिए सरकार को अपने कायदे-कानूनों में आवश्यक परिवर्तन करना होगा।

प्रासंगिक, रोजगारोन्मुखी उच्च शिक्षा — मैंने अनेक लोगों को यह कहते हुए सुना है कि कॉलेज और विश्वविद्यालय शिक्षा में बाहरी वातावरण की ज़रूरतें पूरी करने और अवसरों का लाभ उठाने के लिए पर्याप्त लचीलापन और अनुकूलनशीलता नहीं है। उदाहरण के लिए इस तथ्य को देखिए कि भारत के सकल घरेलू उत्पाद में सेवाओं की भागीदारी निरंतर बढ़ रही है और आज यह करीब 50% हो चुकी है। आने वाले दो दशकों में लगभग 60-70% नौकरियाँ सेवा क्षेत्र में होंगी। मेरा मानना है कि हमारी उच्च शिक्षा प्रणाली इस ज़रूरत को पूरा करने के लिए समुचित रूप से तैयार नहीं है।

विश्वविद्यालयों को अपने तीन-वर्षीय बुनियादी डिग्री पाठ्यक्रम को अधिक लचीला बनाना चाहिए ताकि विद्यार्थियों को इस बात की छूट हो कि वे बुनियादी विषयों की ठोस जानकारी के साथ-साथ विभिन्न कौशलों में रोजगारोन्मुखी प्रमाण-पत्र या डिप्लोमा पाठ्यक्रम कर सकें।

उच्च शिक्षा की नीतियों की क्रियान्वयन — स्वतंत्रोत्तर भारत में उच्च शिक्षा के परिवर्तन के उद्देश्य से अनेक आयोग व समितियाँ गठित हुईं। किंतु कोई भी समस्या के समाधान के लिए प्रभावी नहीं हुई। उच्च शिक्षा व्यवस्था में आई

विकृतियों के लिए शिक्षकों व विद्यार्थियों को ही विशेष दोष दिया जाता है तथा उसमें भी अध्यापकों द्वारा दायित्व निर्वहन न करने का मूल कारण कहा गया है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यू.जी.सी.) देश के सभी विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों के स्वरूप, विकास और सुधार के लिए गठित एकमात्र संस्था है तथा वही प्राध्यापकों की नियुक्तियों के लिए मानक तैयार करती है। उच्च शिक्षा की गुणवत्ता के गिरते स्तर की समस्याओं में प्रमुख समस्या यू.जी.सी. द्वारा सही नीतियाँ न बनाना तथा उनका क्रियान्वयन है। विश्वविद्यालयों में शैक्षिक वातावरण की आधारभूमि यू.जी.सी. अलग-अलग प्रांतों में की जा रही अवैधानिक मनमानी रोकने में विफल रही है।

उच्च शिक्षा की गुणवत्ता का गिरता स्तर — अयोग्य शिक्षकों की नियुक्ति पर रोक न लगने से समूचे देश की उच्च शिक्षा की स्थिति चिंतनीय हो गई है। भेद-भाव, वर्ग-भेद, और अनुशांसा के आधार पर पद प्राप्त कर रहे शिक्षक योग्य और परिश्रमी अध्येताओं का अवसर छीनने में लगे हैं। देश में आदर्श, निष्ठावान शिक्षकों ने जो त्याग का पथ दिखलाया वह आज विलुप्त है। उच्च शिक्षा के विकास में समाज सेवा की भावना में जाति, वर्ग, व भेद से दूर होकर किया गया कार्य ही जीवंत बनता है। विश्वगुरु के पद से विभूषित भारतीय शिक्षा ज्ञान चरित्र और संस्कृति जैसे तत्वों से संबंधित है। मैकाले की शिक्षा पद्धति आज भी हमारे जीवन मूल्यों को क्षीण करके हमें अपने मूल में ही भटका रही है। शिक्षा में राष्ट्रीय बोध के बिना देश का सर्वांगीण उत्थान, सामाजिक समरसता व अखंडता का विकास असंभव है।

बहुत से विद्यार्थियों के अनुभव इस ओर इशारा करते हैं कि विश्वविद्यालयों की चयन समितियों में सम्मिलित कतिपय विभागाध्यक्ष और संकाय सदस्य अभ्यार्थियों के शोध कार्यों को कई बार अपना नाम देकर फ़ायदा उठाते हैं और दूसरी ओर उस अभ्यार्थी के पद पर आने में बाधा डालते हैं। शोध तथा श्रम शून्य बन जाता है। निजी क्षेत्रों में स्थापित उच्च शिक्षा संस्थान भी कम ज़िम्मेवार नहीं है। इन शिक्षा संस्थानों में शिक्षकों की नियुक्तियाँ अब व्यावसायिक हो रही हैं। इसका मुख्य कारण शिक्षा का व्यवसायीकरण नहीं है बल्कि शिक्षा का व्यापारीकरण है। यहाँ पर कम वेतन में अयोग्य शिक्षकों का चयन प्राथमिकता पर होता है। इस प्रकार वर्तमान में शिक्षा की मौलिकता सही अर्थों में खो गई है। जब तक हम गुणवत्ता के लिए कोई सख्त कदम नहीं उठाते तब तक बाज़ारोन्मुख निजी शिक्षण संस्थाएँ शिक्षा का खुला व्यापार करती रहेगीं। दूसरी ओर सरकारी शिक्षण संस्थाएँ अराजकता और अव्यवस्था से घिरती रहेगीं।

महंगी शिक्षा का भार — जब दुनिया के तमाम देश उच्च शिक्षा — तकनीकी शिक्षा और शोध के क्षेत्र में अपना विश्वस्तरीय ढाँचा तैयार कर रहे हैं तब हम अपने देश की शिक्षा को दस गुना महँगी करने की योजना बना रहे हैं जो युवा मध्यम वर्ग के साथ खिलवाड़ है। धन के अभाव में प्रतिभाओं का हनन होता है। भारत अभी इतना सक्षम नहीं हुआ है कि वह महँगी शिक्षा का भार वहन कर सके। आने वाले ज्ञान का इस युग में उच्च शिक्षित विशाल मानव संसाधन हमारा हथियार बन सकता है और हम उसे ही थोथरा बनाने का प्रयास कर रहे हैं।

विद्यार्थियों की बढ़ती संख्या — ज्ञान आयोग की राष्ट्रीय ज्ञान आयोग भारत के प्रधानमंत्री की एक उच्चस्तरीय संस्था है जिसका उद्देश्य भारत को ज्ञानवान समाज बनाना है। राष्ट्रीय ज्ञान आयोग का ध्यान शिक्षा से लेकर ई-प्रशासन तक ज्ञान तंत्र के पाँच प्रमुख क्षेत्रों पर केंद्रित है।* कि महत्वपूर्ण सिफारिश यह है कि अगर 2015 तक देश में विश्वविद्यालय जाने वाले आयु वर्ग की कुल जनसंख्या के 15% विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा में दाखिला देने का लक्ष्य हासिल करना है तो विश्वविद्यालयों की कुल संख्या 1500 तक ले जानी होगी जो वर्तमान में 350 के लगभग है। इसका अर्थ यह हुआ कि अगले वर्षों में विश्वविद्यालयों की संख्या में चार गुना वृद्धि करनी होगी जो इतना आसान नहीं है क्योंकि उच्च शिक्षा पर जी.डी.पी. का 1.52% खर्च करने का लक्ष्य 10वीं पंचवर्षीय योजना में रखा गया, जो नये विश्वविद्यालयों के खोलने में बाधा है। 11वीं पंचवर्षीय योजना में 2.5 लाख करोड़ रूपये खर्च करने का प्रावधान किया गया है जिसमें 30 नये केंद्रीय विश्वविद्यालय, 370 महाविद्यालय, 08 आई.आई.टी., 05 राष्ट्रीय स्तर के विज्ञान संस्थान हैं।

परीक्षा प्रणाली — उच्च शिक्षा में गुणात्मक सुधार लाने हेतु हमें शिक्षक को उसकी वास्तविक भूमिका में लौटाना होगा तथा वर्तमान परीक्षा प्रणाली पर भी पुनर्विचार करना होगा। हमें ऐसी मूल्यांकन पद्धति ही अपनानी होगी जो विद्यार्थी का सही मूल्यांकन कर सके। इसके लिए सेशनल मूल्यांकन पद्धति ही

सही मूल्यांकन कर सकती है। अध्यापकों को निष्पक्ष होकर ही इस पद्धति को अपनाना होगा। इसके अलावा विद्यार्थी के शैक्षिक स्तर का ही नहीं सह-शैक्षिक प्रवृत्तियों का भी मूल्यांकन आवश्यक है। आजकल जो परीक्षा हो रही है उसमें केवल विद्यार्थी की स्मरण शक्ति का ही परीक्षण होता है।

शिक्षा में सुधार — अंतिम उपाय जिस ओर मैं आपका ध्यान दिलाना चाहूँगा वह है शिक्षा में सुधार की तत्काल आवश्यकता। इसमें अनेक कार्य शामिल हैं, जिनमें से कुछ की ओर मैं पहले ही इशारा कर चुका हूँ। फिर भी मैं अतिरिक्त कार्यों की ओर ध्यान दिलाना चाहूँगा।

- सबसे पहले उच्च शिक्षा में फ़ीस के ढाँचे का मुद्दा है जो गैर व्यावसायिक विषयों में बहुत कम है। केंद्र और राज्य सरकारें उन विद्यार्थियों को भी उच्च शिक्षा में सब्सिडी दे रही हैं, जिनका प्राइवेट ट्यूशन खर्च और जेब खर्च कॉलेज फ़ीस से कई गुना अधिक है। इतना जरूर है कि उच्च और व्यवसायी शिक्षा गरीब और जरूरतमंदों की पहुँच में होनी चाहिए और उसकी लागत वहन करने के लिए उन्हें मुख्य रूप से “योग्यता एवं आय” पर आधारित छात्रवृत्तियाँ दी जानी चाहिए। शिक्षा के लिए ऋणों के दायरे का भी तेजी से विस्तार किया जाना चाहिए। किंतु अगर हम उनसे जो महंगी शिक्षा ग्रहण करने की क्षमता रखते हैं, से शिक्षा का उचित मूल्य नहीं लेंगे, तो हम वंचितों को व्यापक रूप में शिक्षा कैसे उपलब्ध करा पाएँगे?

*राष्ट्र के नाम प्रतिवेदन 2007, भारत सरकार.

- शैक्षिक संस्थानों के प्रबंध में भी तत्काल सुधारों की आवश्यकता है। आमतौर पर हमारे कुलपतियों, सीनेट सदस्यों, कॉलेज के प्राचार्यों को अपना कीमती समय और ऊर्जा रोजमर्रा के गैर-ज़रूरी कार्यों में ही खर्च करनी पड़ती है न कि ऐसे कार्यों पर जिनसे बेहतर शैक्षिक नतीजे प्राप्त किए जा सकें। ऐसा आंशिक रूप से नौकरशाही को महत्व देने तथा सरकारी विभागों की उत्कृष्टता-विरोधी संस्कृति अपनाने के कारण होता है। इसके लिए हमें विदेशों में अपनाई जा रही प्रबंध की सर्वोत्कृष्ट सराहनीय पद्धतियों से सबक लेना चाहिए।
- प्रबंध संबंधी के कुछ अन्य मुद्दे भी हैं। गुणवत्तायुक्त शिक्षा अधिक संसाधनों और बेहतर सुविधाओं मात्र से संभव नहीं है। यह शिक्षकों और छात्रों के दृष्टिकोण पर भी उतनी ही आधारित है। आज विश्वविद्यालयों एवं कॉलेजों में व्याप्त अनुशासनहीनता एवं लापरवाही इसमें बाधा बनते जा रहे हैं। विश्वविद्यालय और कॉलेज आज राजनीति का अखाड़ा बन गए हैं। अतः इसे नियंत्रित करने के लिए सरकार का नियंत्रण होना चाहिए। अगर शिक्षक उद्देश्य और प्रतिबद्धता की भावना नहीं दर्शाएंगे तथा वे शैक्षिक उत्कृष्टता के लिए ऊँचे मानदंडों का निर्धारण और माँग नहीं करेंगे तो विद्यार्थियों से इससे भिन्न उम्मीद कैसे कर सकते हैं। अतः इस मुद्दे में शिक्षा से जुड़े सभी पक्षों का आत्ममंथन करने की आवश्यकता है।
- हाल में राष्ट्रीय ज्ञान आयोग ने प्रधानमंत्री को उच्च शिक्षा के क्षेत्र में जो रिपोर्ट सौंपी है उसमें इंगित है कि आज़ादी के साठ साल बाद भी देश में विश्वविद्यालय जाने वाले 7 प्रतिशत लोग ही उच्च शिक्षा प्राप्त करते हैं जिसका कारण है कि उच्च शिक्षा पर जी.डी.पी. का 1.52 प्रतिशत ही खर्च होने का लक्ष्य जो पूरा नहीं हो पा रहा है। वर्तमान में 0.34 प्रतिशत जी.डी.पी. ही सरकार खर्च कर रही है। अतः उच्च शिक्षा में सार्वजनिक निजी क्षेत्र की भागीदारी बनाने के अलावा जी.डी.पी. की पूरी मात्रा खर्च की जाए।
- विद्यार्थियों की बढ़ती संख्या को नियंत्रित करने के लिए उच्च शिक्षा के क्षेत्र में ई-शिक्षा को महत्व देना चाहिए अतः इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय (इग्नू) को इस कार्य के लिए और विस्तृत करना चाहिए।
- किसी देश की उच्च शिक्षा की स्थिति को ही उसके भविष्य का सर्वाधिक महत्वपूर्ण संकेत कहा जाता है। पं. जवाहर लाल नेहरू ने कहा था “हमारे विश्वविद्यालय ठीक रहेंगे तो राष्ट्र भी ठीक रहेगा” अतः इनमें शिक्षकों की चयन प्रक्रिया को इस प्रकार से व्यवस्थित किया जाए कि योग्य, कर्मठ, जुझारू, तार्किक क्षमतायुक्त शिक्षकों का चयन हो।
- शिक्षकों में दायित्व की पूर्ति हेतु भयमुक्त तनाव रहित वातावरण का निर्माण शिक्षकों के कार्य में आवश्यक हस्तक्षेप का अभाव अतिरिक्त कार्यों के बोझ को कम करना। इसके लिए सरकार एवं समाज को प्रयास करना चाहिए।
- जुझारू कर्मठ शिक्षकों हेतु अतिरिक्त पुरस्कार आदि की व्यवस्था, पद प्राप्ति का मानक

पारदर्शक व स्पष्ट हो ताकि उन्हें प्रेरणा मिले जो शिक्षकों को दायित्वों के निर्वाहन में बढ़ावा दें।

- पाठ्यक्रम निर्धारित करने में जबतक योग्य और अध्यव्यवसायी प्राध्यापकों का वर्चस्व नहीं होगा तब तक उच्च शिक्षा में गुणात्मक सुधार नहीं किया जा सकता। चूँकि योग्य शिक्षकों द्वारा ही योग्य छात्रों का निर्माण होता है अतः सारा दोष छात्रों को देना उचित नहीं।
- छात्रों की अनियंत्रित संख्या के प्रवेश पर रोक लगानी चाहिए क्योंकि इससे शिक्षक व शिक्षार्थी का निकट संपर्क प्रभावित होता है। जो शिक्षार्थी के व्यक्तित्व विकास में बाधक है।

निष्कर्ष

उच्च शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाने हेतु हमारा उत्तरदायित्व है कि हमें शिक्षक को उसकी वास्तविक

भूमिका में लौटाना पड़ेगा तथा छात्रों की बढ़ती संख्या को देखते हुई हमें वर्तमान परीक्षा प्रणाली पर पुनः विचार करना होगा। यदि उच्च शिक्षक संस्थान एवं विश्वविद्यालय बौद्धिक संस्थानों के रूप में अपना अस्तित्व कायम रखना चाहते हैं तो उन्हें अपने आधारभूत लक्ष्य, शिक्षक-प्रशिक्षण, अध्यापन शोध, ईमानदारी, कर्तव्यनिष्ठा, पारम्परिक शैक्षणिक मूल्यों के प्रति प्रतिबद्ध होना चाहिए।

आज अनुशासनहीनता, राजनीतिक हस्तक्षेप, नीरस पाठ्यक्रम आदि अनेक ऐसे मुद्दे हैं जो शिक्षा जगत की गुणवत्ता के हास का मुख्य कारण हैं। वर्तमान में शिक्षा की मौलिकता अर्थ की मौलिकता में ही खो गई है। विश्वविद्यालयों में पठन-पाठन संगोष्ठियाँ व्याख्यानमालाएँ, कार्यशालाएँ एवं पाठ्येत्तर गतिविधियों का समावेश किया जाए एवं शिक्षक नवीन पाठ्य सामग्री का प्रयोग कर उच्चस्तरीय विषय-वस्तु का अधिकतम ज्ञान प्राप्त कर गुणवत्ता पूर्ण उच्च शिक्षा के संवाहक बन सकें।

महादेवी के गद्य साहित्य में शैक्षिक निहितार्थ एवं उसकी वर्तमान में प्रासंगिकता

सन्त कुमारी गोगना*

साहित्यकार एवं शिक्षक दोनों ही युग-निर्माता होते हैं। साहित्यकार अपनी लेखनी से आदर्श समाज के नवनिर्माण में योगदान देता है, तो शिक्षक अपने शिक्षण दायित्व के निर्वाह द्वारा कुंभकार की भाँति भावी पीढ़ी को गढ़ता है। महादेवी जी ने अपने जीवन में साहित्यकार एवं शिक्षक दोनों रूपों में अपने दायित्व का सफल निर्वाह किया। भारतीय संस्कृति की उपासिका महादेवी जी बालकों में पूर्णरूपेण भारतीयता का रंग भरने के लिए लालायित रहीं, यही कारण था कि वे प्राचीन शैक्षिक आदर्शों की पुनर्स्थापना की आकाँक्षा को मूर्तिमान करने के लिए प्रयत्नशील रहीं।

साहित्य समाज का दर्पण होने के साथ-साथ साहित्यकार की भावानुभूति का प्रकाशन भी होता है। छायावादी काव्य के सुदृढ़ आधारस्तंभ के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त महादेवी जी कवयित्री के साथ-साथ संवेदनशील लेखिका भी थीं। इसके अतिरिक्त प्राचार्या एवं शिक्षिका पद को गौरवान्वित करने के कारण शिक्षा जगत से उनका घनिष्ठ संपर्क एवं लगाव था। साहित्यकार एवं शिक्षक दोनों ही युग-निर्माता होते हैं। साहित्यकार अपनी लेखनी से आदर्श समाज के नव-निर्माण में योगदान देता है, तो शिक्षक अपने

दायित्व के निर्वाह द्वारा कुंभकार की भाँति भावी पीढ़ी को गढ़ता है। महादेवी जी ने अपने जीवन में साहित्यकार एवं शिक्षक दोनों रूपों में अपने दायित्व का सफल निर्वाह किया था।

महादेवी जी द्वारा दिए गए दीक्षांत भाषणों, (मेरे प्रिय संभाषण में संकलित) शृंखला की कड़ियाँ एवं संस्मरणों में स्थान-स्थान पर उनके शिक्षा संबंधी उद्गारों का प्रकाशन इसका साक्ष्य है कि ब्रह्मचर्याश्रम एवं गुरुकुल प्रणाली में उन्हें गहरी आस्था एवं विश्वास था।

*रीडर, शिक्षा संकाय, डी.ई.आई., दयालबाग, आगरा उ.प्र.

हमारे प्राचीन भारतीय मनीषियों ने जीवन को व्यवस्थित करने के लिए उसे चार आश्रमों में वर्गीकृत किया था। हिंदू नीतिशास्त्र के अनुसार जीवन का अंतिम लक्ष्य मोक्ष है तथा इस जीवन की महायात्रा में आश्रम पड़ाव के समान है। ब्रह्मचर्याश्रम में उपनयन संस्कार के साथ प्रवेश कर ब्रह्मचारी (विद्यार्थी) 25 वर्ष की अवस्था तक गुरु के संरक्षण में रहकर वेदाध्ययन करता हुआ आत्म संयम का जीवन व्यतीत करता था। आधुनिक समय में यही अवस्था विद्यार्थी जीवन है।

शिक्षा के विभिन्न पक्षों यथा शिक्षा की संकल्पना एवं दायित्व, विद्यार्थी-जीवन, शिक्षक-शिष्य संबंध, गुरु-दक्षिणा, शिक्षा संस्कार संबंधी उद्गारों की विस्तृत अभिव्यक्ति उनके गद्य-साहित्य में उपलब्ध है। शिक्षकों को प्राचीन शिक्षा पद्धति के आदर्श की पुनर्स्थापना हेतु उद्बोधित करते हुए, आधुनिक परिप्रेक्ष्य में उसकी सार्थकता पर उनके सटीक विचार निम्नांकित शीर्षकों में प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

शिक्षा का अर्थ

महादेवी जी ब्रह्मचर्याश्रम के समान आज भी शिक्षा को भावी जीवन की तैयारी व मोक्ष प्राप्ति का साधन स्वीकार करती हैं - “शिक्षा अपने सीमित अर्थ में जीवन के लिए तैयारी मानी जा सकती है। परंतु व्यापक अर्थ में वह जीवन का चरम उद्देश्य ही रहेगी।” (मेरे प्रिय संभाषण, पृ. 26)

इस प्रकार शिक्षा की उनकी अवधारणा सीमित अर्थ में भौतिकता एवं व्यापक अर्थ में आध्यात्मिकता का अपूर्व सम्मिश्रण है। आधुनिक परिप्रेक्ष्य में इनमें

से कोई भी पक्ष उपेक्षणीय नहीं, अपितु विकास की दौड़ में दोनों का संतुलन महत्वपूर्ण है।

शिक्षा का उद्देश्य

शिक्षा के उद्देश्यों को उन्होंने दायित्व के रूप में प्रतिपादित किया है। महादेवी जी ने अपनी कृतियों में शिक्षा के जिन तीन प्रमुख दायित्वों का प्रतिपादन किया है, वे हैं - भावी जीवन की तैयारी, पशुवृत्तियों का संयमन और प्रतिभाओं का सृजन।

शिक्षा की सैद्धांतिकता की अनुपयोगिता से वे अपरिचित नहीं थी। जीवन में स्वावलंबन हेतु शिक्षा की सार्थकता जीविकोपार्जन में निहित है। इस विचार की पुष्टि उनके इस कथन से होती है- “कुछ व्यावहारिक एवं उत्पादक शिक्षा भी मिल सके और जो कुछ सिखाया जाए, उसका संबंध बालक की रुचि के अनुकूल शिल्पकला से हो” (मेरे प्रिय संभाषण, पृ. 17)।

शिक्षा ही मनुष्य को पशु से श्रेष्ठ सिद्ध करती है। शिक्षा विहीन मानव पशु समान है। शिक्षा उसकी पशुवृत्तियों (मूल प्रवृत्तियों का मार्गन्तरीकरण कर उसे संयम के पथ पर अग्रसारित करती है। इस संदर्भ में उनका यह कथन दृष्टव्य है - “शिक्षा के क्षेत्र में समस्त अनगढ़ पशुवृत्तियों को संयमित तथा मानवीय संभावनाओं को साकार बनाने का कठिन कार्य होता है” (मेरे प्रिय संभाषण, पृ. 12)।

महादेवी जी के इस विचार से हम सभी सहमत होंगे कि शिक्षा की समृद्ध परंपरा वैज्ञानिक, दार्शनिक, समाज-सुधारक, अर्थशास्त्री, व्यापारी, नेताओं आदि का सृजन कर राष्ट्रीय विकास में अपना बहुमूल्य योगदान देती है। प्राचीन काल में

भी विभिन्न क्षेत्रों में नवीन प्रतिभाएँ भेजने का कार्य शिक्षा को सौंपा गया था। महादेवी जी के अनुसार “शिक्षा शिक्षा क्षेत्र, समाज, शासन, कला, साहित्य आदि सभी क्षेत्रों में नवीन प्रतिभाएँ भेजती थी” (मेरे प्रिय संभाषण, पृ. 12)।

आज भी शिक्षा का यही महान दायित्व है कि वह मानव को परिष्कृत कर राष्ट्र विकास में सहायक बनाए। शिक्षा यह कार्य व्यक्ति की जन्मजात योग्यता के प्रगतिशील विकास द्वारा संपादित करती है।

शिक्षा का पाठ्यक्रम

महादेवी जी ने पाठ्यक्रम में व्यावहारिक विषयों की महत्ता एवं व्यापकता पर भी बल दिया। स्वरुचि के अनुसार बालक को शिल्प आधारित विषयों के चयन की स्वतंत्रता उसके स्वाभाविक विकास को प्रोत्साहन देना, महादेवी जी के अनुसार बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। शिक्षा एवं अभिव्यक्ति का माध्यम महादेवी जी ने मातृभाषा को ही स्वीकार किया है— “मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाना तो सबसे पहली बात होगी।” (मेरे प्रिय संभाषण, पृ. 18) इस प्रकार वे मातृभाषा की शिक्षा को अति आवश्यक मानती हैं।

शिक्षण विधि

पाठ्यक्रम को बालक के मस्तिष्क का अंग बनाने के लिए किसी न किसी शिक्षण विधि का आश्रय लेना ही होता है। महादेवी जी स्वयं ग्रामीण बालकों को वृक्ष की छाया में, वार्तालाप विधि से शिक्षा प्रदान करती थीं। इस ओर संकेत करते हुए उन्होंने कहा है - “मेरे विद्यार्थी, पीपल के पेड़ की घनी

छाया में मेरे चारों ओर एकत्रित हो गये, मैंने उन्हें वार्तालाप द्वारा शिक्षा देने का बीड़ा उठाया” (अतीत के चलचित्र, पृ. 59)।

महादेवी जी के अनुसार बालक को वास्तविक जीवन के अनुभवों द्वारा व्यावहारिक ज्ञान दिया जाना चाहिए क्योंकि बालक जितना क्रिया द्वारा सीखता है उतना सैद्धांतिक विधि द्वारा नहीं। इसी तथ्य को प्रकाशित करता उनका ये कथन दृष्टव्य है - “शिक्षा के क्षेत्र में ज्ञान प्रदान करने की व्यावहारिक विधि को अपनाना चाहिए। विद्यार्थी की आयु के अनुसार व्यावहारिक पक्ष और ज्ञान प्रदान करने के लिए सैद्धांतिक पक्ष को अपनाना चाहिए (मेरे प्रिय संभाषण, पृ. 12)।

वैदिककालीन एवं आधुनिक शिक्षा में छात्रानुशासन

प्राचीन गुरुकुल पद्धति में ब्रह्मचारी को ज्ञानार्जन हेतु विशिष्ट जीवन शैली का पालन करते हुए पात्रता विकसित करनी पड़ती थी। विद्यार्थी का आत्मसंयमी, क्षमाशील, विनयी, कर्तव्यपरायण एवं सच्चरित्र होना अनिवार्य था। उस समय आत्मसंयम अनुशासन का पर्याय था। आत्मसंयम की पृष्ठभूमि में निहित कारणों का अनुमान लगाते हुए महादेवी जी ने संकेत दिया है - “ब्रह्मचारी का चित्र में भी स्त्रीदर्शन वर्ज्य था। भारत एक वैराग्यप्रधान, संयमप्रधान देश है। अतः दुर्बल पुरुष को इस आदर्श तक पहुँचने के बीच जितनी ऊँची प्राचीर बना सकना संभव था, बना दी गई” (शृंखला की कड़ियाँ, पृ. 123)।

अनुशासनहीनता का उद्भव

आज के परिवेश में परिवार में बालकों को अनुशासित

व संयमी रखने का प्रयास किया जाता है। किंतु परिवार की लक्ष्मण रेखा पार करते ही वे अनियंत्रित हो जाते हैं। इस व्यवहार का कारण महादेवी जी के ही शब्दों में - “गृह के वातावरण से निकलकर जब युवक-युवतियाँ एक दूसरे को कुछ निकट से देखने की सुविधा पाते हैं तब वे एक दूसरे को स्वर्गीय वस्तु समझकर परस्पर जानने के कौतूहल में उस निर्धारण रेखा का उल्लंघन कर जाते हैं” (शृंखला की कड़ियाँ, पृ. 123)।

इसके मूल में महादेवी जी ने आदि के अंत तक नैतिक शिक्षा का अभाव बताया है - “आदि से अंत तक प्रायः बालकों को नैतिक शिक्षा नहीं मिलती” (शृंखला की कड़ियाँ, पृ. 123)।

निस्संदेह नैतिक शिक्षा ही विद्यार्थियों में संयम का विकास कर विद्यार्थियों को उचित सद्गुणों और पात्रता से संपन्न कर सकती है। आज छात्र वर्ग मूल्यविहीन एवं दिशाविहीन हो रहा है, जिस कारण शिक्षा जगत में छात्रानुशासनहीनता के व्याप्त होने की ओर संकेत करते हुए महादेवी जी स्वीकार करती हैं - “छात्र आंदोलन का कारण शिक्षा के उपरांत जीविकोपार्जन का कोई साधन प्राप्त नहीं होना है। राजनीतिक दलों की प्रेरणा छात्रों के असन्तोष के मूल में है” (मेरे प्रिय सम्भाषण, पृ. 16)।

यदि विद्यार्थी की प्रतिभा और उसके कृतित्व को उसकी रुचि के अनुसार दिशा और लक्ष्य प्राप्त हो सके तो वह राजनीति में सक्रिय भाग लेने को आवश्यक नहीं मानेगा। राजनैतिक दलों को चाहिए कि वे छात्र वर्ग के सम्मुख आदर्श प्रस्तुत करें ताकि छात्र वर्ग उनसे निर्देशित होकर अपने जीवन को उसी आदर्श के अनुरूप ढाल सकें।

इस प्रकार महादेवी जी ने प्रभावात्मक अनुशासन का समर्थन किया। इसके अतिरिक्त अनुशासनहीनता के अन्य मूल कारण को स्पष्ट करते हुए महादेवी जी कहती हैं - “शिक्षा के संबंध में हमारी नीति अनिश्चित है, जिसके कारण हमारे विद्यार्थी अनुशासनहीन हैं” (मेरे प्रिय सम्भाषण, पृ. 33)।

स्पष्ट है कि हमारी शिक्षा नीति अस्पष्ट, अस्थिर एवं अनिश्चित है जिस कारण बालक दिग्भ्रमित हो रहा है। उसे भविष्य का मार्ग स्पष्ट दिखाई नहीं देता, जिससे असंतोष उत्पन्न होता है। यही असंतोष अनुशासनहीनता को जन्म देता है।

गुरु-शिष्य संबंध

वैदिक युग में शिक्षक-शिष्य संबंध अत्यंत पवित्र, गौरवमय व मधुर थे। आचार्य ब्रह्मचारी के प्रति अगाध स्नेह रखते हुए उनको सब प्रकार से योग्य बनाने का प्रयत्न करते थे। वे ब्रह्मचारी (शिष्य) भी अपने आचार्य की सेवा करना, उनके आदेशों का पालन करना अपना परम कर्तव्य समझते थे।

महादेवी जी ने उसी गुरु-शिष्य संबंध को आदर्श रूप में स्वीकार किया तथा अपने अध्यापन काल में उसी प्राचीन आदर्श का अनुसरण कर समाज का मार्गदर्शन करने का प्रयास किया। महादेवी जी अपनी छात्राओं के स्वास्थ्य, सुख-सुविधाओं के प्रति सदैव चिंतित रहती थी, उन्हें तनिक भी कष्ट होने पर व्याकुल हो जाती थीं यथा छात्रावास की एक छात्रा की चिंता में खिन्न हो स्वयं को ही दोष देती हैं - “जब मेरा शरीर इतना निकम्मा था कि इनके सुख-दुख में दो रात जागना भी सहज नहीं, तब किस बूते पर मैंने इन बालिकाओं को उनकी माताओं से इतनी

दूर ला रखा है। ऐसे दम्भ को अक्षय अपराध की कोटि में स्थान मिलना चाहिए” (अतीत के चलचित्र, पृ. 75)।

यदि आज सभी शिक्षक अपने विद्यार्थियों को ऐसा स्नेह दें तो विद्यार्थियों में अपने गुरु के प्रति द्वा पुनः जागृत हो सकती है ।

एक ओर यदि गुरु, विद्यार्थी के प्रति स्नेह रखता था तो दूसरी ओर शिष्य भी गुरु के प्रति श्रद्धा व भक्तिभाव रखता था। ब्रह्मचारी (शिष्य) आज्ञाकारी कर्तव्यपरायण होता था। यही भाव महादेवी जी ने अपने शिष्यों में भी पाया। गंगा पर झूसी ग्राम के अपने एक शिष्य “धीसा” की गुरुभक्ति उन्हें वेदकालीन गुरुभक्ति से होड़ लेती-सी प्रतीत होती है। महादेवी जी द्वारा स्वच्छ कपड़े पहनने की आज्ञा देने पर “धीसा नहाकर गीला अंगोछ लपेटे और आधा कुरता पहने अपराधी के समान मेरे सामने आ खड़ा हुआ, तब मेरा रोम-रोम गीला हो उठा।” (अतीत के चलचित्र, पृष्ठ 70)

लेकिन आज शिक्षक एवं शिष्य के मध्य संवेदन शून्यता विकसित हो रही है। परस्पर सामीप्य एवं आत्मीयता से गहराती संवेदनशून्यता की इस खाई को पाटना होगा, क्योंकि यह स्थिति विस्फोटक परिणाम भी ला सकती है। आज गुरु-शिष्य संबंध निस्स्वार्थ भाव से स्नेहसिक्त किए जाए तो मधुर और आत्मीयतापूर्ण संबंध पुनः विकसित किए जा सकते हैं।

गुरु-दक्षिणा

वैदिक शिक्षा में विद्यार्थी निःशुल्क शिक्षा ग्रहण करता था। गुरुकुल से विदा होते समय शिष्य गुरु को अपनी सामर्थ्यानुसार दक्षिणा देता था।

झूसी ग्राम से विदा होते समय उनके शिष्य ‘धीसा’ द्वारा अपना नया कुर्ता विक्रय कर महादेवी जी को भेंट देने हेतु तरबूज खरीदकर लाना, उनकी दृष्टि में किसी गुरु-दक्षिणा से कम नहीं था - “उस तट पर किसी गुरु को किसी शिष्य से ऐसी दक्षिणा मिली होगी ऐसा मुझे विश्वास नहीं। परंतु उस दक्षिणा के सामने संसार में अब तक के सारे आदान-प्रदान फीके जान पड़े।” (अतीत के चलचित्र, पृष्ठ 74)

शिष्य एवं शिक्षक के मध्य उत्पन्न संवेदनशून्यता की दुखद स्थिति की वेदना वे अनुभव करती थीं। जिसकी पृष्ठभूमि में निहित कारण को महादेवी जी ने इस रूप में उजागर किया - “आज के युग में विद्यार्थी उस प्रकार अपने गुरु का सानिध्य नहीं पाता, स्नेह और वात्सल्य नहीं पाता जैसा प्राचीन काल में पाता था।” (मेरे प्रिय संभाषण, पृष्ठ 20)

वास्तविकता यह भी है कि प्राचीन काल में ब्रह्मचारी अपना संपूर्ण समय गुरुकुल में गुरु के साथ रहकर व्यतीत करता व गुरु के पूर्ण नियंत्रण में रहता था। गुरु शिष्य में पिता-पुत्रतुल्य संबंध थे। महादेवी जी आज शिक्षकों से अपेक्षा करती हैं कि - “वे आपको इतना वात्सल्य दे कि उसमें आपके सारे अभाव भर जावें। इतना स्नेह दें इस पीढ़ी को, कि ये उसमें बंध जावें” (मेरे प्रिय संभाषण, पृ. 26)।

वर्तमान समय में भी महादेवी जी गुरुकुल प्रणाली के शिक्षक-शिष्य संबंध के आदर्श को पुनः स्थापित करने की आकांक्षिणी थीं। उनका विश्वास था कि यदि शिष्य पूर्णरूपेण गुरु के सामीप्य में समर्पण भाव से अपना कुछ समय व्यतीत करे तो वह प्राचीन आदर्श आज भी स्थापित किया जा सकता है ।

दीक्षांत अनुष्ठान

प्राचीन काल में गुरुकुल की शिक्षा ग्रहण कर विद्यार्थी उपाधि प्राप्त करने के अधिकारी होते थे। इस अवसर पर समावर्तन संस्कार किया जाता था। समावर्तन संस्कार के पश्चात विद्यार्थी गुरु की अनुमति से अपने घरों को वापिस जाते थे। महादेवी जी के अनुसार इस संस्कार के बाद गुरु की परीक्षा प्रारंभ होती थी - "तत्कालीन दीक्षांत अनुष्ठान ऐसी संधि-वेला थी जिसमें शिष्य की परीक्षा समाप्त, गुरु की परीक्षा का आरंभ होता था। स्नातक में गुरुकुल का ज्ञान ही नहीं, उसकी महिमा भी संक्रमित होती थी। इसी से स्नातक अपने आचार्य कुल से पहचाना जाता था (मेरे प्रिय संभाषण पृ. 9)।

इस संधिवेला (समावर्तन संस्कार) पर आचार्य शिष्य को उसके भावी कर्मक्षेत्र के लिए उपदेश एवं आशीर्वाद देता था, जिससे उसके भावी जीवन की दिशा निर्देशित होती थी। महादेवी जी ने भी विक्रम विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह के दीक्षांत भाषण में विद्यार्थियों को इस रूप में आशीर्वाद दिया - "अध्यापकों ने जो बन सका आपको

योग्यता दी। अब आप अपना कर्मक्षेत्र बना सकते हैं। वह जो यज्ञ की ज्वाला हुआ करती थी, उसके प्रतीक रूप में आपके हृदय में हम वह ज्वाला जगा देना चाहते हैं, जो वास्तव में जीवन को गढ़ती है (मेरे प्रिय संभाषण, पृ. 20)।

इस दृष्टिकोण से शिक्षा की समाप्ति पर आज के दीक्षांत समारोह में अर्जित ज्ञान की ज्योति लेकर विद्यार्थी अपने कर्मक्षेत्र में प्रवेश करते हैं। कर्मक्षेत्र में उनकी सफलता, उनकी शिक्षा की सार्थकता निर्धारित करती है।

उपरोक्त विवेचन से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि महादेवी जी के शिक्षा-संबंधी अमूल्य विचारों का उत्स भारतीय संस्कृति में निहित है। उनकी विचारधारा गहन चिंतन, मनन और अंतर्दृष्टि का ही प्रतिफल है। आधुनिक परिप्रेक्ष्य में उनके ये विचार शिक्षा की शाश्वत उपादेयता को भी रेखांकित करते हैं। उनके शैक्षिक विचारों की महत्ता पर चिंतन कर यदि उन्हें शिक्षा के क्षेत्र में समाविष्ट कर सकें तो एक उत्कृष्ट शैक्षिक परिवेश का निर्माण किया जा सकता है, शिक्षा के क्षेत्र में सार्थक क्रांति लाई जा सकती है।

संदर्भ

- वर्मा, महादेवी, 1943. *अतीत के चलचित्र*, भारती भण्डार, इलाहाबाद
 महादेवी, 1976. *मेरे प्रिय संभाषण* (दीक्षांत भाषणों का संकलन), साहित्य भवन, इलाहाबाद
 महादेवी, 1948. *शृंखला की कड़ियाँ*, भारती भण्डार, इलाहाबाद
 कुमार, कृष्ण, 1977. *भारतीय संस्कृति के आधार तत्व*, प्रकाशन बुक डिपो, बरेली
 लूनिया, बी.एन., लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, 1977. *प्राचीन भारतीय संस्कृति*, पुस्तक प्रकाशन
 शर्मा, सत्य प्रकाश, रतिराम शास्त्री, 1975. *प्राचीन भारतीय संस्कृति और सभ्यता*, साहित्य भण्डार, मेरठ

शिक्षा का सशक्त माध्यम प्रवास विद्या*

राधा भट्ट**

सभी को शिक्षा मिले इसमें संदेह नहीं है परंतु कैसी शिक्षा मिले? और कैसे मिले—ऐसे प्रश्न हमेशा से उठते रहे हैं। शिक्षा का संबंध मात्र निजी विकास से न होकर संपूर्ण सामाजिक ढाँचे से होता है। वास्तविक सार्थकतापूर्ण शिक्षा को विद्यालयों की चार दीवारी में कैद नहीं किया जा सकता। उसके लिए शिक्षा को व्यक्ति और समाज से जुड़ना पड़ता है। विद्यार्थियों में बुद्धिमत्ता के साथ-साथ राष्ट्रीय चरित्र की समझ होना ज़रूरी है। यह समझ अपने देश के भूगोल, उसमें रहने वाले जन-समुदाय, उनकी जीवन-शैली व उनके सुख-दुख से परिचित होने पर बनती है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने में शिक्षा की एक बहुत सशक्त विद्या है 'प्रवास विद्या' जिसका उल्लेख गाँधी जी ने भी किया था। आज प्रवासी स्कूलों (Residential Schools), कॉलेजों को प्रवास विद्या के रूप में बदलने की आवश्यकता है।

“सबको शिक्षा मिलनी चाहिए।” परंतु कैसी शिक्षा? यह मेरा प्रश्न होता है। वर्तमान प्रचालित शिक्षा तो कई समस्याओं का सृजन करने वाली शिक्षा पद्धति बनी हुई है। माना तो गया है कि इस शिक्षा से निजी विकास होता है। किंतु वास्तविकता यह है कि समग्र रूप से निजी विकास भी नहीं हो पाता और सच में शिक्षा का संबंध मात्र निजी विकास से है भी नहीं, वरन् यह समाज के संपूर्ण ढाँचे से संबंधित है। शिक्षा चारों ओर फैले मानव समुदाय की स्वतंत्रता, लोकतंत्र, समुचित विकास, संपूर्ण पर्यावरण एवं अर्थव्यवस्था को विकसित करने वाला असर डाले, व इनका आधार भी बने, यह है शिक्षा की वास्तविक सार्थकता।

ऐसी आधारभूत गुणवत्ता वाली शिक्षा विद्यालयों की चार दीवारों के भीतर किए जाने वाले अक्षर ज्ञान एवं बौद्धिक अभ्यास में सीमित नहीं हो सकती। इसके लिए शिक्षा के कार्य को व्यक्ति और समाज के संपूर्ण जीवन के पूरे विस्तार में

*बुनियादी शिक्षा, एक नयी कोशिश, फरवरी-अप्रैल 2008 से साभार प्रकाशित.

**अध्यक्षा, गाँधी शांति प्रतिष्ठान, नयी दिल्ली-2.

गूँथना होता है। बच्चे को आगे बढ़कर उसके घर-परिवार, खेत-आँगन, गाँव-समाज और पूरे देश-दुनिया तक का ज्ञान व अनुभूति, प्रत्यक्ष-दर्शन व अनुभव, उसमें शरीर-मन बुद्धि में हम जानते हैं कि शिक्षण-पद्धति के बदले शिक्षण-संस्कृति की दिशा दिखाने वाले महात्मा गाँधी ने भारत की परिस्थिति के अनुरूप शिक्षा का स्वरूप हमारे सामने बुनियादी शिक्षा के रूप में रखा था। उन्होंने कहा था, “मैं इतना अवश्य चाहूँगा कि बुद्धि के विकास के साथ-साथ शारीरिक श्रम और हृदय का शिक्षण भी होना चाहिए। प्रत्येक राष्ट्रीय शिक्षण-संस्था की कीमत और उपयोगिता उसके विद्यार्थियों की बुद्धिमत्ता के तेज से नहीं, बल्कि राष्ट्रीय चरित्र से तथा पींजन, चर्खा और कर्घा चलाने की कुशलता से ही आँकी जाएगी।” (नवजीवन 26.12.1924, शिक्षण और संस्कृति पृष्ठ 159)

यह राष्ट्रीय जनसमाज के प्रत्यक्ष दर्शन व उसमें की गई सीधी भागीदारी से बनता है। यह राष्ट्रीय चरित्र की समझ, अपने देश के भूगोल, उसमें रहने वाले जन समुदाय, उनकी जीवन शैली, उनके घर, गाँव, नगरों की अपनत्व और प्रीतिभरी दृष्टि से देखने पर बनता है, उनके दर्दों की कसक पहचानने से बनता है, उनकी क्षमताओं से उल्लासित होने से बनता है। तब बच्चा व्यक्ति के “खोल” आवरण से बाहर निकलकर समाज व राष्ट्र के आकार में स्वयं को स्थापित करता है।

इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए शिक्षा की एक बहुत सशक्त विद्या है, “प्रवास विद्या”। मुझे प्रवास-विद्या स्वरचित शब्द लगा था पर मैं आश्चर्यमुग्ध हो गई जब “शिक्षण और संस्कृति”

के पृष्ठ-75 पर बापू ने भी इसे “प्रवास विद्या” कहा है, उनके विचार इस प्रकार हैं - “इसके बाद क्रम से भूगोल विद्या, जिसे “प्रवास विद्या” भी कहते हैं आएगी। अगर यूरोप ने असाधारण उन्नति की है तो उसका कारण सम्राट अकबर के दिनों से यूरोपियन लोगों का यात्रा का व्रत लेना ही है। तब से आज तक वे लगातार घूमते ही रहे हैं। इसका लालच और जिज्ञासा अदम्य है। हमें भी लालच छोड़कर केवल जिज्ञासा से प्रवास को बढ़ाना चाहिए। जिससे घूमकर भारतवर्ष का दर्शन नहीं किया, वह स्नातक ही नहीं कहा जा सकता, यह कहने में मैं कोई आपत्ति नहीं देखता।”

(गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद में दिए गए भाषण का अंश, हिंदी नवजीवन 23.1.1930)

इस “प्रवास विद्या” के उत्सावर्धक परिणामों के अनुभव मैंने एक शिक्षिका के रूप में लक्ष्मी आश्रम की बुनियादी तालीम की छात्राओं के साथ प्राप्त किए हैं।

वे दिन भूदान ग्रामदान आंदोलन के थे, जिसे विनोबा ने “यज्ञ” कहा था। लक्ष्मी आश्रम इस यज्ञ धारा में अपनी सभी छात्राओं व शिक्षिकाओं को लेकर उतर गया था। सालभर हमारा कुछ समय पदयात्राओं की तैयारी करने में जाता और शेष समय पद यात्राओं में लगता था। जिन घाटियों या पर्वतमालाओं के बीच पदयात्रा चलने वाली थी, उसके भूगोल, इतिहास, जन-जीवन तथा विशेषताओं को छात्राओं को बताना, उस क्षेत्र के संबंध में तथा भूदान ग्रामदान के संबंध में पत्रिकाएँ व पुस्तकें छात्राओं को पढ़ने को देना और पद यात्रा में गाए जाने वाले गीतों, नृत्यों तथा नुक्कड़ नाटकों (आँगन

नाटकों) तथा नारों आदि का उनसे अभ्यास करवाना। पूर्व तैयारी का यही स्वरूप होता था। “भूदान यज्ञ” पत्रिका के नित्य वाचन से ‘जमीन जोतने वाले को जमीन मिले’ तथा ‘दानं सम विभागम्’ के क्रांतिकारी विचार से ही सुपरिचित होती थी। छात्राएँ व शिक्षिकाएँ अपने सामान को पिट्टू की पीठ पर लादकर पदयात्रा में निकल जाती थीं। राह में चलते हुए उनके नारों व गीतों के बुलंद स्वर घाटियों को गूँजाते रहते थे। गाँव में पहुँचकर शिक्षिकाओं व छात्राओं का पूरा समूह सर्वप्रथम व्यस्त महिलाओं के साथ श्रम में जुट जाता, कोई ऊखल में धान कूटने लगती तो कोई उनके साथ गायों के लिए चारा काटने लगती, कोई खेती में गुड़ाई-निड़ाई में उनका साथ देती। कुछ छात्राएँ ग्राम सफ़ाई करने लगतीं। पूरे गाँव में लड़कियाँ ही लड़कियाँ छा जातीं और थोड़ी देर में गाँव की लड़कियों व सभी महिलाओं, पुरुषों व बच्चों से उनका परिचय हो जाता। कुछ बच्चे उनकी ऊँगली पकड़कर मेरे पास आते, कभी कोई छात्रा किसी भूमिहीन अकेली महिला का दर्द बताने आती। कभी किसी छोटी भूमि पर उगाई सुंदर उपज का गुणगान ये छात्राएँ करतीं। इस श्रम-कार्य के बाद गपशप करते हुए उन्हें गाँव में भूमिवान-भूमिहीनों, गरीब-अमीरों, स्वर्ण-अवर्णों तथा जल-जंगल-जमीन का अनौपचारिक सर्वेक्षण कर लेना होता था। इसकी पूरी जानकारी तब भी उन्हें मिलती थी जब वे उनके साथ काम कर रही थी और तब भी जब वे सभी गाँव के विभिन्न परिवारों में भोजन करने जाती थीं। इस प्रकार गाँव की खेती, जंगल, पानी, पर्वत, उद्योग-व्यापार व ठेकेदारी सबका खाका सामने खिंच जाता था।

तब होती थी वे सभाएँ, जिनमें भूदान का करुणामूलक संदेश व ग्रामदान, ग्रामस्वराज्य का क्रांतिकारी विचार प्रस्तुत करना होता था। कभी दिन-दोपहर के समय गाँव के किसी बड़े आँगन में जाड़ों की गुनगुनी धूप में सारे गाँव के लोग एकत्र होते थे तो कभी शाम को आँगन के बीच जलती धूनी के चारों ओर सभा आयोजित होती थी। तब भूदान पर छोटे भाषणों के साथ छात्राओं द्वारा नुक्कड़ नाटक-गाँव की स्थिति के अनुरूप कोई नवरचित लघु नाटिका या फिर ‘कितनी जीमन’ जैसे टालस्टाय की कृति को अभिनीत किया जाता। साथ में भूदान-विचार पर स्थानीय भाषा में रचित कुमाँउनी गीत व सामूहिक नृत्य या “हवा और पानी सी धरती जन-जन में बाँट जाए।” जैसे भूदान ग्रामदान के देशभर में गूँजने वाले हिंदी गीत गाँव में एक समा बाँध देते थे। मुझे यह सुखद आश्चर्य होता था कि छात्राएँ दिनभर में ली गई गाँव की विशेष जानकारी को भी अपने नाटक में स्वतः ही जोड़ लेती थी, ताकि संदेश गाँव के लिए अपना बन जाए और हम शिक्षिकाएँ इसलिए भी खुश होतीं कि हमें यह प्रमाण मिल जाता था कि छात्राओं ने गाँव का समाजशास्त्र व अर्थशास्त्र अच्छी तरह खोज निकाला है और समझा है। कई-कई गाँवों की स्त्रियाँ कहती थीं, “बड़े लोगों के भाषणों से अधिक हमें लड़कियों के नाटकों से बात समझ में आई है।”

एक और भी सामूहिक कार्यक्रम था जो बच्चे जब भी उपलब्ध हों तब छात्राओं व शिक्षिकाओं की इस भूदान टोली के द्वारा किया जाता था। वह था बच्चों को सामूहिक खेल खिलाने का काम। इसमें भी बच्चों के गुणधर्म का काम होता था और

छात्राओं को नेतृत्व करने व व्यक्तित्व-विकास का अवसर मिलता था।

शाम के दो काम इस पदयात्रा टोली के लिए लाजमी थे। पहला दिन भर का मूल्यांकन तथा डायरी-लेखन। इतिहास, भूगोल, समाजशास्त्र व अर्थशास्त्र के व्यावहारिक शिक्षण के साथ हिंदी भाषा में भाषण देने व डायरी लिखने के कारण भाषा का शिक्षण भी होता था। कल को ये छात्राएँ गाँव के कार्यकर्ता के रूप में सेवा से समाज परिवर्तन का काम कर सकें, इसका भी व्यावहारिक शिक्षण इन पदयात्राओं से मिलता था।

इसी प्रकार शराब विरोधी आंदोलनों व चिपको आंदोलन का सत्याग्रह काल भी हमारे विद्यालय के लिए शिक्षा में समवाय का साधन बन गया था। इसमें हमारा अनुभव था कि आंदोलनों को बल देते हुए छात्राओं ने स्वयं भी बौद्धिक, शारीरिक एवं भावनात्मक शिक्षण प्राप्त किया था। इस शिक्षण शैली में शिक्षकों को बहुत जागरूक व समझयुक्त होना होता था। उन्हें स्वयं इस प्रकार की शिक्षण शैली पर श्रद्धा व विश्वास होना चाहिए था तभी इस प्रक्रिया के उत्तम परिणाम सामने आते थे। आज भी लक्ष्मी आश्रम, उत्तराखंड में 'नदी बचाओ' आंदोलन में अपनी छात्राओं को 'प्रयास विद्या' का अनुभवजन्य ज्ञान दे रहा है। ऐसे सत्याग्रहों द्वारा दी जाने वाली शिक्षा के बारे में गाँधी जी ने लिखा है-

“सत्याग्रह ही सबसे उच्च और सर्वोत्तम शिक्षा है। ऐसी शिक्षा बच्चों को साधारण पढ़ाई-लिखाई के बाद नहीं, बल्कि उसके पहले ही दी जानी चाहिए। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि बच्चों को अक्षर-ज्ञान और संसार की जानकारी हासिल करने से पहले यह जानना

चाहिए कि आत्मा, सत्य और प्रेम क्या है और आत्मा में कौन-सी शक्तियाँ छिपी पड़ी हैं।

वास्तविक शिक्षा का यह एक आवश्यक अंग होना चाहिए कि बच्चा सीख ले कि जीवन-संघर्ष में प्रेम द्वारा, सत्य द्वारा शत्रु और कष्ट-सहन द्वारा, हिंसा पर विजय पाई जा सकती है।”

(इंडियन ओपिनियन स्वर्ण अंक 1914, संपूर्ण गाँधी वाङ्मय खण्ड 12 पृष्ठ 452)

प्रवास विद्या में उक्त समाज परिवर्तनकारी अभियानों व आंदोलनों का एक महत्वपूर्ण स्थान है। किंतु सामान्य रूप से गाँवों में पदयात्रा करते हुए सभाओं में नाटकों, गीतों व लघु भाषणों के द्वारा जागरूकता लाने के कार्यक्रम, समाज की स्थितियों का बच्चों द्वारा अनौपचारिक सर्वेक्षण, सामूहिक सफाई, सामूहिक प्रार्थना, बच्चों को खेल खिलाना आदि करते हुए भी प्रवास विद्या का गहरा प्रभाव छात्राओं के जीवन पर पड़ते हुए मैंने देखा है। शिक्षा को प्रभावी बनाने के लिए शिक्षिका व छात्राओं के बीच एक अच्छी समझ होना, अत्यंत आवश्यक है। शिक्षिका व छात्रों के बीच व्यक्ति से व्यक्ति का यह संबंध शिक्षिका बनते हुए मैंने इन्हीं प्रवासों में पाया था। दूसरी ओर छात्राएँ भी कहती थीं, “हम गाँवों से आई हैं परंतु गाँव को इस दृष्टि से हमने कभी देखा न था। इस प्रवास में गाँव मानो भीतर से खुलकर हमारे सामने आ गया।” यह केवल मुख से ही नहीं, उनके द्वारा रचित कविताओं, कहानियों, चित्रों व लेखों में भी प्रकट होता है।

डायरी लेखन 'प्रवास विद्या' का एक अनिवार्य अंग था। यों तो लक्ष्मी आश्रम में डायरी लेखन तथा हस्तलिखित पत्रिकाओं का लेखन व संपादन सदा ही मौलिक लेखन के दो सफल माध्यम रहे

हैं, परंतु प्रवास को शिक्षण की दृष्टि से अधिक एवं विधियुक्त बनाने में डायरी लेखन बहुत सक्षम माध्यम बनती है।

सभी प्रकार के प्रवासों का अंतिम कार्य होता था, पूरे विद्यालय के सामने अपने प्रवास की 'चर्चा' प्रस्तुत करना, यह 'चर्चा', संवाद होती थी विवरण नहीं। प्रश्नोत्तर, अनुभूत टिप्पणियाँ व साझी अभिव्यक्ति को ही चर्चा कहा जाता था। अनुभवों का विस्तृत विवरण अपनी मासिक हस्तलिखित पत्रिका में दिया जाता था, जो भाषा व विचार की दृष्टि से अधिक सुव्यवस्थित व क्रमपूर्ण होता था।

मैंने हमेशा ही अनुभव किया कि आठ-दस या बारह दिनों की ऐसी पदयात्रा के बाद मेरी

छात्राओं के व्यक्तित्व जैसे अचानक ही अधिक जिम्मेवार हो जाते थे। अपने व्यक्तिगत अर्थों (स्वार्थों) से निकलकर उनका चिंतन मानो समाज के दायरे में प्रवेश कर जाता था। मैं मानती हूँ कि एक नागरिक की, एक सच्चा मानव बनाने की सही शिक्षा ऐसी ही होनी चाहिए जिसे गाँधीजी ने राष्ट्रीय चरित्र कहकर अभिव्यक्त किया है।

आज सामान्य स्कूलों, कॉलेजों के छात्रों के 'प्रवास' तो बहुत सारे होते हैं पर उन्हें 'प्रवास विद्या' के रूप में परिणत करने की ज़रूरत है ताकि हमारे बच्चे समाज के सभी तबकों से भी हार्दिकता जोड़ सकें।

प्राथमिक कक्षाओं में आंकलन के क्षेत्र में उभरती नयी सोच*

एन.सी.ई.आर.टी.

अभी हाल ही में कुछ राज्यों की प्राथमिक कक्षाओं के शिक्षकों से चर्चा के दौरान ज्ञात हुआ कि भारतीय आधुनिक शिक्षा के पाठकों में न केवल शिक्षाविद्, विशेषज्ञ, महाविद्यालयों के प्राध्यापक, शोधकर्ता शामिल हैं वरन् एक बहुत बड़ी संख्या में स्कूली शिक्षा के प्रत्येक स्तर के शिक्षक इसमें रुचि रखते हैं और इसे चाव से पढ़ते हैं। उनसे ही बातचीत के दौरान पता चला कि उन्हें शिक्षा के क्षेत्र में हाल ही में हुए नये प्रकाशनों के विषय में भी एन.सी.ई.आर.टी. की इन पत्रिकाओं से जो जानकारी मिलती है उसके आधार पर वे उन प्रकाशनों को भी प्राप्त करने तथा पढ़ने का प्रयत्न करते हैं। शिक्षकों में इस तरह की सामग्री को पढ़ने के प्रति रुचि देखकर काफी प्रसन्नता हुई। इस अंक में हम आपको एन.सी.ई.आर.टी. के एक और महत्वपूर्ण प्रकाशन की जानकारी दे रहे हैं। यह है- 'आंकलन स्रोत पुस्तिका' (प्राथमिक कक्षाओं के लिए)।

यहाँ इस लेख में दी जा रही सामग्री एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा प्रकाशित आंकलन स्रोत पुस्तिकाओं-भाषा (हिंदी और अंग्रेजी), पर्यावरण अध्ययन, गणित तथा कला शिक्षा से ली गई है और उसे इस तरह पिरोया गया है कि आपको न केवल इस पुस्तिका की पृष्ठभूमि और उद्देश्यों की जानकारी मिले वरन् आप संक्षेप में यह भी जान सकें कि आंकलन के क्षेत्र में किस प्रकार की नयी सोच उभर कर सामने आई है।

आंकलन स्रोत पुस्तिका की पृष्ठभूमि

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 के अनुमोदन के बाद एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा नवीन पुस्तकों का विकास किया गया। नयी पुस्तकें विभिन्न विषयों के पुनः संकलित पाठ्यक्रम पर आधारित ऐसी पुस्तकें हैं जो पूर्णतया एक नवाचारी सोच एवं दृष्टि पर आधारित हैं। नयी पद्धति में विषय आधारित ज्ञान एवं बच्चों के स्वयं सीखने के तरीकों के

*आंकलन स्रोत पुस्तिका (प्राथमिक स्तर की कक्षाओं के लिए), भाषा-हिंदी, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली, जनवरी 2009 से साधार प्रकाशित.

प्रति जागरूकता को समाहित करने का प्रयास किया गया है। यद्यपि अध्यापक-प्रशिक्षण में सुधार एक समानांतर प्रक्रिया के रूप में आरंभ किए जा रहे हैं, परीक्षा तथा मूल्यांकन की पारंपरिक प्रणाली में बदलाव की चुनौती एक प्रमुख केंद्र बिंदु के रूप में उभरी है। यह अनुभव किया गया कि सीखने के न्यूनतम अधिगम स्तरों को परिभाषित करने के पूर्व प्रयासों पर पुनः ध्यान देने की आवश्यकता है जिसमें एक समग्र आंकलन नीति को विकसित करने का विचार शामिल हो। ऐसी नीति में व्यक्तिगत विभिन्नताओं एवं उन सामाजिक-सांस्कृतिक बाधाओं पर भी विचार किया जाना चाहिए जो विभिन्न विषयों में बच्चों के सीखने की क्षमता पर प्रभाव डालती हैं।

इसी के मद्देनजर यह विचार सामने आया कि एक ऐसी स्रोत पुस्तिका बनाई जाए जो अध्यापकों तथा प्रशासकों को बच्चों की प्रगति के आंकलन की एक नयी दृष्टि एवं उपागम प्रदान करने के संकल्प को रेखांकित करे जो अब तक बच्चों को परीक्षण अथवा परीक्षा के आधार पर वर्गीकृत और नामित करने के आदी हो चुके हैं। ऐसी प्रणाली शिक्षकों में यह दृष्टि विकसित करने में बाधाएँ उत्पन्न करती है कि हर बच्चे की प्रगति उसका व्यक्तिगत उपलब्धि पथ है। यह प्रणाली शिक्षकों को सहकारी कक्षा संस्कृति की सीखने में महत्वपूर्ण भूमिका को पहचानने के मार्ग में भी बाधा डालती है। यह स्रोत पुस्तिका इसलिए ही बनाई गई कि यह इस प्रकार की पहचान बनाने में प्रोत्साहन दे तथा प्राथमिक कक्षाओं में अभिलेख रखने की प्रक्रिया सुधारने का साधन भी प्रदान करे। यह आशा की गई कि यह स्रोत पुस्तिका भारतीय

शिक्षा की हमारी जटिल प्रणाली के सभी अंगों तथा केंद्रीय सरकार के तत्वधान में संचालित उपक्रमों जैसे केंद्रीय विद्यालय संगठन तथा राज्य सरकारों के अधीन विभिन्न प्रकार के प्राथमिक विद्यालयों का ध्यान आकृष्ट करेगी। सार्वभौमिक शिक्षा प्रणाली की संकल्पना प्रत्येक बच्चे के प्रति धैर्य और समुचित स्नेहपूर्ण व्यवहार पर बल देती है, चाहे उसकी सीखने की शैली और गति कैसी भी क्यों न हो। केवल एक ऐसी प्रणाली जो प्रत्येक बच्चे के प्रति स्नेहिल एवं संवेदनशील है, के द्वारा यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि राष्ट्रीय प्रगति में प्रत्येक नागरिक की सार्थक भागीदारी होगी।

पहली से पाँचवीं कक्षा के लिए आंकलन पर बनी यह स्रोत पुस्तक यूनिसेफ की साझेदारी में तैयार एक सामूहिक अकादमिक प्रयास है। इस स्रोत पुस्तक के लिए भिन्न-भिन्न समूहों का गठन किया गया जिन्होंने कार्यशालाओं की दीर्घ श्रृंखला में आंकलन पर विचारों का व्यापक और गहन मंथन किया। स्रोत पुस्तिका का प्रस्तुत स्वरूप विचार-विमर्श की प्रक्रिया के प्रति आधार व्यक्त करता है। पुस्तक के निर्माण की प्रक्रिया कई चरणों से होकर गुजरी है जिनमें शिक्षा, मूल्यांकन और अन्य विषयों (discipline) से जुड़े विशेषज्ञों, अध्यापकों, स्वैच्छिक संगठनों के प्रतिनिधियों, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नयी दिल्ली के अकादमिक सदस्यों और स्कूली शिक्षा से सरोकार रखने वाले बहुत से लोगों ने अपना योगदान किया जिनमें उल्लेखनीय हैं— केंद्रीय समूह (कोर ग्रुप) के सदस्य, राज्यों के शिक्षा सचिव और शिक्षा क्षेत्र से जुड़े अन्य सदस्य,

अलग-अलग राज्यों में सर्व शिक्षा अभियान के राज्य परियोजना कार्यालय तथा राज्यों की राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषदों के सदस्य।

इस प्रकार पाँच विषय क्षेत्रों के लिए स्रोत पुस्तिकाएँ तैयार की गईं और अब पाँचों पुस्तिकाएँ प्रकाशित रूप में उपलब्ध हैं। इनमें से चार स्रोत पुस्तिकाएँ (Arts Education, Environmental Studies, Language—English and Mathematics) अंग्रेजी में प्रकाशित हैं तथा एक पुस्तक (भाषा-हिंदी) हिंदी में प्रकाशित है।

स्रोत पुस्तक की ज़रूरत क्यों?

हम सभी बच्चों के बारे में चिंतित हैं। और इसीलिए हम सबका सरोकार इस बात से है कि हर स्कूल एक ऐसी जगह बने जहाँ हर बच्चे को सीखने के मौके मिलें। बच्चों की शिक्षा से जुड़े सभी लोग, विशेषकर अध्यापक इस संबंध में अपने आपको बहुत ही ज़िम्मेदार मानते हैं। ऐसा उनकी इच्छाओं से जाहिर होता है कि वे सभी बच्चों को उनके गुणों और रुचियों के विकास में मदद करने के लिए तत्पर हैं। वे उन्हें विश्वास के साथ अपनी जिंदगी का सामना करने के लिए तैयार करना चाहते हैं। अध्यापकों का काफ़ी समय तो इसी बात का पता लगाने में निकल जाता है कि बच्चे स्कूल में कैसा कर पा रहे हैं। बहुत से अध्यापक आंकलन को अपने स्कूल की रोज़मर्रा की महत्वपूर्ण गतिविधि के रूप में देखते हैं। अध्यापक विद्यालय में दैनिक आधार पर जो कुछ भी करते हैं, बच्चों का आंकलन उनका एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गया है। ऐसा क्यों है?

अध्यापक इसके बहुत से कारण बताते हैं— एक महत्वपूर्ण कारण यह जानना है कि बच्चों को जो कुछ भी सीखना चाहिए, क्या वे सीख पा रहे हैं? दूसरी वजह एक अवधि विशेष में बच्चों की प्रगति के बारे में भी जानकारी प्राप्त करना है। जो भी हो तीसरी वजह, जिसको सिर्फ अध्यापक ही नहीं बल्कि हम सभी बहुत ही महत्वपूर्ण मानते हैं, वह यह पता लगाना है कि बच्चे की भिन्न-भिन्न विषय/क्षेत्र में क्या उपलब्धियाँ रहीं। ऐसा शायद इसलिए कि हम बच्चों को 'अच्छी क्वालिटी' (गुणवत्ता) वाली शिक्षा देना चाहते हैं और महसूस करते हैं कि ऐसा तभी संभव हो सकता है जब टेस्ट और परीक्षाओं के ज़रिए पढ़ाए गए विषयों में बच्चों की उपलब्धियों का मूल्यांकन किया जाए।

परीक्षाओं (टेस्टों) का अपना एक उद्देश्य है पर यदि हम वास्तव में बच्चों को बेहतर तरीके से सीखने में मदद करना चाहते हैं तो हमें यह बात खास तौर से समझने की ज़रूरत है कि टेस्ट/परीक्षाओं में बच्चे द्वारा प्राप्त किए गए अंक और ग्रेड बच्चों की प्रगति या सीखने के बारे में क्या कुछ विशेष बता पाते हैं।

आइए, आगे दिए गए उदाहरण पर नज़र डालते हैं, एक अध्यापक होने के नाते अपने विद्यालय में इस तरह के हालातों से आपका बहुत बार सामना हुआ होगा।

दुर्भाग्य से हो क्या रहा है कि इस तरह के मूल्यांकन से कुछ बच्चों को असुरक्षा, तनाव, चिंता और अपमान जैसी स्थितियों का सामना करना पड़ता है जैसा कि रमन के साथ भी हुआ। मूल्यांकन से सिर्फ यही पता लगता है कि बच्चे क्या नहीं जानते बजाय इसके कि बच्चे क्या जानते

एक प्राथमिक विद्यालय में कक्षा चार के बच्चों को पर्यावरण अध्ययन के अंतर्गत उनकी पाठ्यपुस्तक के जल से संबंधित अध्याय पर आधारित टेस्ट दिया गया। तीस बच्चों में से अधिकतर बच्चों ने 10 में से 6 अंक प्राप्त किए हैं। दो बच्चे जिनमें से मैथिली के आठ और रमन के 10 में से 3 अंक आए हैं। अध्यापक ने कक्षा में जब अंक बताए, तब सभी बच्चे रमन के अंक सुनकर हँसे और उसका मजाक भी बनाया क्योंकि उसके अंक सबसे कम थे। उस दिन के बाद से रमन ने कभी नहीं चाहा कि वह स्कूल जाए। उसके माता-पिता के लिए उसे स्कूल जाने के लिए तैयार करना, मनाना बहुत ही कठिन था। ये अंक अध्यापक, माता-पिता या मैथिली और रमन की शिक्षा से सरोकार रखने वाले किसी को भी क्या बताना चाहते हैं? क्या ये अंक यह बता पाएँगे कि दोनों बच्चों ने क्या और कैसे सीखा और वे दोनों क्या-क्या कर सकते हैं? क्या ये अंक अध्यापकों को बता पाएँगे कि मैथिली और रमन की जरूरतों के आधार पर उनके लिए अध्यापन और सीखने की प्रक्रिया में कैसे सुधार लाया जाए? क्या ये अंक मैथिली और रमन दोनों बच्चों को उनके सीखने के संबंध में किसी तरह का संकेत दे पाएँगे कि आगे किस तरह का सुधार लाया जा सके? बच्चों द्वारा प्राप्त किए गए अंक क्या किसी भी तरह से उनके माता-पिता या समुदाय के सदस्यों को उनकी प्रगति और सीखने के बारे में कोई उपयोगी रिपोर्ट या पृष्ठपोषण (Feedback) दे पाएँगे कि दोनों बच्चों में से कौन क्या जानता है?

हैं और क्या कर सकते हैं? इस तरह का मूल्यांकन पाठ्यपुस्तकों में पढ़ाई गई विषय-वस्तु और रटत प्रणाली द्वारा प्राप्त की गई जानकारी/ज्ञान का आंकलन करने तक ही केंद्रित है। अधिकांशतः यह बच्चों में तुलना करने जैसा भाव रखता है और अवाँछनीय प्रतिस्पर्धा को जन्म देता है, यहाँ तक कि मात्र आधे अंक के लिए भी क्या अध्यापक होने के नाते हम चाहते हैं कि सभी बच्चे सीखें? यदि ऐसा है तो आंकलन के जरिए हम उनमें क्या खोजते हैं?

आप इस सच्चाई को तो जरूर स्वीकार करेंगे कि इस तरह कि स्थितियाँ विद्यालयों में अकसर देखी जाती हैं। स्थितियाँ कुछ महत्वपूर्ण सवालों की तरफ हमारा ध्यान खींचती हैं — हम वास्तव में किस चीज का आंकलन कर रहे हैं? क्या टेस्टों/परीक्षाओं के अतिरिक्त बच्चों का आंकलन करने के कुछ और भी तरीके हो सकते हैं? क्या अंकों और ग्रेड के रूप में रिपोर्ट करना पर्याप्त है? आंकलन संबंधी सूचनाएँ किस तरह

की मदद करती हैं? हम अपने काम को कठिन बनाए बगैर बच्चों के सीखने के बारे में किस तरह की सूचनाएँ इकट्ठी कर सकते हैं? आखिरी सवाल बहुत ही महत्वपूर्ण है क्योंकि पूरे देश भर में अध्यापक रोजाना ही बहुत-सी समस्याओं का सामना करते हैं जैसे- विद्यार्थियों की अधिक संख्या, एक साथ दो-तीन या कभी-कभी तो इससे भी अधिक कक्षाओं को एक साथ बैठाकर पढ़ाना, भरी कक्षाएँ और विद्यालय में सुविधाओं का अभाव। इसके साथ-साथ उन्हें ऐसे बच्चों को पढ़ाना होता है जो भिन्न-भिन्न पृष्ठभूमि से आते हैं। भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोलते हैं। और जिनकी विशेष आवश्यकताएँ भी होती हैं। अध्यापकों और उन सभी में, जो चाहते हैं कि बच्चे अपनी अधिकतम योग्यता के अनुसार सीखें, अधिक समय, धैर्य और समझ की जरूरत है। इस तरह की स्थितियों में अध्यापकों की मदद किस तरह से की जा सकती है?

इस स्रोत पुस्तक में अध्यापकों द्वारा अकसर पूछे जाने वाले प्रश्नों (जो ऊपर भी दिए गए हैं), का उत्तर देने की कोशिश की गई है। यह अध्यापन-अधिगम प्रक्रिया को बच्चों के आंकलन के अभिन्न अंग के रूप में देखते हुए इस प्रक्रिया को आसान बनाती है और इसके लिए यह उन सभी अध्यापकों के समक्ष बहुत से विचार तथा तरह-तरह के विकल्प प्रस्तुत करती है जो आंकलन के भिन्न-भिन्न पहलुओं से संबंधित निर्णय लेते हैं। वे पहलू कौन-से हैं? महत्वपूर्ण पहलू इस प्रकार हैं-

- बच्चों का आंकलन क्यों किया जाना चाहिए?
- किस बात का आंकलन करना चाहिए?
- आंकलन कब करना चाहिए?
- आंकलन कैसे किया जाना चाहिए?
- आंकलन द्वारा प्राप्त सूचनाओं का उपयोग किस तरह करना चाहिए?

बच्चों का आंकलन क्यों किया जाना चाहिए?

हम सभी बच्चों के सीखने और अच्छी शिक्षा पाने को लेकर चिंतित हैं। प्राथमिक कक्षाओं में आंकलन क्यों किया जाना चाहिए इसके बहुत से कारण हैं। हम कुछ मुख्य कार्यों पर नज़र डालते हैं। इनमें से कुछ आप पहले से ही जानते होंगे और कुछ तो सीखने-सिखाने की प्रक्रिया के दौरान इस्तेमाल भी करते होंगे। कुछ महत्वपूर्ण कार्य हैं-

- भिन्न-भिन्न विषयों में समय की एक अवधि विशेष में बच्चे की प्रगति और उसमें आने वाले परिवर्तनों का पता लगाना,
- बच्चे की व्यक्तिगत और विशेष ज़रूरतों को पहचानना,

- अधिक उपयुक्त तरीकों के आधार पर अध्यापन और सीखने की स्थितियों की योजना बनाना,
- कोई बच्ची क्या कर सकती है और क्या नहीं, उसकी किन चीज़ों में विशेष रुचि है, वह क्या करना चाहती है और क्या नहीं, इन सबके प्रति समझ बनाने और महसूस करने में बच्ची की मदद करना,
- बच्ची को 'कुछ प्राप्त कर पाने' पूर्णता की भावना के विकास के लिए प्रोत्साहित करना,
- कक्षा में चल रही सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को बेहतर बनाना,
- बच्ची की प्रगति के प्रमाण तय कर पाना जिन्हें अभिभावकों और दूसरों तक संप्रेषित किया जा सके,
- बच्चों में आंकलन के प्रति व्याप्त भय को दूर करना और उन्हें स्व-आंकलन के लिए प्रोत्साहित करना,
- प्रत्येक बच्ची/बच्चे के सीखने और विकास में मदद करना और सुधार की संभावनाएँ खोजना ।

किसका/किस बारे में आंकलन किया जाना चाहिए ?

आंकलन के संबंध में उठाए गए सवालों जैसे- 'बच्चों का आंकलन क्यों किया जाना चाहिए' के बाद स्वाभाविक है कि बहुत से अध्यापक सवाल करें...

आंकलन किस बारे में किया जाना चाहिए? हमें अपने आप से सवाल करने की ज़रूरत है कि

आखिर वह है क्या जिसकी हमें बच्चों का आंकलन करते समय तलाश रहती है। चूँकि शिक्षा बच्चे के कुल समग्र विकास से जुड़ी हुई है (जैसे-शारीरिक, सामाजिक, भावात्मक और संज्ञानात्मक) इसलिए यह ज़रूरी है कि सभी पहलुओं का आंकलन किया जाए, सिर्फ अकादमिक उपलब्धियों का नहीं, जो वर्तमान में विद्यालयों में इस्तेमाल की जा रही आंकलन पद्धतियों का मुख्य केंद्र है। इस प्रकार यह बहुत आवश्यक हो जाता है कि विद्यालय और कक्षा के बाहर और भीतर होने वाली सभी गतिविधियों, जिनमें बच्चे की भागीदारी रहती है, का आंकलन किया जाना चाहिए? यह आंकलन की सारगर्भित प्रक्रिया होगी। आंकलन की प्रक्रिया को सूचना और पृष्ठ पोषण देने का जरिया बनाना होगा कि विद्यालय और अध्यापक शिक्षा देने की प्रक्रिया में किस सीमा तक सफल हो पाए हैं। बच्चे के अधिगम की पूरी तस्वीर समझने के लिए आंकलन द्वारा निम्नलिखित बिंदुओं को उभारना होगा-

- भिन्न-भिन्न विषयों/क्षेत्रों में बच्चों का सीखना और प्रदर्शन,
- बच्चों के कौशल, रुचियाँ, रुझान और अभिप्रेरणा कुछ और पहलू हैं,
- एक निश्चित अवधि में बच्चों को सीखने और व्यवहार में होने वाले परिवर्तन,
- विद्यालय के भीतर और बाहर मौजूद भिन्न-भिन्न स्थितियों और अवसरों के प्रति बच्चों की प्रतिक्रिया।

आंकलन कब किया जाना चाहिए ?

हममें से बहुतों द्वारा पूछा गया एक बहुत ही अहम् सवाल 'आंकलन किस बात का किया जाए' से

जुड़ा हुआ एक ही सवाल है- बच्चों के सीखने की प्रक्रिया और प्रगति को कब और कैसे आँका जाए? सीखने के परिणामों का आंकलन अध्यापन अधिगम प्रक्रिया के साथ सतत् रूप से जुड़ा हुआ है। समग्र रूप से आंकलन करने के लिए, सीखने के सभी पहलुओं को अपेक्षित पहचान देनी होगी। इस तरह से तो प्रत्येक बच्चे का प्रोफाइल बनाना ज़रूरी हो जाता है हालाँकि तरीके और पद्धतियाँ तो भिन्न-भिन्न होंगी ही। जब अध्यापक नियमित रूप से बच्चों की प्रगति पर बराबर नजर बनाए हुए हों तो उस पर प्रतिक्रिया करने, पृष्ठपोषण देने और सुधार संबंधी तरीकों को अपनाने के लिए कुछ अवधियाँ तो तय करनी होंगी। इसके लिए ज़रूरी है कि व्यावहारिक अवधियाँ तय की जाए और उनका अनुसरण किया जाए। हालाँकि कक्षा में अनौपचारिक रूप से अवलोकन की प्रक्रिया तो चलती रहनी चाहिए। हर पंद्रह दिन में एक बार पीछे मुड़कर देख लेना (बच्चे के शुरुआती दौर को) और पारदर्शित समीक्षा भी कर लेना ज़रूरी होगा। इससे बच्चों के सीखने को उन्नत और सुदृढ़ किया जा सकता है। अतः आंकलन—

- दिन-प्रतिदिन के आधार पर— बच्चों के साथ सतत् रूप से अंतःक्रिया करना और सतत् रूप से उनका कक्षा और कक्षा के भीतर और बाहर आंकलन करना।
- सावधिक— हर तीन या चार महीनें में एक बार अध्यापक बच्चों के कामों की जाँच करें और एकत्र की गई सूचनाओं के आधार पर उन्हें अपनी राय बताएँ। यह किसी प्रकार की जाँच के रूप में नहीं होना चाहिए।

आंकलन कैसे किया जाए?

विभिन्न चरण और विधियाँ जो कि चक्रीय एवं क्रमिक हैं विस्तार से आगे दी गई हैं -

पहला चरण

भिन्न भिन्न स्रोतों और विधियों द्वारा सूचना और प्रमाण जुटाना

यदि हम सभी यह स्वीकार करते हैं और मानते भी हैं कि सभी बच्चे अपनी ही शैली से सीखते हैं और वे सिर्फ स्कूल में ही नहीं सीखते तब हमें बच्चों का आंकलन करते समय दो चीजों पर तो काम करना ही होगा- पहला, तरह-तरह के स्रोतों से जानकारी इकट्ठी करना, दूसरा, तरह-तरह की गतिविधियाँ, अनुभवों और अधिगम कार्यक्रमों से जुड़े बच्चे क्या वास्तव में सीख रहे हैं, यह जानने और समझने के लिए आंकलन की बहुत सी विधियाँ इस्तेमाल में लाना।

सूचनाओं के स्रोत

आज भी यही देखने में आता है कि अध्यापक ही सूचनाओं का मुख्य स्रोत है और यही वह व्यक्ति है जो बच्चों के सीखने का आंकलन भी करता है। जो भी हो, चूँकि आंकलन सीखने की प्रक्रिया का ही हिस्सा है, बच्चे स्वयं भी अपने अधिगम और प्रगति का आंकलन करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अध्यापक बच्चों का स्वयं का आंकलन करने में मदद कर सकते हैं।

बच्चों से क्या अपेक्षा की जा रही है, इसकी बेहतर समझ विकसित करने में मदद की जा सकती है, अपने काम और प्रदर्शन को आलोचनात्मक नज़रिए से देखने के लिए अनुभव प्रदान किए जा

सकते हैं। बच्चों से यह भी कहा जा सकता है कि वे अपने उन कामों का चयन करें जो उनकी नज़र में सर्वोत्तम हैं और यह भी बताएँ कि उन्होंने इनका चयन क्यों किया। बच्चों के अतिरिक्त क्या कोई और भी है जिनसे बच्चों के आंकलन के संबंध में सूचनाएँ ली जा सकती हैं? बच्चों के विकास के दूसरे पहलुओं की पूरी तस्वीर स्पष्ट करने के लिए इन्हें भी आंकलन की प्रक्रिया में शामिल किया जा सकता है। वे कौन हो सकते हैं? अध्यापक और भी बहुत से व्यक्तियों के साथ बातचीत कर उन्हें आंकलन की प्रक्रिया में शामिल कर सकते हैं, वे व्यक्ति हो सकते हैं -

- माता-पिता/अभिभावक
- बच्चों के मित्र/सहपाठी
- दूसरे अध्यापक
- समुदाय के लोग

अब अगला सवाल यह उठता है कि भिन्न-भिन्न स्रोतों से सूचना इकट्ठी कैसे की जाए?

आंकलन के तरीके

किसी भी तरीके को चुनने से पहले प्राप्त की जाने वाली ज़रूरी सूचनाओं के लिए आंकलन के प्रकार का निर्धारण आवश्यक है। आंकलन करने के चार मूलभूत तरीके हैं-

- *व्यक्तिगत आंकलन*-एक बच्चे को केंद्र में रखते हुए किया गया आंकलन जब वह कोई गतिविधि/कार्य करता है और उसे पूर्ण करता है।
- *सामूहिक आंकलन*-किसी कार्य को पूर्ण करने के उद्देश्य से बच्चों द्वारा, सामूहिक रूप से कार्य करते समय सीखने और

प्रगति का आंकलन सामूहिक आंकलन है। आंकलन का यह तरीका बच्चों के सामूहिक कौशलों, सहयोग द्वारा सीखने की प्रक्रिया तथा बच्चों के व्यवहार से संबंधित अन्य मूल्यांकों के आंकलन के लिए बहुत उपयुक्त पाया गया है।

- स्व-आंकलन-बच्चे द्वारा स्वयं के सीखने तथा ज्ञान, कौशल, प्रक्रियाओं, रूचि, व्यवहार आदि में प्रगति के स्व-आंकलन से संबंधित है।
- सहपाठियों द्वारा आंकलन-एक बच्चे द्वारा दूसरे बच्चे का आंकलन, इसे दो बच्चों की जोड़ी या समूह में करवाया जा सकता है।

सभी स्कूलों में अध्यापकों द्वारा तैयार किए गए उपकरणों/तकनीकों के इस्तेमाल का ही प्रचलन है। इसमें पेपर, पेंसिल, टेस्ट/कार्यकलाप, लिखित और मौखिक परीक्षाएँ, तस्वीर आधारित सवाल, कृत्रिम (सिमुलेटेड) कार्यकलाप और विद्यार्थियों के साथ वार्तालाप/संवाद शामिल हैं। अध्यापकों द्वारा बच्चों के सीखने की प्रगति का आंकलन करने के लिए छोटे-छोटे क्लास टेस्टों का इस्तेमाल एक आसान और शीघ्रगामी तरीके के रूप में किया जाता है।

सामान्यतः एक अवधि विशेष में पढ़ाई गई निर्धारित विषय-वस्तु के आधार पर सत्र या माह के अंत में ये टेस्ट करवाए जाते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि ये उपयोगी होते हैं परंतु इनका इस्तेमाल बहुत सावधानी के साथ किया जाना चाहिए। इस तरह के परीक्षणों में पूछे जाने वाले सवालों की प्रकृति ऐसी न हो कि उनसे पूर्व-निर्धारित

उत्तर ही निकल कर आते हों अपितु इन प्रश्नों की शब्द संरचना इस तरह की हो कि बच्चों को अपने विचार और भाव तरह-तरह से अभिव्यक्त करने की पूरी गुंजाइश हो। टेस्ट में दी जाने वाली प्रविष्टियाँ/प्रश्न कुछ इस प्रकार के हों कि वे चिंतन और विश्लेषण पर बल दें न कि पाठ्यपुस्तकों में दी गई सामग्री को याद करके पुनः लिख देने पर। क्या आपने कभी सोचा है कि तरह-तरह की विधियों का इस्तेमाल क्यों करना चाहिए? ऐसा इस वजह से किया जाता है-

- भिन्न-भिन्न विषयों, क्षेत्रों और विकास के भिन्न-भिन्न पहलुओं में सीखने का आंकलन किया जाता है।
- बच्चे एक विधि की तुलना में किसी दूसरी विधि के प्रति बेहतर तरीके से प्रतिक्रिया करते हैं।
- सीखने के संबंध में अध्यापकों की समझ बनाने में हर विधि का अपनी ही तरह से योगदान रहता है।

विकास के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में बच्चों की प्रगति और अधिगम के बारे में सूचनाएँ और प्रमाण जुटाने के लिए आंकलन का कोई भी एक उपकरण या विधि अपने आप में पर्याप्त नहीं है। पढ़ाते समय आपने ज़रूर महसूस किया होगा कि विद्यार्थियों का अवलोकन करके, उन्हें सुनकर, उनके अभिभावकों, दोस्तों को और दूसरे अध्यापकों के साथ उनके बारे में अनौपचारिक तरीके से चर्चा करके, उनके लिखित कार्य (कक्षा तथा गृहकार्य दोनों ही), बच्चों द्वारा लिखे गए लेखों और उनके स्व-आंकलन के आधार पर बहुत कुछ समझा जा सकता है।

आंकलन के कुछ साधन

- परियोजना कार्य
- भ्रमण
- व्यक्तिगत रूप से प्रस्तुतीकरण
- जोड़ी में काम
- लिखित कार्य
- फोलियों दर्ज करना

इन साधनों के अतिरिक्त तस्वीरों और श्रव्य-दृश्य रिकार्डिंग का भी इस्तेमाल किया जा सकता है। ये बच्चे के कार्य करते समय के अनुभवों का ही नहीं बल्कि कार्यपूर्ति का प्रलेखन प्रदान करते हैं। इसमें एक समयावधि में प्रक्रिया को ध्यान में रखते हुए आंकलन किया जाता है। दोनों ही घटनाओं की सटीक पुनरावृत्ति तथा बच्चे के सोचने तथा संवाद के तरीकों को सही ढंग से परखने में सहायक हैं। बच्चों और अभिभावकों दोनों के साथ अनुभव बाँटने में भी इनसे मदद मिलती है। आंकलन के ये तरीके महँगे हैं, इनके लिए तकनीकी विशेषज्ञों की आवश्यकता पड़ती है। समय अधिक लगता है तथा विश्लेषण अधिक समय की माँग करता है। इसलिए इनके इस्तेमाल में बहुत सावधानी की आवश्यकता है।

दूसरा चरण

सूचनाओं को दर्ज करना या सूचनाओं की रिकॉर्डिंग करना

पूरे देश के सभी विद्यालयों में रिपोर्ट कार्ड का इस्तेमाल रिकार्डिंग का सर्वाधिक प्रचलित तरीका है। अधिकतर रिपोर्ट कार्डों में बच्चों द्वारा टेस्ट/

परीक्षाओं में प्राप्त किए अंकों और ग्रेडों (श्रेणियों) के रूप में सूचनाएँ दर्ज होती हैं। अंकों और ग्रेडों की उपयोगिता तथा निहितार्थ के बारे में पहले ही चर्चा की जा चुकी है। महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि दर्ज करने (रिकार्ड रखने) की प्रक्रिया में सुधार लाने के लिए क्या किया जा सकता है। कक्षा में किया गया वार्तालाप बच्चे के व्यवहार तथा सीखने का अवलोकन करने के लिए अनेकानेक अवसर प्रदान करता है। जैसा कि आप जानते हैं कक्षा में नित्य शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के दौरान अनौपचारिक रूप से कुछ अवलोकन किए जा सकते हैं। दिन-प्रतिदिन के अवलोकनों को अगर दर्ज नहीं किया जाए तो शीघ्र ही उनके भूलने की आशंका रहती है। बच्चों के कार्यों/गतिविधियों के कई अवलोकन सुनियोजित होते हैं। इस प्रकार के अवलोकन किसी उद्देश्य से योजनाबद्ध होते हैं और इसीलिए स्वरूप में औपचारिक होते हैं।

बच्चे के सीखने और प्रगति की पूरी तस्वीर देने के लिए इसके क्षेत्र को विस्तृत करने की आवश्यकता है। रिकॉर्डिंग में बच्चों द्वारा किए गए कार्यों/प्रदत्त कार्यों में उनकी प्रस्तुति के अवलोकन तथा उन पर की गई टिप्पणियों — बच्चे क्या करते हैं, उनका व्यवहार कैसा है की रेटिंग, बच्चों के दूसरों के साथ व्यवहार की घटनाओं को सम्मिलित करने की आवश्यकता है।

संभावनाओं के विस्तार की जरूरत है, जिसके अंतर्गत शामिल हो सकते हैं— अवलोकनों के रिकॉर्ड, किसी कार्यकलाप या प्रदत्त कार्य में बच्चों के प्रदर्शन पर टिप्पणियाँ, बच्चे क्या करते हैं और कैसे करते हैं, के बारे में श्रेणियाँ बनाना, दूसरों के साथ बच्चों के व्यवहार से जुड़ी घटनाएँ और

वर्णन। यदि आप कर सकें तो नीचे लिखे बिंदुओं से भी आपको मदद मिलेगी—

- बच्चों का अवलोकन करने के बाद तुरंत ही अवलोकनों को दर्ज करें।
- कला और शिल्पकारी, जिनको बहुत अधिक महत्त्व नहीं दिया जाता, के क्षेत्र में बच्चों के काम और प्रदर्शन के नमूनों का संग्रह करें।
- गुणात्मक टिप्पणियाँ लिखने के बारे में विचार करें।

यह भी बहुत महत्वपूर्ण है कि जिन सूचनाओं का संग्रह किया गया है, उन्हें अच्छी तरह से समझा जाए और उत्तरों की विभिन्नता तथा विविधता को प्रोत्साहित किया जाए और उसकी सराहना की जाए। इस संबंध में बहुत-से उदाहरण और दृष्टांत दिए गए हैं।

तीसरा चरण

एकत्रित सूचनाओं से अर्थ निकालना

एक बार सूचनाएँ दर्ज कर ली जाएँ फिर तीसरा महत्त्वपूर्ण पहलू या अगला चरण है — उपलब्ध साक्ष्यों की मदद से एक समझ बना पाना कि क्या सूचनाएँ इकट्ठी की गईं और दर्ज की गईं और फिर बच्चे के सीखने तथा प्रगति के बारे में निष्कर्ष निकालना। 'बच्चे की प्रगति कैसी है' और बच्चे की मदद के लिए क्या किया जाना चाहिए, यह समझने के लिए रिकॉर्डिंग बहुत जरूरी है। इसके लिए जरूरी है कि बच्चे के संबंध में दर्ज किए गए रिकार्डों का नियमित रूप से विश्लेषण किया जाए और समीक्षा भी। साथ ही संग्रहीत सूचनाओं के प्रति सावधिक प्रतिक्रिया भी दी जाए।

ये सभी प्रक्रियाएँ शिक्षक को भी बहुत तरह से मदद करेंगी जैसे— अपनी शिक्षण पद्धतियों, कक्षा प्रबंध सभी शिक्षण शास्त्रीय पहलुओं के साथ-साथ सामग्री का प्रयोग जैसे प्रक्रियाओं के प्रति चिंतन करना और शिक्षार्थी के लाभार्थ, इन सभी में आवश्यक सुधार करना। इस स्रोत पुस्तक के बाद के अध्यायों में प्रत्येक विषय क्षेत्र के लिए संकेतक दिए गए हैं। ये संकेतक प्रत्येक कक्षा/स्तर के लिए दिए गए हैं। ये संकेतक यून ही नहीं बना लिए गए हैं अपितु राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 पर आधारित एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा प्राथमिक स्तर के लिए बनाए गए पाठ्यक्रम में दिए गए प्रत्येक अधिगम क्षेत्र के लिए सीखने के उद्देश्यों को ध्यान में रखकर बनाए गए हैं। इन संकेतकों को संदर्भ बिंदु के रूप में प्रस्तुत किया गया है। आप अपने राज्य के पाठ्यक्रम और स्थानीय जरूरतों के अनुसार इन्हें ज्यों का त्यों आवश्यक परिवर्तनों के साथ इस्तेमाल कर सकते हैं।

संकेतक महत्त्वपूर्ण क्यों हैं?

दिए गए संकेतक अध्यापक की कई तरह से मदद कर सकते हैं—

- सीखने की निरंतरता को ध्यान में रखते हुए बच्चे के सीखने की बेहतर समझ और उसे केंद्र में रखना।
- पर्यवेक्षण, अधिगम और प्रगति को रिपोर्ट करने के लिए एक रूपरेखा प्रदान करते हैं।
- अभिभावकों, बच्चों और कई दूसरों के लिए भी बच्चों की प्रगति को आसान तरीके से समझने के लिए संदर्भ बिंदु की तरह कार्य करते हैं।

यह बहुत ही महत्वपूर्ण है कि सूचनाएँ जो एकत्रित की गई हैं, आँकड़ों और प्रमाणों के संग्रह के बाद भी सूचनाओं का संग्रह करना जारी रहना चाहिए। इन संकेतकों के आधार पर गुणात्मक टिप्पणियाँ भी तैयार की जा सकती हैं — एक दिए गए उत्तर के प्रति यह कितना उपयुक्त है — स्वीकार्य, महत्वपूर्ण और रुचिकर। बहुधा यह देखा जाता है कि शिक्षार्थी को 'अ' या 'ब' के द्वारा उसके उत्तर/प्रतिक्रिया को चिह्नित किया जाता है। शिक्षार्थी के साथ किसी भी तरह की अंतःक्रिया किए बगैर। यह बहुत ही आवश्यक विधियों में प्रयोग करें।

- सूचना एकत्र करने की प्रक्रिया सतत् रहे और सूचनाओं को दर्ज भी करते चलें।
- प्रत्येक बच्चे को प्रतिक्रिया करने, सीखने और अपना ही समय लेने को महत्त्व दें।

- एक सतत् प्रक्रिया के रूप में रिपोर्टिंग भी करें और प्रत्येक बच्चे की प्रतिक्रिया/उत्तर के प्रति सरोकार रखें।
- पृष्टपोषण दें, जो सकारात्मक क्रियाओं के लिए संभावनाएँ जुटाएँ और बच्चे को बेहतर करने के लिए मदद दें।

यहाँ पर प्रस्तुत आंकलन संबंधी सामग्री का उद्देश्य विद्यालयी शिक्षक को प्राथमिक कक्षाओं में आंकलन के क्षेत्र में उभरती नयी सोच के बारे में जानकारी प्रदान करना है। अलग-अलग विषय क्षेत्र में आंकलन का क्या स्वरूप है इसका विस्तृत विवरण एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा प्रकाशित अलग-अलग विषय की आंकलन स्रोत पुस्तिकाओं में उपलब्ध है। आशा है यह जानकारी शिक्षक और शिक्षक-प्रशिक्षकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।